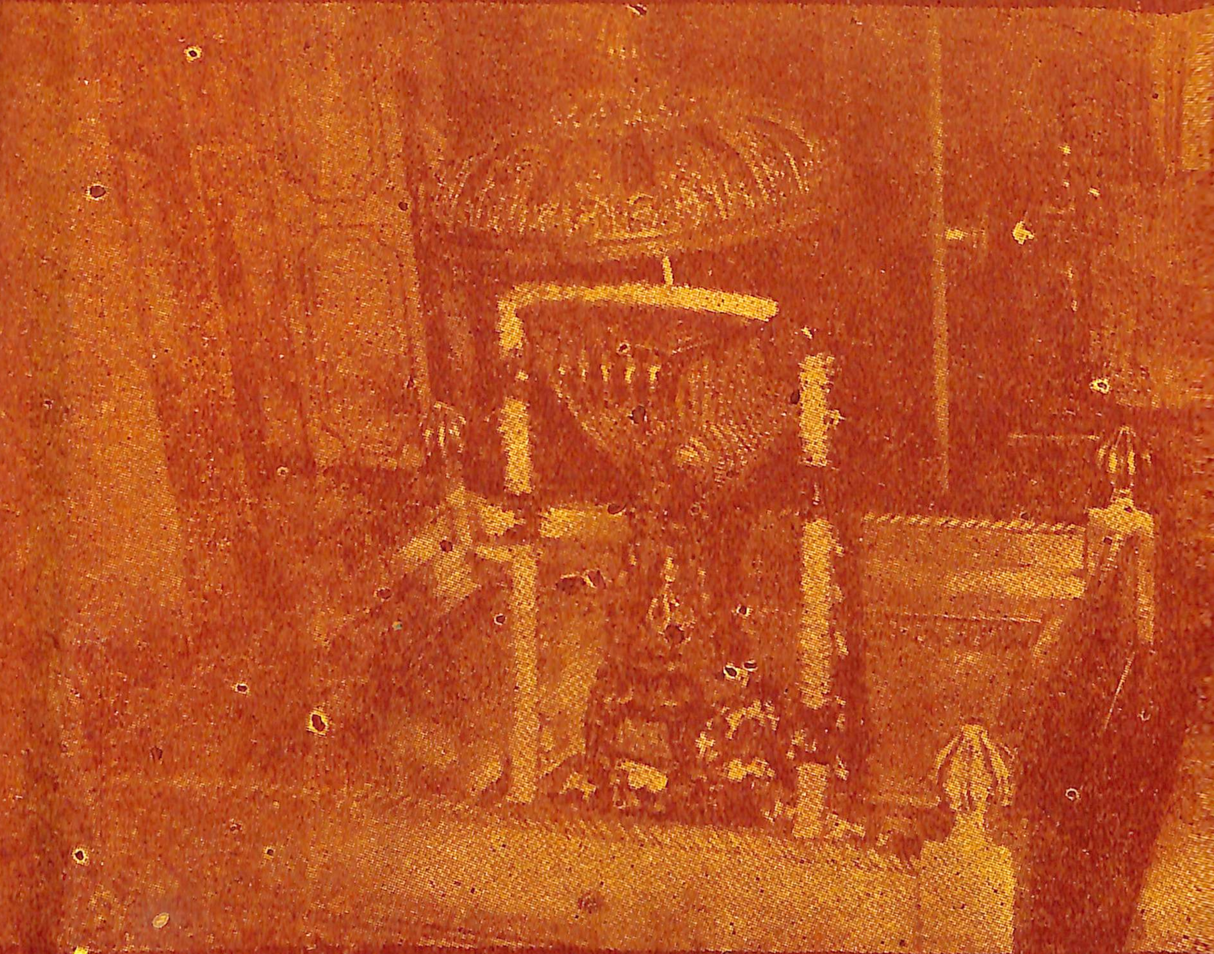
# काशी रहस्यम्



डॉ. जगदीश नारायण दूबे

# काशी-रहस्यम्

डा० जगदीश नारायण दूबे
आचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राचार्य
सुधाकर संस्कृत महाविद्यालय
खजुरी-वाराणसी २

आदर्श प्रकाशन मन्दिर
खजुरी-वाराणसी

उ० प्र० संस्कृत अकादमी के आर्थिक सहयोग से

# काशी-रहस्यम्

श्लोक अंशों के रचनाकार

**कृष्णद्वैपायन महर्षि व्यास**

मूल्य—पैसठ रुपये


| | |
|---|---|
| संस्करण | १९८४ ई० |
| © | लेखकाधीन |
| आवरण | **प्रकाश**<br>हुकुलगंज, वाराणसी |
| ब्लाक | **अशोक ब्लाक वर्क्स**<br>आशापुर, वाराणसी |
| प्रकाशक | **आदर्श प्रकाशन मन्दिर**<br>खजुरी-वाराणसी |
| मुद्रक | **लक्ष्मी प्रिन्टर्स**<br>सा० २/३६४ ( आजगमढ़ रोड )<br>पाण्डेयपुर, वाराणसी |

# अपनी बात

पुराणों एवं धार्मिक ग्रन्थों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि भगवान् शंकर के त्रिशुल पर स्थित तीन लोक से न्यारी मोक्षदायिनी धर्मस्थली काशी की रचना आशुतोष भगवान् शंकर के करकमलों सम्पादित हुई। काशी समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ है। ऐसी नगरी का माहात्म्य लिखना पूर्वजन्म के संचित पुण्यं का फल एवं आत्मशुद्धि का मार्ग-निर्देशन है।

मेरा परिवार गणित एवं ज्योतिष के जगत प्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी का परिवार है। नाना स्वर्गीय पं० वीरभद्र मिश्र काशी के उद्भट विद्वान पं० शिवकुमार शास्त्री के अन्तरंगों एवं अपने समय में पंडितों के कोतवाल रहे हैं। पिताश्री के अग्रज स्वर्गीय पं० रमाशंकर द्विवेदी महाराज काशीनरेश के धर्माधिकारी थे। इसीलिए पारिवारिक संस्कार, आचार एवं विचार मेरे अन्दर काशी के विभिन्न स्वरूपों को प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करते रहे हैं। फलस्वरूप यह ग्रन्थ काशी के आध्यात्मिक सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास है। इस कार्य में मुझे कितनी सफलता मिली है यह निर्णय मैं आप सभी महानुभावों पर छोड़ रहा हूँ।

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी के अध्यक्ष डा० पं० करूणापति त्रिपाठी एवं निदेशक पं० धर्मनारायण त्रिपाठी का मैं विशेष आभारी हूं जिनका सौजन्य सहयोग प्राप्त करके यह ग्रन्थ आपके समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हो सका हूं।

इस ग्रन्थ के प्रति संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति माननीय डा० रामकरन शर्मा की शुभकामनाएँ स्तुत्य हैं।

ग्रन्थ के प्रणयन में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुराणेतिहास विभागाध्यक्ष डा० पारसनाथ द्विवेदी का मार्ग-निर्देशन एवं संस्कृत

प्रचारिणी सभा, काशी के अध्यक्ष तथा संसद सदस्य मौसेरे भाई पं० सुधाकर पाण्डेय की प्रेरणा अत्यन्त सराहनीय है।

ग्रन्थ के प्रकाशन में अखिल भारतीय शिक्षणालय प्रबन्धक संघ के महामंत्री अग्रज पं० जय नारायण दूबे एवं प्रसाद उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री यज्ञनारायण दूबे, मुद्रण में श्री हरि प्रसाद एवं प्रूफ संशोधन में डा० बद्रीनाथ पाण्डेय एवं आचार्य बच्चेलाल की अभिरुचि प्रशंसनीय है।

संभव है शीघ्रता में ग्रन्थ के प्रकाशन में कुछ त्रुटियां रह गई हों इसके लिए मैं सभी से क्षमा चाहूंगा तथा उन लोगों के प्रति विशेष आभारी हूंगा जो कि मुझे त्रुटियों से अवगत कराते रहेंगे जिससे कि सन्दर्भित त्रुटियों से बचा जाना संभव हो सके।

—डा० जगदीश नारायण दूबे

# विषयानुक्रमणिका

•

# पौराणिक दर्पण में काशी

उत्तर भारत में पतित पावनी पुण्यसलिला गंगा के पश्चिम तट पर बसी हुई काशी नगरी युग-युग से विभिन्न संस्कृतियों का संगम रही है। काशी का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद के पिप्पलाद शाखा में मिलता है।[1] ज्ञान संहिता के अनुसार 'कर्मणा कर्षणात् सा वैकाशीति परिकथ्यते।' अर्थात् जो कर्मो (पापों) का क्षय कर दे वही काशी हैं। जावाल उपनिषद में काशी को अविमुक्त की संज्ञा देते हुए कहा गया है कि जहाँ लोग भक्ति की कामना से आकर उसे प्राप्त करें वही काशी है। काशी को यज्ञभूमि बतलाते शतपथ ब्राह्मण का कहना है कि—यः काशीनां भरतः सात्वतामिव।[2] कौशतकी की ब्राह्मणोंपनिषद् में भी अकाशयोग्निना दत्तं, कहा गया है।[3] पुराण के माध्यम से वेदव्यास कहते हैं कि—काशतेऽत्र यतो ज्योतिस्तनाख्येयमीश्वर अतो नामपरं चास्तु काशोति प्रथित विभो।' अर्थात अभिव्यक्ति से अलक्षित शिवलिङ्गस्वरूप एक महाशक्ति इस क्षेत्र में प्रकाशित है, इसी कारण इस क्षेत्र को काशी की संज्ञा दी जाती हैं। ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व काशी विद्यमान थी। रामायण और महाभारत में काशी और काशिराज की चर्चा आयी है।

**काशी का आविर्भाव**—शिवपुराण में एक आख्यान है कि–जब भगवान शिव की पत्नी सती अपमानित होकर अपने पिता दक्ष के यहाँ हो रहे यज्ञकुण्ड में कूदकर मर गयीं तो उनके शोक में भगवान शिव उनका मृत शरीर लेकर विभिन्न स्थानों में घूमते रहे। जब वे वर्तमान मणिकर्णिका के पास पहुंचे तो सतो का सिर टूटकर वहीं गिर पड़ा। मोहवश शिव जी ने उसी स्थान को अपना स्थायी निवास बना लिया। शिव के गण भी वहीं आकर रहने लगे। उसी समय से इस स्थान का नाम गौरीमुख प्रसिद्ध हुआ। काशी रहस्य के अनुसार—प्रत्येक युग के अन्त में प्रलय होता रहा लेकिन छत्राकार काशी उससे अप्रभावित रही।[4]

**काशी के पौराणिक राजा**—महाभारत के अनुशासन पर्व में वर्णित है कि धन्वन्तरी के पुत्र केतुमान ( हर्यश्व ) काशी के राजा थे। युद्ध में हर्यश्व को हैहय पुत्रों ने मार डाला। हर्यश्व के बाद भीमरथ काशिराज हुए। भीमरथ को भी हैहय गणों ने मार डाला।[5] उसके पश्चात् दिवोदास काशी के राजा हुए। उन्होंने काशी में तप करके ब्रह्मा से वरदान मांगा कि देवता आकाश में स्थित हों और नागादि पाताल में रहकर पृथ्वी पर न आवें। इस वृतान्त को सुनकर शिवजी अपना लिङ्ग काशी में स्थित करके

---

१—अथर्ववेद–५-१२-१४ २—शतपथ ब्राह्मण–१३-५-७-२१ ३—ब्राह्मणोंपनिषद्–१३-५-४-१९ ४—काशी रहस्यम्–२-८९ ५—भागवत पुराण–९-१७-२-९

गणोंसमेत मन्दराचल चले गये ।[६] समस्त देवताओं को पृथ्वी छोड़कर चले जाने पर दिवोदास काशी में राज्य करने लगा ।

कालान्तर में महादेव जी शैलजा उमा से विवाह कर अपने ससुराल हिमालय में ही विहार कर रहे थे । एकदिन उमा की मां ने महादेव जी की निन्दा करते हुए उन्हें दरिद्र ठहराया । इसपर दुःखी होकर उमा ने भगवान शिव से कहा—'देव ! मैं अब यहाँ नहीं रहना चाहती । मुझे अन्यत्र अपने घर ले चलिये ।' इस पर शिव जी ने अपनी प्रिय लीलाभूमि काशी चलने का विचार किया । चूँकि उस समय काशी में दिवोदास राज्य कर रहा था इसलिए शिवजी ने उसे हटाने के लिए अपने गणों को आदेश दिया । गणों ने काशी जाकर कुण्डनाद नामक नाई को शिष्य बनाकर कल्याण-हेतु नगर के द्वारप्रान्त में गणपति की एक मूर्ति स्थापित करने का परामर्श दिया । कुण्डनाद ने द्वार प्रान्त में विधिपूर्वक निकुम्भ ( गणपति ) की मूर्ति स्थापित की । निकुम्भ अपनी पूजा पाकर काशीवासियों को वर देने लगा लेकिन दिवोदास राजा की रानी को एक पुत्र मांगने पर वरदान नहीं दिया । निकुम्भ के इस व्यवहार से राजा दिवोदास ने क्रोध में आकर निकुम्भ के स्थान का नाश कर दिया । उसने अवसर देखकर दिवोदास को शाप दे दिया । उस शाप से काशी नगरी धीरे-धीरे जनशून्य हो गयी । तब राजा दिवोदास ने गोमती-गंगा के संगम पर विराट नाम की एक नयी नगरी बसायी । और वहीं रहने लगा ।[७]

तदनन्तर भगवती पार्वती से परामर्श कर शिवने दिवोदास को धर्मच्युत करने के लिए चौसठ योगिनियां भेजीं । लेकिन काशी के तेज और दिवोदास की धर्मपरायणता के कारण कुछ न बिगाड़ सकीं । इसके पश्चात् सूर्य ने काशी आकर अपने १२ रूपों का प्रभाव फैलाया लेकिन वे भी असफल रहे । शिव जी ने धीरे-धीरे समस्त देवताओं को काशी भेज दिया लेकिन कोई भी दिवोदास को काशी से नहीं हटा सका । अन्त में शिव जी ने गणेश को ज्योतिषी के रूप में भेजा । दिवोदास गणेश की विद्या से प्रभावित हुआ । गणेश जी ने राजा को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया । दिवोदास को राज्य से अरुचि हो गयी । उसने गणेश जी से मोक्ष हेतु परामर्श किया । गणेश जी ने कहा—'उत्तर से एक ब्राह्मण आयेंगे, उनके उपदेश से आपको मोक्ष प्राप्त होगा ।' तदनन्तर विष्णु ने आकर राजा को उपदेश दिया और काशी में शिवलिंग स्थापित करने को कहा । दिवोदास ने विधिपूर्वक शिवलिङ्ग स्थापित किया । उनके पश्चात् शिव जी पार्वती सहित काशी में पधारे । इसमें आचार्य का कार्य विष्णु ने किया । अन्त में

---

६—शिवपुराण-६-५ ७—ब्रह्माण्ड पुराण-११ अध्याय

दिवोदास ने वरुणा और अस्सि का भाग देवताओं को समर्पित करके मोक्ष प्राप्त किया ।[८]

दिवोदास की रानी औरस से उत्पन्न प्रतर्दन नामक पुत्र यज्ञप्रिय राजा हुआ । इनका समय भगवान रामचन्द्र का समय बतलाया जाता है । प्रतर्दन के दो पुत्र वत्स एवं गर्ग हुए । वत्स काशी के राजा हुए । वत्स की पत्नी मदालसा थी ! मदालसा के गर्भ से अलर्क हुए । अलर्क के समय में काशी राज्य बहुत विस्तृत हो गया ।[१०] अलर्क के बाद सन्नति, सुनीय, क्षेम्य, केतुमान सुकेतु, धर्मकेतु, सत्यकेतु, विभु, आनर्त, सुकुमार, कृष्टकेतु, वेणुहोत्र, भर्ग, भार्गभूमि ने काशी में राज्य किया ।

वैदिकयुग में स्थानवाचक प्रथा के अनुसार काशी के राजाओं को कास्य कहकर सम्बोधित किया जाता था । इस तरह पौराणिक युग में सभी लोगों से पूजित भगवान शिव काशी में विराजमान रहे ।

काशी नगरी के प्राचीन अवशेषों का पता १९४० ई० में रेलवे द्वारा करायी गयी खुदाई से चलता है । इसमें कुछ ऐसे अवशेष प्राप्त हुए हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि यह नगर ७०० ई० पू० में पूर्ण अस्तित्व में था । ये अवशेष काशी के राजनैतिक धार्मिक एवं सामाजिक इतिहास के विविध पक्षों की पुष्टि करते हैं ।

## ऐतिहासिक दर्पण में काशी

महाजनपद काल में काशी का स्वतन्त्र अस्तित्व था । ब्रह्मदत्त वंश का राजा राज्य करता था । उस समय यह राज्य तक्षशिला के समान ही विद्याकेन्द्र था ।[१४] यहां का राजाकाशिराज न्यायप्रिय एवं शान्तिप्रिय था ।

इसकाल में दिवाली, छत्र-मंगल, हस्तिमंगल, मदनोत्सव, जलोत्सव विशेष रूप से मनाया जाता था । काशी में जो वस्त्र बनते थे उन्हें काशी कुत्तय कहते थे ।[१५] ये कपड़े मुलायम एवं नीले होते थे। यहां के लोग चन्दन प्रयोग करते थे।[१६] काशी में अन्तिम छोर पर ५०० बढ़ई रहते थे । वे सब कुछ निर्माण कर सकते थे ।[१७] यहां चूड़ी और हाथीदाँत के सामान बनते थे, इनके अलग-अलग बाजार थे। काशी व्यापार का केन्द्र था । ये तक्षशिला और श्रीवस्ती से विशेष व्यापार करते थे यहां घोड़ों का[१८] व्यापार भी होता था ।[१९] यहां पर आचार्य-धर्म का विशेष जोर था ।[२०] वैश्याओं की अच्छी बस्ती थी ।[२१]

---

८—ब्रह्माण्ड पुराण १२ वां अध्याय ९—विष्णु पुराण ४-८-१२-२१
१०—वायु पुराण-२-३०.६४-७५ ११—हरिवंशपुराण-१२९.२९-३४,७२-८२
१२—ललितविस्तर अध्याय-२९ १३—काशीका इतिहास-राजा मोतीचन्द्र-४५-४६
१४—कुलुक जातक १५—जातीवाद जातक १६—मातंक जातक १७—मोर जातक
१८—चम्म जातक १९-पुन्तक्क जातक २०—राध जातक २१—सुलसा जातक

जब काशी में देवदत्त राज्य कर रहा था उस समय भारत में बौद्धमत प्रबल हो उठा। तो ईसा पूर्व ५०० में शाक्यसिंह ने सारनाथ में बौद्ध मन्दिर स्थापित किया और वहीं उपदेश देने लगा। हिन्दूराजा देवदत्त के प्रभाव से काशी में बौद्धधर्म की उन्नति न हो सकी, तो बौद्धराजा शिशुनाग ने देवदत्त को जीतकर उसे अपने राज्य के अधीन कर लिया। शिशुनागवंश का पाचवाँ राजा विम्बिसार जब ई० पूर्व ६४२ में राजा हुआ तो उसने बलपूर्वक काशी के कुछ सनातनियों को छोड़ समस्त भारतवर्ष को बौद्धधर्म में दीक्षित कराया। इस काल में काशी राज्य विम्बिसार के अधीन था। काशी की देख-रेख प्रसेनजित करता था। प्रसेनजित के बाद काशी कोशल का राजा विडूडभा हुआ उसके बाद ४५९ ई० पू० में काशी मगध में मिला लिया गया। उसके बाद ३२६ ई० पू० तक काशी पर नन्दवंश का अधिकार रहा। ३२१ ई० पू० में मौर्य साम्राज्य की स्थापना हुई। ई० पू० १८४ में शुंगवंश का अधिकार मगध पर रहा। राजघाट में मिली मुद्रा के अनुसार यह पता चलता है कि इस युग में काशी पर कौशांवी के राजवंश का अधिकार था। इस काल में व्यापारी लोग वाराणसी को 'जित्वरी' के नाम से पुकारते थे।

आन्ध्रवंशो के अधीन काशी कई वर्षों तक रही। इनके पतन के पश्चात् गुप्त तथा उज्जैन नरेशों का प्रभुत्व रहा। इस वंश के अन्तिम शासक स्कन्दगुप्त को कोई सन्तान नहीं थी फलस्वरूप अपने दौहित्र हर्षवर्द्धन को उन्होंने ६४० ई० में शासन की वागडोर थमा दिया। कुछ वर्ष बाद कन्नौज के नरेश यशोवर्मा ने अपने अधीन कर लिया। यशोवर्मा की कश्मीर युद्ध में मृत्यु हो गयी, हैहयवंशीय राजा वनार ने ७४१ ई० में काशी का राज्य संभाला। बनार के बाद १०९६ ई० में कर्णदेव राजा हुए। कुछ वर्ष बाद बंगाल के पालवंशीय महिपाल ने राज्य किया। कालान्तर में इसी वंश के राजा चन्द्रदेव का अधिकार हो गया। चन्द्रदेव के बाद उनके पुत्र मदनपाल तथा मदनपाल के बाद उनके पुत्र गोविन्दचन्द्र एवं गोविन्दचन्द के बाद विजय राजा हुए। उनके पुत्र जयचन्द्र ने काशी का राज्य संभाल कर मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया।

थोड़े-थोड़े काल तक कई राजा हुए उनमें कर्णपाल एवं अर्जुनपाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। फिरोजतुगलक ने काशी पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर

लिया। फिरोज तुगलक की मृत्यु के बाद सिकन्दर लोदी ने काशी पर अधिकार कर लिया। कुछ समय पश्चात डोमनदेव ने भी शासन किया। १५२७ ई० में बाबर ने काशी पर आक्रमण कर अपने अधिकार में कर लिया। तुगलक वंशीय शेर खां ने पुनः काशी को अपने अधिकार में कर लिया। काशी पर कुछ समय तक शेरशाह सूरी का अधिकार रहा। १५५६ ई० में अकबर ने अपने अधिकार में ले लिया। १५६६ ई० में खनेजमा ने काशी को अपने अधीन कर लिया। अकबर ने १५६७ ई० में खनेजमा को मारकर काशी का शासन मुनइन खां को सौंप दिया। सन् १९५९ में औरंगजेब ने काशी पर आक्रमण कर उसका राजा अपने पुत्र मुहम्मदशाह को बनाया। १७३८ ई० में मंशाराम सिंह ने मुहम्मदशाह से काशी का पट्टा लिखवाया। मंशाराम सिंह के पश्चात् उनके पुत्र बलवन्त सिंह को मुहम्मदशाह ने काशी का राजा घोषित किया। बलवन्त सिंह को छत्राणी रानी से एक सन्तान हुई। उनका नाम चेतसिंह था। बलवन्त सिंह के परिवार के लोग चेतसिंह की जगह उनके भतीजे मनियार सिंह को काशी का उत्तराधिकारी घोषित किये। १७७० में बलवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् चेतसिंह ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया और अवध के नवाब से सन्धि कर अपने को काशी का राजा घोषित कराया। १७८१ ई० में वारेनहेस्टिंग्स ने काशी को अपने अधिकार में ले लिया और बलवन्त सिंह के दौहित्र महीप नारायण सिंह को राजा घोषित किया। सन् १७९५ ई० में राजा महीप सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ट पुत्र उदित नारायण राजा हुए। राजा उदित नारायण को कोई सन्तान नहीं थी इसलिए अपने बड़े भाई के पुत्र ईश्वरी नारायण सिंह को दत्तक पुत्र बनाया। १८३५ में उदित नारायण सिंह काशी के राजा हुए। १८८९ में राजा ईश्वरी नारायण सिंह की मृत्यु हो गयी। ईश्वरी नारायण को कोई सन्तान नहीं थी इसलिए अपने भाई नर नारायण सिंह के पुत्र प्रभु नारायण सिंह को दत्तक पुत्र बनाया और उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रभु नारायण सिंह काशी के राजा हुए। प्रभु नारायण सिंह को कोई संतान नहीं थी इसलिए उन्होंने अपने चचेरे भाई विभूति नारायण सिंह को गोद लिया। काशीवासी अनौपचारिक रूप में उन्हें काशीनरेश मानते हैं।

●

# सांस्कृतिक दर्पण में काशी

गंगा के बायें तट पर वरुणा-अस्सी के मध्य बसी हुई अति प्राचीन नगरी काशी भारतीय संस्कृति का दर्पण है। वैष्णव, शैव, तांत्रिक, बौद्ध, जैन आदि समस्त सम्प्रदाय के लोग काशी को अपना तीर्थस्थल मानते हैं। भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश यहीं दिया था। जैनधर्म के चार तीर्थंकर यहों पैदा हुए थे। शताब्दियों पूर्व शंकराचार्य ने दक्षिण भारत से पधार कर हमारी हिन्दू-संस्कृति को नये सिरे से प्रतिस्थापित किया। काशी की संस्कृति का वर्णन पुराणों और प्राचीन संस्कृत साहित्य में पर्याप्त मिलता है। काशी सर्वदा विद्वानों, संतों भक्तों का केन्द्र रही है। वैदिक काल में काशी धर्म का केन्द्र थी। यहाँ के आचार्य सूदूर राज्यों एवं देशों में जाकर अपने धर्म का प्रचार करते थे। विद्याध्ययन एवं शास्त्रार्थ के प्रमाण धार्मिक ग्रन्थों में मिलते हैं। यह नगरी चैतन्य महाप्रभु, रामानुज, वल्लभाचार्य, कबीर, गुरुनानक, तुलसीदास आदि अनेक संतों की साधना--भूमि रही है। विभिन्न धर्मावलम्बियों ने इस नगरी की प्रतिष्ठा में अनेक मन्दिरों, धार्मिक स्थलों आदि का निर्माण कराया।[1]

**मठ और अखाड़े**--शक्ति सम्प्रदायों और बौद्धों के वज्रयान से पूर्ण मंत्र-तन्त्र का भी यहाँ काफी प्रचलन रहा है। वामाचार, एवं कौलाचार के साधक काशी को सिद्धपीठ मानकर निवास करते हैं। चौसट्टीघाट के आसपास एवं लक्ष्मीकुण्ड पर पोखरे वाले मठ के सामने एवं नवदुर्गा मन्दिरों में गुह्य साधनाएँ होती हैं। काशी में मुख्यरूप से दस अखाड़े और उनके मठ विशेष प्रसिद्ध हैं—सागर, अरण्य, वन भारती, पुरी, गिरी, आनन्द, निरंजनी, निर्वाणी, जूना। लिङ्गायत सम्प्रदाय के विश्वाराध्य मठ में कोटि शिवलिङ्गों की स्थापना की गयी है। यह मठ दक्षिण भारतियों का प्रमुख देवस्थल है। जंगमवाणी में जंगमों का मठ है। गुरुनानक के अनुयायियों की २४ संगतें (मठ) नगर के विभिन्न स्थानों में स्थापित हैं। जिनमें पाठ व ज्ञान-चर्चा होती है।

सिन्धियों के धर्मगुरु उदासीन सम्प्रदाय वालों का साधुबेला आश्रम नामका एक मठ अस्सी पर है। आसभैरव के बगल में शहजारे बाबाका मठ है एवं कमच्छा में गुरुबाग का है जिसमें गुरुवाणी आदि होती है। रामानन्द सम्प्रदाय का एक मठ पंचगंगा घाट पर है,

---

१—विभिन्न सम्प्रदायों के भूमिवासी—पं० उदय शंकर शास्त्री।

माधवदास के धरहरा के नीचे रामानन्द की मढी है। जहाँ ध्यान, संकीर्तन पूजन होता रहता है। कबीरचौरा मुहल्ले में कबीर मठ है उसी मठ से सटा हुआ एक टीला है जिसे नीरुटीला कहा जाता है। कहते हैं कि यहाँ स्थित दोनों कब्रें नीरु और नीमा की हैं। कबीर के चार प्रधान शिष्यों के चार मठ हैं। सूरत गोपाल का कबीरचौरा का मठ, धर्मदास का पियरी मुहल्ले का मठ, जागू का लहरतारा का मठ। भागू का मठ कबीर चौरा के बगलमें था लेकिन मृतप्राय है। इंगलिशिया लाइन के चौराहे के पास रैदास जी का मठ है। अस्सी मुहल्ले में दादुदयाल सम्प्रदाय के अनुगामी सुरेका ने एक मठ बनवाया जहाँ सत्संग होता है। अघोर सम्प्रदाय को दो भागों में विभक्त करने वाले काशी के रामगढ़ निवासी बाबा कीनाराम ने अघोर पथ की वाम परम्परा शुरू की। क्रिमिकुण्ड पर कीनाराम का मठ हैं, यहाँ भाद्र मास की शुक्ल ६ तिथि को सात गद्दियों के महन्त दो दिनों तक सत्संग करते हैं तथा मेला लगता है। तुलसी मन्दिर के निकट गेरुए रंग से पुता गणेश मठ है। इसे चिम्मा जी अप्पा ने बनवाया था। महामण्डलेश्वर विद्यानन्द जी महाराज का गीताधर्म मठ मिश्रपोखरा में है। स्वामीनारायण सम्प्रदाय का एक मठ मछोदरी तालाब के सामने बना है। गुजरात में इसकी बड़ी प्रतिष्ठा है। इसमें ग्रन्थों का पाठ एवं धार्मिक चर्चा होती है। राजघाट के पास वरुणा के किनारे तोताद्रि मठ है, जो दक्षिण भारत के लोगों में विशेष प्रसिद्ध है।

**काशी के घाट**–गंगा के किनारे निर्मित काशी के घाट भारत के सांस्कृतिक धरोहर हैं। युग-युग से प्रातःकालीन सूर्य की प्रथम रश्मियों के साथ गंगा के तट पर धार्मिक लोगों द्वारा हर-हर बम-बम के साथ स्नान, ध्यान पूजन एवं कीर्तन का कार्य शुरू हो जाता है।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि काशी के घाटों का सर्वप्रथम निर्माण अकबर काल में मराठों द्वारा कराया गया। **राजघाट**–इस घाट को १८६८ई० में पेशवा के नायक राजा विनायक राव ने बनवाया था। **वरुणा संगमघाट**–यह घाट गंगा और वरुणा के संगम पर कच्चा बना है। **प्रहलादघाट, गायघाट**–छोटा–एवं कच्चा है। **लालघाट**–राजा बलदेव दास बिड़ला ने बनवाया। **बद्री का परकोटा**–इसे महाराज बुंदी ने बनवाया। **पंचगंगाघाट**–इसे श्रीपत राव ने बनवाया। **दुर्गाघाट**, ब्रह्माघाट–को

१७४० ई० में नारायण दीक्षित काय गांवकर ने बनवाया। **गणेशघाट**—इसे माधव राव पेशवा नें बनवाया। **रामघाट**–२०० वर्ष पूर्व महाराज जयपुर ने बनवाया। **भोसलाघाट**-महाराज नागपुर ने ऊन्नीसवी शताब्दी में बनवाया। **संकटाघाट**-१८२५ ई० में विसम्भर पण्डित की विधवा पत्नी ने बनवाया। **सिन्धियाघाट**–यह पुराना विश्वेशर घाट है। इसे ग्वालियर की महारानी वैजावाई ने सन १८३० में बनवाया। पुनः १८४९ में इसका जीर्णोद्वार उसी राज्य द्वारा कराया गया। **मणिकर्णिकाघाट**–१७२० ई० में सदाशिव नायक ने सर्वप्रथम इस घाट का निर्माण कराया। इसके पश्चात् अठारहवीं सदी वे अन्त में इन्दौर राज्य की अहिल्यावाई ने इसका कायाकल्प कराया। **ललिताघाट**–इसे नेपाल के महाराजा ने बनवाया था। **मीरघाट**--काशी नरेश के भूतपूर्व दीवान मुंशी दयाशंकर ने बनवाया। **त्रिपुरा भैरवी**–यह घाट कच्चा है। **मानमन्दिर घाट**–१६०० ई० में अजमेर नरेश राजा मानसिंह ने बनवाया। **घोड़ा घाट राजेन्द्र प्रसाद घाट**–यह पक्का घाट है। **दशाश्वमेध घाट**--वालाजी वाजीराव ने १७४८ ई० में बनवाया। **अहिल्याबाई घाट**–को महारानी अहिल्यावाई ने अपने काशी-प्रवास के समय बनवाया था। **मुंशीघाट**--नागपुर राजा के मंत्री श्रीधर मुँशी ने १८१२ ई० में बनवाया। पहले यहाँ किला था। **राणा घाट**–उदयपुर के महाराणा ने सत्रहवीं सदी में बनवाया। **चौसट्टी घाट**--बंगाल के राजा दिगपति ने सत्रहवीं शताब्दी में बनवाया। **पाण्डेयघाट**–अठारहवीं शताब्दी में काशी के पण्डों के नाम पर पड़ा है। **राजाघाट**—नायब राजा विनायक राव नें बनवाया। **नारद घाट**–कचचा घाट है। **हनुमान घाट**–सत्रहवीं शताब्दी में जूना अखाड़ा के नागाओं द्वारा निर्मित है। **हरिश्चन्द्रघाट**—इसका अस्तित्व आदिकाल से है। कहा जाता है कि यह एक प्राचीन स्मशान घाट है! **केदार घाठ**--इसे महाराज चेतसिंह ने बनवाया। **ढुण्डी घाट**–इसे ढुण्डी सम्प्रदाय के लोगों ने बनवाया। **शिवाला घाट**–महाराज बलवन्त सिंह के कोषाध्यक्ष ने बनवाया। **वक्षराज**--वक्षराज ने बनवाया था। बाद में जैनियों ने खरीद लिया। **अक्रूरघाट**–स्व० शिवप्रसाद गुप्त के पूर्वजों ने बनवाया। **जानकीघाट**–सुरसरी की रानी ने बनवाया। **पानीकलघाट**--इसके द्वारा नगर में जल वितरित किया जाता है। **तुलसीघाट**—सोलहवीं शताब्दी में काशिराज द्वारा बनवाया गया। **वाजीरावघाट**–पूना नरेश वाजीराव पेशवा ने सत्रहवीं शताब्दी में बनवाया। **रीवाघाट**–महाराजा रणजीत सिंह के पुरोहित श्री लला मिश्र ने बनवाया। **अस्सीघाट**–यह घाट कच्चा है। अठारहवीं शताब्दी मे बिहार की सुरसरी की रानी साहिबा इस घाट को बनवाना चाहती थी। पत्थर आदि गिरे लेकिन कार्य अपूर्ण रह गया।

---

**काशी का इतिहास—राजा मोतीचन्द पृष्ठ—३८०**

## मन्दिर

**विश्वनाथ मन्दिर**—इतिहासकारों का मत है कि यहाँ प्रथम विश्वनाथ मन्दिर ईसासे १९४० वर्ष पूर्व बना था इसे विश्वेश्वर भी कहते थे। गत दो हजार वर्षों में इसे कई स्थानों पर स्थापित किया गया लेकिन शिवलिङ्ग वही पुराना है। गजेटियर के अनुसार सन् ११ ९४ में शहाबुद्धीन गोरीने काशी पर आक्रमण कर विश्वेश्वर का मन्दिर तोड़वा दिया। अलतमश के शासन काल में गुजरात के सेठ वस्तुपाल ने पुनः वही बनवाया। १४४७ में जौनपुर के शर्कीवंश सुलतान महमूद-शाह ने उसे तोड़वाकर बनवा दिया। तीसरी बार ज्ञानवापी ( वर्तमान मस्जिद ) में मूर्ति स्थापना हुई, सन् १४९४ में सिकन्दर लोदी ने इसे तोड़वा दिया। १५३१ ई० में नीलकंठी टीकाकार नारायण भट्ट ने ज्ञानवापी पर मन्दिर बनवाकर वहीं विश्वेश्वर को स्थापित किया। चौथी बार १६९६ ई० में औरंगजेब ने इसे तोड़वाकर मस्जिद बनवादिया। औरंगजेब के आक्रमण के समय पण्डितों ने गुप्त रूप से विश्वेश्वर शिवलिङ्ग को ज्ञानवापी के कुए में डाल दिया। १६६९ ई० से १७८५ ई० अर्थात ११६ वर्षो तक विश्वेश्वर लिङ्ग की विधिपूर्वक स्थापना का उल्लेख नहीं मिलता। एक दिन विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने स्वप्न देखा कि विश्वेश्वर जी नर्मदा में हैं। उस ब्रह्मचारी ने अहिल्यावाई के समक्ष ही कूप में गोते लगाकर विश्वेश्वर का लिङ्ग निकाला और उसे विधिपूर्वक १७८६ ई० में स्थापित किया। अहिल्यावाई ने वहीं मन्दिर बनवादिया। १८३९ ई० में पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने साढ़े वाइस मन सोना लगवाया। वाइसराय अरविन महोदय ने चांदी सोने की गंगा जमुनी, पंचपात्र, आचमनी और आधार अर्पण किया। नेपाल नरेश चन्द्रशेखर जंगबहादुर ने अष्टधातु का बृहदाकर घन्टा चढ़ाया। बीसवीं सदी के उतरार्ध में इस मन्दिर में काफी अव्यवस्था हो गयी। ४।५ जनवरी १९८३ की रात्रि में विश्वनाथ जी के लिङ्ग के अरघे से चोर लोग सोना चुरा ले गये। वे पकड़े गये। अप्रैल १९८३ में इसकी व्यवस्था उत्तर प्रदेश सरकार ने लेली। यह एक ऐसा मन्दिर है जहाँ संसार के किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का यात्री आता है तो इनके दर्शन अवश्य करता है। काशी-निवासियों का ऐसा विश्वास है कि उनके सम्पूर्ण कुशलक्षेम की रक्षा भगवान विश्वनाथ ही करते है। पूर्व में इस शिवलिङ्ग के स्थापित मन्दिर का नाम विश्वेश्वर रहा हैं। बाद में यह विश्वनाथ मन्दिर के नाम से विख्यात हुआ।

**अन्नपूर्णा मन्दिर**—विश्वनाथ मन्दिर के निकट अन्न की अधिष्ठात्री देवी का एक मन्दिर है। इनकी पूजा से अन्न की कमी नहीं रहती। इस मन्दिर में ऊपरी मंजिल में

स्वर्ण की चार मूर्तियाँ अन्नपूर्णा, विश्वनाथ, लक्ष्मी और पृथ्वीमाता की हैं। निचली मंजिल में अन्नपूर्णा की रजतमूर्ति हैं। रजतमूर्ति की वर्षभर पूजा होती है। स्वर्ण-मूर्तियों की पूजा अन्नकूट के अवसर पर होती है। **राममन्दिर**—अन्नपूर्णा मन्दिर के निकट स्थित इस मन्दिर को पुरुषोत्तम दास खत्री ने बनवाया। इसमें कालीजी, जगन्नाथ जी विष्णुलक्ष्मी रामपंचायत, राधाकृष्ण, शिवपार्वती और नृसिंह भगवान की मूर्तियाँ स्थापित हैं। **ढुण्ढीराज गणेश**—गणेश राम मन्दिर के मुख्यद्वार के निकट की गली में ढुण्डिराज गणेश की विशाल मूर्ति है। **सत्यनारायण मन्दिर**—इसे रुक्मानन्द जी बागला ने बनवाया है। मन्दिर में सत्यनारायण की स्वर्ण-मूर्ति स्थापित है यहाँ श्रावण मास में झूलाकी झाँकी होती है। **आदिविश्वेश्वर मन्दिर**--सत्यनारायण मन्दिर के पीछे विशेश्वर का मन्दिर है। इसका निर्माण जयपुर नरेश ने कराया। **मृत्युञ्जयमहादेव**—यह दारानगर मुहल्ले में स्थित है। इनके दर्शन से लोग रोगमुक्त हो पाते हैं। **कालभैरव**--प्रथम स्थान औंकारेश्वर के पश्चिम कपालमोचक सरोवर के तटपर था। तेरहवी शताब्दी के बाद मकान नं के ३२।२२ में हुआ। १७१५ ई० में बाजीराव पेशवा द्वारा भव्यमूर्ति खड़ी हुई। इन्हें काशी का कोतवाल कहते हैं। **पंचक्रोशीमन्दिर**—गोलागली स्थित इस मन्दिर का निर्माण सन् १९५१ में गण्डामल जी खत्री ने किया था। मन्दिर में काशी खण्डोक्त समस्तदेवताओं की प्रतिमायें हैं। मन्दिर के मध्य में स्फटिक के एकादश शिवलिङ्ग स्थापित हैं। **विशालाक्षी**—मीरघाट पर स्थित इस मन्दिर में विशालाक्षी देवी की विशाल मूर्ति स्थापित हैं। **केदार जी**--पूर्व में केदारघाट पर म० नः बी ६।१०८ में थे। वंतमान में सी० के० ७।१३३ में है, इसमें वृहद शिवलिङ्ग स्थापित है। **संकटमोचन**--बनारस हिन्दूविश्वविद्यालय के निकट गोस्वामी तुलसीदास द्वारा निर्मित बीसवी सदीके उतरार्ध में विशेष चर्चित है। **दुर्गाजी**—दुर्गाकुन्ड पर मकान नं० बी २७।२ में स्थित है। इसीसे लगा दुर्गा जी का विशाल मन्दिर है।

## काशी की सात पुरियां

**अयोध्या**—यह पंचक्रोसी वाले मार्ग पर वर्तमान रामेश्वर वाला क्षेत्र कहलाता है। **मथुरा**—यह पंचक्रोशी मार्ग पर नक्खी घाट स्थित क्षेत्र है। **काशी**—इसके अन्तर्गत ललिताघाट में पड़ने वाला क्षेत्र आता है। **विष्णुकांची**—इसके अन्तर्गत पंचगंगा वाला क्षेत्र पड़ता है। **आवंतिका**—यह वृद्धकाल का क्षेत्र है। **द्वारिका**—यह संकूलधारा वाला भाग है। **माया**---इसके अन्तर्गत संगमेश्वर रानी सुरसरी के मन्दिर के पास लोलार्क नदैली वाला क्षेत्र आता है।

## काशी के देवी-देवता

**ज्योतिर्लिङ्ग**—काशी में शिवलिङ्ग पूजन का परम्परा आदिकाल से चली आ रही है। मनोवृत्तियों के अनुसार काशी में तीन प्रकार के शिवलिङ्ग मिलते हैं—महर्षि एवं ब्राह्मण जो सतोगुण प्रधान होते हैं श्वेत रंग, राजे-महराजे जो रजोगुण प्रधान होते हैं लाल रंग एवं जो लोग तमोगुणप्रधान होते हैं काले रंग के शिवलिङ्ग की पूजा करते हैं। यद्यपि काशी में ५४ शिवलिङ्ग हैं लेकिन द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का विशेष महत्व है, उनकी स्थिति निम्न प्रकार है—

केदारेश्वर ( केदारघाट ) रामेश्वर ( मानमन्दिर ) गोकर्णेश्वर ( कोदई चौकी ) विशेश्वर ( प्रसिद्ध ) शैलेश्वर ( मछिया घाट ) त्रयंबकेश्वर ( हौज कटरा ) वागेश्वर ( काशीकरवट के पास ) महाकालेश्वर ( वृद्धकाल ) नागेश्वर ( भोसलाघाट ) घृष्णेश्वर ( मछोदरी पार्क की उत्तर दिशा में )

**कालभैरव**—नगर का आरक्षाधिकारी ( कोतवाल ) श्री कालभैरव हैं। आपका सिद्धस्थान पवित्र मन्दाकिनी ( मैदागिन ) भैरवनाथ मुहल्ले में अग्निकोण में स्थित है। कालभैरव अन्य आठ स्थानों पर अपने आठ अंशों में विभिन्न नामों से विराजमान हैं जिन्हें अष्टभैरव कहा जाता है।

**रुरुभैरव**— हनुमान घाट पर महाप्रभु बैकुण्ठ जी के पास स्थित हैं। **चण्डभैरव**–दुर्गाकुण्ड स्थित श्री दुर्गाजी के मन्दिर के दक्षिणी दालान में श्री भद्रकाली के दाहिनी ओर स्थित हैं। **असितांग भैरव**—वृद्धकाल में स्थित हैं। अमृतकूप से पूर्व मस्तक पर सिन्दूर लगा है। **श्री कपाल भैरव**–लाट भैरव कपाल मोचन तीर्थ पर स्थित है। वटुक भैरव—कमच्छा में स्थित हैं। **उन्मत्त भैरव**–देवरा ग्राम पंचक्रोशी मार्ग पर कंदवा से भीमचण्डी जाते समय ४ मील आगे स्थित हैं। **संहार भैरव**–पाटन दरवाजा गायघाट में स्थित हैं। **भीषण भैरव**–भूतभैरव महाल में नवकाश के पीछे भूतभैरव के नाम से विख्यात है। ये आठ भैरव अपने-अपने क्षेत्र की नाकेबन्दी करके आधिव्याधियों से काशी की रक्षा करते हैं तथा शरण में आये हुए भक्तों का भय निवारण करते हैं। भैरव की सेवा करने वाले मनुष्य भैरवी यातना से मुक्त रहते हैं। पुराणों में वर्णित

---

४. काशी का रथयात्रा मेला—विश्वनाथ मुखर्जी

५. ५, वाराणसी जो लक्खी मेले के लिए विख्यात है—एम भारती

६. काशी के इतिहास राजामोती चन्द। ७ न्यारे बनारस की निराली घटनाएँ डा० भानु शंकर मेहता

है कि काशी में यमराज का शासन नहीं बल्कि यहाँ तो कालराज का शासन चलता है। इन भैरवों के अतिरिक्त तीन और भैरव हैं। १. आस भैरव–नीचीबाग और चौक के बीच में इनकी प्रतिमा स्थित है २. आनन्द भैरव–सांगवेद विद्यालय के समीप अवस्थित है–वटुक भैरव–चौखम्बा के समीप गोपाल मन्दिर के पास इनका मन्दिर स्थित है।

**काशी की नव-गौरी**—चैत्रमास के नवरात्र में नव-गौरी के दर्शन का विधान बतलाया गया है। **मुख निमीलिका–गौरी**–गाय घाट के किनारे श्री राममन्दिर में स्थित हैं। **ज्येष्ठा गौरी**–भूतभैरव मन्दिर के पीछे इनका मन्दिर है। **सौभाग्य गौरी**–चौक में श्री सत्यनारायण मन्दिर के बगल में आदि विश्वनाथ के पूर्व इनका मन्दिर स्थित हैं। **शृंगार गौरी**–ज्ञानवापी मस्जिद के पीछे चबूतरे की दिवाल पर स्थित है सिन्दूर लगा है। **विशालाक्षी गौरी**–मीरघाट के समीप इनका प्रसिद्ध मन्दिर स्थित है। **ललिता गौरी**–ललिता घाट पर इनका मन्दिर स्थित है। **भवानी गौरी**–श्रीअन्नपूर्णा मन्दिर से सटे राम मन्दिर के दक्षिण चबूतरे पर श्री जगन्नाथ जी के दाहिनी ओर इनका मन्दिर स्थित है। **मंगला गौरी**–दूध विनायक महाल के समीप बाला घाट के ऊपर इनका प्रसिद्ध मन्दिर है। **महालक्ष्मी**–लक्ष्मीकुण्ड पर इनका मन्दिर स्थित है।

**नवदुर्गा**—आश्विन मास के नवरात्र में नव दुर्गा के दर्शन करने का विधान है। **शैलपुत्री**—काशी रेलवे स्टेशन से उत्तर की दिशा में वरुणा संगम तट पर स्थित हैं। **ब्रह्मचारिणी**—दुर्गाघाट महाल में इनकी विख्यात प्रतिमा स्थित है। **चित्रघंटा**—चौक थाना के सामने चित्रघंटा महाल में इनकी प्रतिमा है। **कूष्माण्डा**—दुर्गाकुण्ड पर श्री दुर्गाजी के नाम से प्रसिद्ध हैं। **स्कन्ध-माता**—जैतपुरा महाल में श्री वागेश्वरी देवी के नाम से विख्यात मन्दिर हैं। **कात्यायिनी**—सिद्धेश्वरी महाल में आदि विशेश्वर के मन्दिर के पूर्व में स्थित है। **कालरात्रि**—श्री अन्नपूर्णा मन्दिर के पीछे कालिका गली में इनकी प्रतिमा है। **महागौरी**—श्री अन्नपूर्णा माता को ही कहा जाता है, प्रसिद्ध विश्वनाथ मन्दिर के पूर्व विशाल मन्दिर है। **सिद्धिदात्री दुर्गा**—सिद्धमाता की गली में इनकी प्रतिमा स्थापित है।

**विनायक**—भगवान शंकर ने गणेश जी को ही अपने गणों का अधिपति बनाया था, इसलिए उन्हें ही गणपति' शब्द से अलंकृत किया गया। गणपति गणेश सौम्य एवम् शालीन प्रकृति वाले होने से ही गणपति थे। भगवान शंकर असुरों का संहार करने के लिये गणों को निर्देशित करते थे, जिनका नेतृत्व विनायक करते थे। पुराणों का काल प्रायः चौथी शताब्दी के आस-पास ही निर्धारित किया गया है। इसलिये विनायक की प्रतिमायें प्रायः चौथी शताब्दी के पूर्व अप्राप्य हैं। गणपति विनायक ने असुरों को

परास्तकर काशी को शिवनगरी अविमुक्त काशी के रूपमें प्रतिष्ठित होने में सहायता की थी। स्कन्दपुराण के काशी खण्ड में काशी की सुरक्षा हेतु ५६ विनायकों की चर्चा की गई है। प्रत्येक दिशा की सुरक्षा हेतु १४ विनायक संरक्षित किये गये हैं। चारों दिशाओं की सुरक्षा हेतु विनायकों की संख्या ५६ है। सभी विनायकों का अपना अलग-अलग वैशिष्ट्य है। सभी विनायकों के विभिन्न स्वरूप मात्र ढुण्ढीराज विनायक ही है। स्कन्दपुराण में जिन ५६ विनायकों की प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है ये सभी प्रतिमायें आज भी यथास्थान सुरक्षित हैं। इन विनायकों की सूची और वैशिष्ट्य इस प्रकार है—**अभयद विनायक**–यह सभी प्रकार के भय का निवारण करते हैं। इनकी प्रतिमा दशाश्वमेध घाट स्थित शूलकंटेश्वर के मन्दिर में मकान नम्बर डी० १७।१११ में स्थित है। **अविमुक्त विनायक**–इनका दर्शन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह अविमुक्तेश्वर मन्दिर के आग्नेय कोण में छोटा मन्दिर है। **आशा विनायक**–यह सभी आशाओं को परिपूर्ण करने वाले हैं। मनोरम तृतीया व्रत में इनका विशेष रूप से पूजन अर्चन किया जाता है। मीरघाट पर स्थित हनुमान जी के मन्दिर में मकान नम्बर डी ३।७९ में इनकी स्थिति है। **एकदन्त विनायक**–इनका मात्र एक ही दाँत दिखाई देता है। वाराणसी में सभी प्रकार के उपद्रवों को नष्ट करने वाले विनायक एक दन्त विनायक कहलाये। इनकी प्रतिमा बंगाली टोला मुहल्ले में पुष्पदन्तेश्वर मन्दिर में स्थित है। **उद्दण्ड विनायक**—इनकी उपासना करने वालों को सभी प्रकार की विघ्नबाधाओं से मुक्ति मिल जाती है। पश्चिमी क्षेत्र के बायव्यकोण में पान्चक्रोशी मार्ग के भुइली गांव में इनकी प्रतिमा स्थापित है। **उदण्डमुण्ड विनायक**–इनका मुख ऊपर की ओर उठा हुआ है। इनकी प्रतिमा त्रिलोचन महादेव के घेरे में वाराणसी देवी मन्दिर में स्थित है। **कूष्माण्ड विनायक**–यह विनायक उपासना करने वालों के ऊपर बड़े-बड़े उत्पातों से रक्षा करते हैं। यह विनायक फुलवरियाँ ग्राम में स्थित हैं। **कलि ( कलह ) प्रिय विनायक**–यह असुरों तथा उपासकों के विरोधियों में कलह कराते हैं तथा भक्तों के संकट का निवारण करते हैं। यह साक्षी विनायक पर मन प्रकाश्वेश्वर मन्दिर में मकान न० डी० १०।५० में स्थित है। **कालविनायक**—इनकी आराधना करने वालों से काल भी दूर भागे फिरते है। रामघाट की सीढ़ियों पर पेड़ के नीचे मकान न० के० २४।१० केद्वार कुण्ड पर है। **कुणिताक्ष विनायक**–दुष्टों की कुदृष्टि से काशी की रक्षा करते हैं। यह लक्ष्मीकुण्ड लक्ष्मी मन्दिर के पास मकान न० ५२।३८ में स्थित है।

**खर्वविनायक**—दूर्वासा ऋषि के प्रति क्रोध करने वाले विनायकों में एक नाम इनका भी उल्लिखित है। ये विघ्ननाशक और सिद्धिप्रदाता भी कहलाते हैं। यह गंगा

वरुणा के संगम पर आदिकेशव के समीप फुटहे किले के भीतर स्थित हैं। **गजविनायक**– काशी नगरी को दिवोदास के चंगुल से मुक्त कराने के लिये भगवान शंकर ने गजविनायक को काशी भेजा था। गजविनायक ने विरोधियों का संहार किया तथा सात प्रकार के चमचमाते हुए कुठारों को लेकर शिव की अगवानी की थी इनकी आराधना से प्रचुर सम्पदा की प्राप्ति होती है। राजादरवाजे के पास भारभूतेश्वर के मन्दिर में मकान न० सी० के ५४।४४ के पूर्व स्थित है। **गजकर्णविनायक**–सर्वमंगलकरण विनायक हैं। इनका कर्ण हाथी के समान है। कोतवालपुरा में ईशानेश्वर के मन्दिर में मकान न०सी.के. ३७।४३ में स्थित हैं। **गणनाथ या गणप्रिय या गणेश्वर गणनायक विनायक**– ये नील, कालकूट, भृगीरीट, एक पाद, वीरभद्र चारुमुख आदि गणों के स्वामी थे इसलिए गणेश्वर भी कहलाये यह विनायक पंचक्रोशी भीमचण्डी गाँव के समीप कचनार गाँव में स्थित हैं। **चिन्तामणि विनायक**–यह विनायक सभी प्रकार के चिन्ताओं से मुक्त करते हैं। ईश्वरगंगी मुहल्ले में जागेश्वर मन्दिर के बाहरी दिवाल के म० न० के० ६६।४ में स्थित हैं। **चतुर्दन्त विनायक**–इनके चार दाँत होने का उल्लेख है। इन विनायक की प्रतिमा दशाश्वमेध थाने के समीप ध्रुवेश्वर के मन्दिर में स्थित है। **ज्येष्ट विनायक**–सभी विनायकों में ज्येष्ट हैं, इसलिये श्रेष्ठ विनायक कहलाते हैं, ज्येष्ठ गुणों से अलंकृत होने हेतु ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी की इनकी पूजा का विधान है। यह विग्रह कर्णघंटा के ज्येष्ठेश्वर-ज्येष्ठा गौरी मन्दिर में सप्तसागर मुहल्ला के मकान न० के ६२।१४४ में अवस्थित है। **दुण्ढिराज विनायक**–इनका विग्रह काशी विश्वनाथ मन्दिर जाते समय विश्वनाथ गली के मुख्यद्वार पर है। इसमें गणेशजी धरती पर आसीन हैं। (२) रानी भवानी के मन्दिर में मकान न० सी० के ३५।२७ में स्थित हैं। **दन्तहस्त विनायक**–यह काशी के ऊपर आघात करने वाले विद्रोहियों से रक्षा करते हैं। यह बड़ागणेश मन्दिर के बाहर कूएँ के समीप स्थित है। **द्विमुखद्विशिरा या द्वितुण्ड विनायक**–इन्हें दो सिर हैं। यह सूर्यकुण्ड पर साम्बादित्य मन्दिर के दालान में स्थित हैं। **दुर्मुख विनायक**–इनका मुख विभत्स हैं। नेपाली खपड़े की गली में मकान नम्बर सी० के० ३४।६० में स्थित है। **द्वारविनायक**––यह विश्वनाथ मन्दिर के द्वार पर स्थित हैं, विश्वनाथ मन्दिर में असुरों के प्रवेश को रोकते हैं। **दुर्ग विनायक**– दुर्गाजी के मन्दिर के पास घेरे में टिले के पूर्व मकान नम्बर बी २७।२ में स्थित है। **कूटदन्त या कूटदन्त विनायक**–बृहद दाँत के कारण दन्तकूट विनायक कहलाते हैं, यह कृमिकुण्ड पर स्थित हैं। **देहलीवनायक या डेवढ़िया विनायक**–ये नगर के पश्चिमी हिस्से की सुरक्षा करते हैं। इनके सहयोग के लिये विशालाक्ष, महाभीम, कुण्डोदर और महोदय नामक गण भी नियुक्त हैं, इन्हें लड्डू, लावा, गन्ना आदि चढ़ाया

जाता है। पंचकोश यात्रा के समय इनका दर्शन किया जाता है। यह पंचकोशी मार्ग मे रामेश्वर नामक गाँव के निकट स्थित हैं।

**नागेश विनायक**—यह कष्टों से छुटकारा दिलाने वाले विनायक हैं। भोसला घाट के समीप नागेश्वर मन्दिर में म० नं० सी० के १।२० में इनकी प्रतिमा स्थापित है। **प्रमोद विनायक**—ये मन को आह्लादित करने वाले विनायक कहे जाते हैं। इनका मुख सुन्दर है। सुन्दरता प्राप्त करने के लिए इनके पूजन का विधान है। यह कचौड़ीगली के वृजसुन्दरी देवी के मकान नम्बर ८।८ में स्थित है। **पांचास्यु विनायक**—ये पिशाचों द्वारा पूजित हैं। यह पिशाचमोचन पर मकान नं० सी २१।४० में स्थित हैं। **पिचिंडिल विनायक**—असुरों की मायाबी प्रवृत्ति से काशी की रक्षा करते हैं। यह प्रहलादघाट पर प्रहलादेश्वर के मन्दिर के बाहर वटवृक्ष के नीचे मकान नम्बर ए १०।८० में फाटक के भीतर स्थित हैं। **प्रणव विनायक**—वी आपदाओं से काशी की सुरक्षा करते हैं। यह त्रिलोचन घाट पर ऊपर हिरण्यगर्भेश्वर के मन्दिर में स्थित है। **विन्दु विनायक**—यह काशी में अदृश्य आपदाओं से सुरक्षा प्रदान करते हैं। **भगीरथ विनायक**—यह विन्दुमाधव मन्दिर में पचगंगा घाट पर मकान नम्बर के० २२।३३ में स्थित हैं। दीर्घ कालीन आपदाओं से काशी को मुक्ति प्रदान करने वाले विनायक हैं। यह करुणेश्वर के समीप लाहौरी टोला में स्थित है। **मंगल विनायक**—यह काशी में सर्वमंगल प्रदान करने वाले विनायक हैं। यह स्थान मंगलागौरी के मन्दिर में मकान नं. सी.के. २४।३४ में स्थित है। **मोद विनायक**—काशी को मधुरफल प्रदान करने वाले विनायक हैं। यह काशी करवट के मकान न० सी० के० ३१।१२ में स्थित है। पंचक्रोशी यात्राक्रम में इनके पूजन का विधान है। **मणिकर्णि विनायक**—इस विनायक के कान में मणिसुशोभित हैं। पंचक्रोश यात्राक्रम में इनके पूजन का विधान है। यह मणिकर्णिका घाट पर पुलिस चौकी के समीप मकान नं० सी० के १०।४८ के सामने स्थित है। **मोदकप्रिय विनायक**—इन्हें लड्डू अतिप्रिय है इसलिए इन्हें मोदक प्रिय विनायक कहा जाता है त्रिलोचन घाट के समीप आदि महादेव मन्दिर में इनकी प्रतिमा स्थित है। **मुण्ड विनायक**—इस विनायक का शरीर पाताल में तथा मुंड ऊपर स्थित है इसलिए इन्हें मुंड विनायक कहा गया। इनकी प्रतिमा सदर बाजार के चण्डीश्वर के मन्दिर में स्थित है। **महाराज विनायक**—बड़ा गणेश नाम से विख्यात है यह मन्दिर मकान नं० के ५८।१०८ में स्थित है। **यज्ञ विनायक**—यह पंचमुखी विनायक है। इनके दो-दो सुण्ड दाहिनी और बायीं ओर है तथा एकमुख आगेकी ओर है। यह काशी की सभी आपदाओं से रक्षा करते हैं तथा पूजन करने वालों के कष्टों का निवारण करते हैं। माघ शुल्क चतुर्थी एवम्

पंचमी को इनका श्रृंगार होता है। यह विश्वनाथ गली के समीप ढुण्डीराज गली के कोतवालपुर मुहल्ले के मकान नं० सी० के ३७।१८ में स्थित है। **राजपुत्र विनायक**—सत्ताच्युत राजाओं को राज्य की पुनः वापसी हेतु इनकी उपासना राजा लोग करते हैं। मान्यताओं के आधार पर इनका नाम राजपुत्र विनायक पड़ा। यह राजघाट स्थित वरुणा और गंगा के संगम स्थल पर अवस्थित है। **लम्बोदर विनायक**—लम्बे पेट के कारण लम्बोदर विनायक कहलाते हैं। इनका दूसरा नाम चिन्तामणि विनायक भी है। यह ईश्वर गंगी मुहल्ले में जागेश्वर मन्दिर के मकान नं० के० ६४।४ में स्थित है तथा दूसरे अन्यत्र सिन्धिया घाट के उपर वशिष्ठाम देव के मन्दिर के द्वार पर मकान नं० सी के० ७।१६१ में स्थित है। **विकटदन्त विनायक**—बड़े-बड़े विकट दातों के कारण यह नाम पड़ा। दुर्वासा के प्रति भी इनका विकट रूख था। यह धूपचण्डी देवी के मन्दिर के पीछे की ओर मकान नं० जे० १२।१३४ में स्थित है। **वक्रतुण्ड विनायक**—समस्त प्रकार के पापपुंजों का हरण करने वाले विनायक कहलाते हैं। यह सरस्वती विनायक नाम से भी प्रसिद्ध हैं। यह चौसट्टी घाट के समीप मकान नं० डी० २०।४ में स्थित हैं। **विघ्नराज विनायक**—यह शंकर भगवान के परम प्रिय विनायक हैं। इनका कार्य विघ्न उत्पन्न करना एवं प्रसन्न होने पर विघ्नों का समूल नाश करना भी है। यह माया एवं वशीकरण के सिद्धिहस्त विनायक हैं। इन्होंने वाराणसी में असुरों का संहार किया था, तथा बाद में शान्ति की स्थापना की। यह चित्रकूट तालाब पर मकान नं० जे १२।३२ में स्थित है। **वरद विनायक**—यह भक्तों की उपासना करने वालों पर शीघ्र ही प्रसन्न होकर अभिष्टफल प्रदान कर देने वाले विनायक हैं। इसकी प्रतिमा प्रहलादघाट की सड़क पर मकान नम्बर ए० १३।१९ के बाहर स्थित है। **शालकंटक विनायक**—इनकी उपासना से शारीरिक व्याधियों का नाश हो जाता है। यह मडुवाडीह में तालाब के उत्तर भीमचण्ड विनायक से कुछ दूरी पर स्थित है। **स्थूल-दण्त विनायक**—यह आठों प्रकार की सिद्धियों को देने वाले हैं। यह मानमन्दिर घाट स्थित सोमेश्वर भगवान के मन्दिर के द्वार पर मकान नम्बर डी० १६।३४ में स्थित है। **सृष्टि विनायक**—यह श्रृष्टि के विनाशकर्ता विनायक कहे गये हैं। इनका मन्दिर अन्नपूर्णा मन्दिर के पीछे कालिका गली में मकान नम्बर डी० ८।३ के बाहरी दिवाल पर स्थित है। **स्थूल-जंघ विनायक**—यह शान्तिप्रिय व्यक्तियों के पापों का शमन करने वाले विनायक कहे गये हैं। यह रानीकुआँ पर छोटे मन्दिर में चित्रघंटा विनायक के पास में मकान नं० सी० के २३।.५ में स्थित हैं। (२) पशुपतीश्वर मन्दिर में मकान नं० सी० के १३।६६ में पंचगंगा घाट के समीप मंगलागौरी मन्दिर में स्थित है। **साक्षी विनायक**—यह एक दन्त हैं। काशी विश्वनाथ गली में इनका विशाल मन्दिर है। यह मानव के साक्षी

स्वरुप है। इनका दर्शन करने से मानव हर प्रकार के भव-बाधाओं से मुक्त रहता है। **सिद्ध विनायक**—यह हर प्रकार के कार्यों को सिद्ध करने वाले हैं। कहावत है अगस्त्य मुनि एवम् भगवान शिव ने स्वयं इनकी पूजा की। यह मणिकर्णिका घाट पर अमेठी मन्दिर के पास मकान नं० सी० के ९।१ में स्थित है। **हरेम्ब विनायक**—यह काशी वासियों के हर अदृश्य आपदाओं से छुटकारा दिलाते हैं। यह प्रतिमा लहुराबीर चौराहे से पश्चिम की ओर जाने वाली सड़क पर बालमीकी आश्रम के टीले के ऊपर स्थित है। **क्षिप्र प्रसादन विनायक**—यह काशी के प्रमुख रक्षक हैं तथा भक्तों पर अतिशीघ्र प्रसन्न होकर अभिष्ट फल देने वाले विनायक कहलाते हैं। यह पितरकुण्डा तालाब के पास विभीश्वर मन्दिर में मकान न० सी १८।४७ में स्थित हैं। इन्ही के पूर्व भाग में पँचमुख गणेश भी हैं। **ज्ञानविनायक**—यह ज्ञान के दाता हैं। यह लांगलीश्वर मन्दिर में बाहर भी कोठरी में मकान न० सी० के २८।४ में स्थित है। **त्रिमुख विनायक**—इनकी तीन अलग-अलग मुखाकृति है इनमे पहला वानरकामुख, दूसरा सिंह मुख और तीसरा मुख हाथी का है। इनका दूसरा नाम मिशिरा विनायक भी है। यह सिगरा में त्रिपुरान्तक के टीले पर मकान नम्बर डी ५९।९५में स्थित हैं। **षोडस विनायक**—इनका मन्दिर डेहरिया विनायक या देहली विग्रह विनायक मन्दिर के पीछे है। इनका दर्शन करने से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। **दण्डपाणि विनायक**—इनका मन्दिर कालभैरव मन्दिर के पीछे मकान न० के ३२।२६ में स्थित है। यह सभी मनोरथ को पूर्ण करने वाले विनायक हैं। (२) शिवलिंग रूप से विश्वनाथ जी के घेरे में श्री वैकुण्ठेश्वर भगवान के पश्चिम में मन्दिर में स्थित हैं। **जव विनायक**—इनकी पूजा करने में जब को प्रसाद के रूप में भोग लगाया जाता है। पंचक्रोस की यात्रा समाप्ती पर इनका पूजा की जाती है यह ब्रम्हनाल मुहल्ले में स्थित है। **हरिश्चन्द्र विनायक**—इनका दर्शन करने से मनुष्य सच्चाई के पथ पर सदैव आगे बढ़ता रहता है। यह हरिश्चन्द्र मंडप के बगल में मकान न० सी० के ७।१६५ में स्थित हैं। **बड़ागणेश विनायक**—इनका आकार बृहद है। इनका दर्शन करने से पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। इनका विशाल मन्दिर लोहटिया में है। माघ चतुर्थी को इनका दर्शन करने का विधान है। **षडानन विनायक**—वर्तमान आदिमहादेव के पश्चिम स्कन्देश्वर मे है। इनकी गुप्तकालीन प्रतिमा भारत कला भवन में आज भी विद्यमान है। **पाशपाणि विनायक**—यह बन्धनों से मुक्त कराते हैं। इनका मन्दिर सदर बाजार लेन में स्थित है। **सीमा विनायक**—हरिश्चन्द्रेश्वर के सामने संकठा माता मन्दिर के दिवार में स्थित हैं। **सेना विनायक**—संकठा जी के मन्दिर के बाहर की दिवाल में हरिश्चन्द्रेश्वर के सामने सीमा विनायक के ही पास ये भी स्थित है। **कर्पाद विनायक**—इनका मन्दिर पिशाच मोचन पर मकान न० सी० २१।४० में स्थित

है। प्रेत बाधाओं से मुक्ति दिलाने वाले विनायक हैं। **दूध विनायक**—इनका मन्दिर ढुण्डीराज गली के मकान न० सी० के ३६।१० में गली में कोने पर स्थित है। इन्हें दूध अतिप्रिय है। इनका दर्शन करने से अनेक प्रकार की बाधायें दूर हो जाती हैं। गोविन्द विनायक प्राचीन स्थान राजघाट किले की दक्षिण ओर लेकिन वर्तमान समय में मकान न० के० ४।२४ लालघाट पर स्थित है। **दीर्घ विनायक**—इनका मन्दिर विश्व भुजा गौरी मन्दिर में मकान न० डी० २।१३ में स्थित है। **मधु विनायक**--मैदागिन के उत्तर मकान न० के० ५३।६३ के सामने मध्यमेश्वर मुहल्ले में स्थित है। इनको मधु अधिक प्रिय है। **घृत विनायक**-यह घटकर्णेश्वर मन्दिर के पास म०न० के० ६०।६७ में स्थित है। पूजनमें घृत प्रयोग करने पर मनोवांछित फल देते हैं। हिमांशु शेखर विनायक यह हरिकेशेश्वर मन्दिर की दिवाल पर जंगमबाड़ी के मकान न० डी० ३५।२७३ में स्थित है। **पाशपाणिविनायक**--यह सदर बाजार लेन में स्थित है। यह विनायक बन्धनों से मुक्त कराते हैं। **ज्ञानेश्वर विनायक**-यह लाहौरी टोला के मकान नम्बर डी० १।३२ में स्थित हैं।

## काशी के बारह आदित्य

प्रारम्भ में सूर्य-पूजा प्रतीकात्मक थी। चक्र, पद्म, वृत्त, स्वस्ति आदि सूर्य के प्रतीक थे। सूर्य की मानव प्रतिमा का स्वरूप शुंग कुषाणकाल में विकसित हुआ। सूर्य का प्रतीकात्मक चित्रण सर्वप्रथम आहत मुद्राओं में मिलता है[1]। काशी में आदित्यों का प्रतीकात्मक अंकन हुआ है। कुछ उदाहरणों में चक्र के मध्य में सूर्यमुख दर्शाया गया है। **१. यमादित्य**-यमराज द्वारा इनकी स्थापना हुई थी। इस कारण इनका नाम यमादित्य पड़ा। इनके दर्शन से यम-यातना से मुक्ति मिलती है[2]। यह स्थान संकठाघाट पर, वशिष्ठेश्वर के समीप घाट की सीढ़ी म० न० सी. के. ७।१६४ के पास स्थित है। यहाँ एक वृत्त के अन्दर सूर्य की मुखाकृति प्रदर्शित है। इनके श्रवणों में कुण्डल, सिर पर कीरिट धारण किये उत्कीर्ण किया गया है। **२. विमलादित्य**-इसकी स्थापना विमल नामक क्षत्रीय द्वारा हुई थी। विमल के पूरे शरीर में दलित कोष्ठ का प्रकोप हो गया था इससे मुक्ति पाने हेतु इसकी स्थापना कराई गयी थी। स्थापना के उपरान्त कुष्ठ निवारण हो गया। इन्ही मान्यताओं के आधार पर इनके दर्शन-पूजन मात्र से कुष्ठरोग का निवारण हो जाता है।[3] यह स्थान रामापुरा में खारी-कुआँ के पास स्थित है। **३. अरुणादित्य**-कश्यप

---

१. ल० ६ठी शती ई० पूर्व। २. काशीखण्ड ५१-१०५-१८। ३. काशीखण्ड ५१-८३,९८।

मुनि की पत्नी विनता के पुत्र की आराधना से प्रसन्न होकर शिव ने वरदान दिया। उन्ही शिव की प्रेरणामयी वचनों से प्रेरित होकर बालक ने एकलिग की स्थापना की जिसका नाम अरुणादित्य पड़ा। यही लिंग कालान्तर में सूर्य के रूप पूजित हुआ।[४] त्रिलोचनघाट पर त्रिलोचन महादेव मन्दिर में प्रदक्षिणा स्थान में स्थित हमुमानजी की मूर्ति के नीचे गोलचक्र के रूप में पूर्वाभिमुख अरूणादित्य स्थापित हैं। चक्र का आधार छोटा एवम् मध्यभाग कुछ उभरा हुआ है। जो इस मन्दिर में पूजा तथा आराधना करते हैं वे व्यधियों से मुक्त हो जाते हैं। ४. **केशवादित्य**–स्वयं भगवान भाष्कर ने स्फटिक का एक लिंग बनाकर शिव की आराधना की। उसी समय से उनका नाम केशवादित्य पड़ा। कहावत है कि इनकी आराधना से सभी प्रकार की इच्छायें पूर्ण होती हैं ज्ञान एवम् मुक्ति प्राप्त होती है।[५] केशवादित्य मन्दिर गंगा-वरुणा के संगम पर स्थापित है इसी स्थान प केशव ने भी शिव की आराधना की थी। ६. **गंगादित्य**–भगीरथ द्वारा गंगा लाने पर सू काशी में गंगा की ओर मुख करके उनकी स्तुति के लिये खड़े हुए थे इसी कारण उनका नाम गंगादित्य पड़ा[६]। नेपाली घाट पर नेपाली मन्दिर के नीचे घाट की ओर गंगा केशव का मन्दिर है। इसी स्थान पर गंगा की ओर मुख किये हुए गंगादित्य एक आले में प्रतीक रूप में स्थापित हैं। ६. **द्रोपदादित्य**–द्रोपदी ने मन्दिर में वर्षों सूर्य की उपासना, पूजा की थी, इसी कारण इनका नाम द्रोपदादित्य पड़ा[७]। ऐसी मान्यता है यदि विवाहिता इस मन्दिर में पूजा करती है तो उसे अपने सम्बन्धियों का प्रबल प्रेम प्राप्त होता है, साथ ही व्याधि-क्षुधा-तृष्णा आदि कष्ट नहीं होते। यह देवस्थान विश्वनाथ मन्दिर के समीप हनुमान मन्दिर में अक्षयवृक्ष के नीचे स्थित है। यहाँ भी एक पत्थर पर चक्र के रूप में सूर्य को दिखाया गया है। किरणों के मध्य सूर्य की मुखाकृति बनी है। द्रोपदादित्य के पास ही द्रोपदी की भी प्रतिमा स्थापित है। ७. **खखोलकादित्य**— गायघाट पर त्रिलोचन मन्दिर के समीप कामेश्वर महादेव मन्दिर में स्थापित हैं। शिव-मन्दिर के समीप गर्भगृह के बाहर की ओर एक दालान में किरणों से युक्त चक्र के मध्य में खखोलादित्य की मुखाकृति अंकित पाषाण रखा है। चक्र के किनारे पद्माकार उत्कीर्ण हैं एवम् भगवान भास्कर के श्रवणों में कुण्डल मस्तक पर एक पट्टिका एवम् तिलकधारण किये हुए दर्शाया गया है। इनका दर्शन-पूजन करने से इच्छाओं की पूर्ति एवम् मुक्ति प्राप्त होती है[८]। ८. **मयूखादित्य**–जिस समय सूर्य भगवान मंगला गौरी एवं शिव की तपस्या में लीन थे इनकी किरणे ( मयूख ) आकाश में दृष्टिगोचर होती

---

४. काशीखण्ड ५१-२-२६। ५. काशीखण्ड ५१-७३-७५। ६. काशीखण्ड ५१-२०-२१। ७. काशीखण्ड अ० ५१। ८. काशीखण्ड ५०-१४९-५१-।

थी। इसी मान्यता के आधार पर इनका नाम मयूखादित्य पड़ा[९] यह मन्दिर पंचगंगाघाट पर मंगला गौरी मन्दिर में स्थित है। सूर्य की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव पार्वती के सहित प्रकट हुए और सूर्य को वरदान दिया। मन्दिर में प्रतीक स्वरूप एक गोल पत्थर है जिसके चारों ओर किरणों का रेखाँकन है और मध्य में त्रिपुण्ड और कुण्डल धारण किये भगवान सूर्य की मुखाकृति बनी है। इनके दर्शन मात्र से व्याधियों से छुटकारा मिल जाता है।

**वृद्धादित्य**–वृद्ध हारीत नाम के ब्राह्मण ने इसकी स्थापना की। वृद्ध होने के कारण उसकी तपस्या में व्यवधान पड़ता था, इस कारण वृद्धावस्था के निवारणार्थ सूर्य की उपासना की। उससे प्रसन्न होकर सूर्य भगवान ने उसे वरदान दिया। वर्तमान मन्दिर मीरघाट मुहल्ले में हनुमान जी के मन्दिर के निकट पश्चिम दिशा में स्थित है। यहाँ एक छोटी कोठरी में चारों भुजाओं वाले आकृति में सूर्य को बैठा हुआ दर्शाया गया है। ऊपर के दोनो हाँथो में कमल है परन्तु नीचे के हाथ खण्डित हैं प्रत्येक रविवार को इनका दर्शन-पूजन करने से सभी सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। **लोलार्क**–भगवान शिव ने काशी के राजा दिवोदास को छलने के लिए सूर्य को भेजा था। किन्तु वे उस कार्य में तो सफल नहीं हो पाये बल्कि स्वयं अपनी प्रतिमा अस्सी के पास दक्षिण दिशा में स्थापित की। यही स्थान बाद में लोलार्क कहलाया। लोलार्क कुण्ड में सीढ़ियों पर एक आले में सूर्य का प्रतीकात्मक अंकन चक्र के रूप में हुआ है। श्रावणमास में लोलार्कछट का मेला लगता है। अग्रहायण मास में प्रत्येक पक्ष के छठे एवम् सातवे दिन यहाँ पूजन अर्चन करने से पापों से मुक्तिमिलती है[१०]। १० **उत्तरार्क**–यह मन्दिर अलईपुर बकरिया कुण्ड के समीप है। ऐसी अवधारणा है कि जो लोग उत्तरार्क की पूजा करते हैं। सूर्य देवता उनकी सुरक्षा करते हैं। यह काशी की भी सुरक्षा करते हैं। पौष मास में यहाँ रविवार के दिन मेला लगता हैं। **साम्बादित्य**–इस मन्दिर का निर्माण कोटा बूंन्दी के महाराज ने करवाया था। पौराणिक मान्यताओं के आधार पर जावन्ती के पुत्र साम्ब पिता के श्राप के कारण कुष्टरोग से आक्रान्त हो गया था। माता जावन्ती ने अपने पति से कुष्टरोग से मुक्ति की प्रार्थना की तो इसके निवारण के लिए सूझाया गया—यदि शाम्ब काशी में जाकर एक कुण्ड का निर्माण करे एवम् सूर्य की प्रतिमा स्थापित करें। पुनः कुण्ड में स्नानकर भगवान भास्कर की याचना पूजा करें तो इससे मुक्ति मिल जायेगी। पिता की आज्ञा को शाम्ब ने अक्षरशः पालन किया और उसे कुष्टरोग से मुक्ति मिली। यह मन्दिर शहर के उत्तर-पश्चिम भाग में सूर्यकुण्ड पर स्थित है तथा वर्तमान में सूर्य नारायण मन्दिर के नाम से जाना जाता है।

---

९. काशीखण्ड ४९। १०. काशीखण्ड ४६.५०,५९।

# काशी रहस्यम् हिन्दी-भाष्य

## प्रथमोऽध्यायः

ऋषियों ने सूतजी से सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग की मान्यताओं तथा तद्नुसार आचरणों को सुनकर कलियुग का स्वरूप बतलाने का अनुरोध किया।

**सृष्टि-रचना**—सूत जी ने बतलाया कि सृष्टि के प्रलयकाल के पश्चात् जब भगवान विष्णु जलशयन करके उठे तो उनकी नाभि से कमल पर ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा को अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में ज्ञान नहीं था, इसलिए विष्णु ने उन्हें स्वयंको भजने का परामर्श दिया। बहुत काल तक भजनोपरान्त जब ब्रह्मा को स्वयं का ज्ञान हुआ तो पूछने पर विष्णु ने सृष्टिनिर्माण की आज्ञा दी। इसके लिए ब्रह्मा ने शक्ति की याचना की। विष्णु ने उन्हें वेदों से शक्ति ग्रहण करने का परामर्श दिया। वेदों से शक्ति ग्रहण कर ब्रह्मा ने अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, जरायुज नाम की सृष्टि की। उन्होने सनकादि, मरीचि, देव दैत्यों, एवं चारों युगों की क्रमवार रचना करके उनका विभाजन किया।

**युगों का स्वरूप एवं उनका कर्म**—ब्रम्हा ने चारों युगों को बुलाकर उनके स्वरूपों की जानकारी की। सत्ययुग का स्वरूप सत्यवक्ता, वैराग्य प्रधान, विवेकशील, प्रज्ञोपवीत धारी, पूर्ण देहवाला, बाहुमूल में रुद्राक्ष की माला धारण किये ब्राम्हणप्रिय लक्षणों से युक्त था। त्रेता का स्वरूप गौरवर्ण, हाथ में स्रुवा धारण कर हवन करता हुआ, धर्मप्रिय था। द्वापर हाथ में खड्ग, खटवांङ्ग लिए, धनुषवाणधारी, शान्त, पाप-पूर्ण्य से युक्त था। कलियुग पिशाच के समान मुखवाला, क्रूर, कलहप्रिय, बाये हाथ में लिङ्ग और दाये हाथ में जीभ पकड़कर नाचता हुआ, नीचों के समान स्वभाव वाला, पाप का मिश्रण, हँसते--रोते; खिन्न एवं मोहित होने वाले स्वरूप से युक्त था। उसे शिवनाम, हरिराम, गंगा, काशी, सत्संग, दान, तीर्थ, शिव और विष्णु की कथा से द्वेष था। ब्रम्हा ने कलि को मृत्युलोक में जाकर अपना अधिकार जमाने का आदेश दिया। कलियुग ने सज्जनों के कारण मृत्युलोक में जाने से असहमति व्यक्त की। इस पर ब्रम्हा ने वर देते हुए कहा कि तुम्हारे प्रभाव से सज्जनों का प्रचार अल्प होगा और तुम्हारा अधिक।

**गुरु-शिष्य महिमा सम्बन्धी वेदधर्मा एवं संदीपक आख्यान**—कलि के पूछने पर ब्रम्हा ने गुरुभक्ति का माहात्म्य बतलाते हुए कहा कि गुरु के बिना शास्त्रीय तत्वों का बोध असंभव है। गुरु से दीक्षा ग्रहण के पश्चात् कलिकाल की जघन्यता का भय नहीं रहता। इस बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने ऋषि वेदधर्मा और संदीपक नामक शिष्य का आख्यान निम्न प्रकार सुनाया।

गोदावरी नदी के तट पर अंगिरा मुनि का आश्रम था। उसमें वेदधर्मा ऋषि एवं उनके शिष्य संदीपक निवास करते थे। एक दिन गुरु ने शिष्य की निष्ठा से प्रसन्न होकर अपने पूर्वजन्मों के अवशेष पापों का शमन करने के लिए वाराणसी जाने का निश्चय किया। गुरु के साथ उनका शिष्य भी गया। गुरु कोढ़ी एवं अन्धा बन गया। वे दोनों मणिकर्णिका के उत्तर गंगा तट पर कम्वलेश्वर के निकट पापभोग काल व्यतीत करने लगे। गुरु के द्वारा बार-बार तिरस्कार करने के बाद भी शिष्य ने गुरु की तनमन से सेवा की। उससे प्रसन्न होकर भगवान शंकर एवं विष्णु वरदान देने पहुँचे। शिष्य ने उनसे गुरुभक्ति एवं गुरुस्वरूप को मांगने और जानने की कामना की। विष्णु ने बतलाया कि जो शास्त्रप्रमाण के ज्ञाता, लोक से सम्बन्धित यथार्थज्ञान को प्रदान करे उन्हें ही गुरु मानना चाहिए। जिनके द्वारा सुनकर ब्रम्हस्वरूप का ज्ञान होता है उस गुरु को ही मेरा स्वरूप समझना चाहिए। क्योंकि गुरु शुभ एवं अशुभ को प्रदर्शित करते हैं।

भगवान विष्णु से उपदेश प्राप्तकर शिष्य संदीपक गुरुसेवा में रत हो गया। इक्कीस वर्ष में प्रारब्ध भोग से पार होकर गुरु सर्वाङ्ग सुन्दर बन गये।

## द्वितीयोऽध्यायः

**काशी माहात्म्य के बारे में गुरु-शिष्य सम्वाद**—गुरु वेदधर्मा अपने शिष्य दीपक पर प्रसन्न हुए और आत्मभाव की गुरुता का महत्व बतलाकर उनसे वर मांगने के लिए कहा। शिष्य दीपक ने काशी की महिमा, उसका स्वरूप एवम् उसके आश्चर्यजनक प्रभाव आदि के ज्ञान हेतु गुरु से निवेदन किया। गुरु ने काशी को साक्षात ब्रम्हपुरी बतलाकर उसकी सीमा को सम्पूर्ण विश्व का विस्तार बतलाया। उसका नाम स्मरण करने से ही साधकों को अनन्तफल एवं सिद्धियां प्राप्त होती हैं। काशीवास के आठ योग महत्वपूर्ण हैं किसी से कुछ ग्रहण न करना, शक्तिभर दान देना, पाप कर्मों से विरत रहना, पूण्य कार्यों में मन लगाना, स्वेच्छा लाभ में ही सुख की अनुभूति करना, काशीवास, गंगा स्नान, भद्र पुरुषों से शास्त्र-चिन्तन करना।

**काशी-क्षेत्र में सन्यास की महिमा**—काशी में निवास कर वेदों द्वारा निर्धारित धर्म का श्रद्धा एवम् भक्तिपूर्वक आचरण करना इष्ट है। मनुष्य को साहस सहित काशी-वास करना चाहिए। काशी सीमा में सदाचार, अन्नदान, क्षेत्रसन्यास द्वारा मुक्ति की अभिलाषा रखनी चाहिए।

कलि में भगवान शिव वाराणसी, गंगा और दान ये फलदायक हैं। इनके द्वारा कलि के पापों का नाश होता है।

शिष्य के द्वारा यह पूछा गया कि अन्य स्थानों में मृत्यु होने पर अस्थि का काशी में

प्रवाह हो तो उस प्राणी की आध्यात्मिक गति क्या होती है ? गुरु ने बतलाया कि ऐसे प्राणी गंगा के तट पर काशी के माहात्म्य से ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, चाहे वह कितने ही पातकी क्यों न हो ? शिष्य ने गुरु से गंगातट पर स्थित काशी की प्रशस्ति जानने की इच्छा व्यक्त की ।

**काशी प्रादुर्भाव वर्णन**—गुरु ने बतलाया कि प्रलयकाल में पृथ्वी समुद्र में डूबी तो ऋषि, महर्षि तथा देवताओं ने भगवान विष्णु की स्तुति की और पृथ्वी के जलमग्न होने पर भी छत्राकार ज्योतिरुप भाग को आश्चर्य से देखते हुए उसका रहस्य जानना चाहा । भगवान विष्णु ने उस भाग को काशी की संज्ञा दी और उसके गुण, प्रभाव, माहात्म्य और नाम की प्रशंसा की एवम् पृथ्वी को दैत्य के आने से उसे मारकर निकालने का आश्वासन दिया जिससे वर्ण एवम् आश्रम पर आधारित धर्म चल सके ।

ऋषियों ने काशी की इस अलग आकृति का कारण जानना चाहा तो भगवान विष्णु ने बतलाया कि किसी एक महाकल्प में लोग धर्मपरायण होकर तप आदि करते रहे तो भी इन्द्रियों के वैशम्य से मोक्ष में विध्न होते रहे इस पर वे ब्रम्हा के पास जाकर इसका निराकरण पूछने लगे तो उन्होंने ज्योतिलिङ्ग रूपी भगवान विश्वनाथ का स्मरण किया । भगवान विश्वनाथ अपने स्वरूप से हृदय से बाहर प्रकट हुए और स्वयं को पंचक्रोशात्मक विस्तारवाला बनाकर ऊपर बैकुण्ठ एवम् नीचे पाताल तक ज्योर्तिलिङ्ग में प्रगट हुए । स्वयं भगवान शंकर ने पार्वती सहित कैलाश से आकर इस ज्योर्तिलिङ्ग की प्रशंसा की । शम्भू के अनुमोदन करने पर उस ज्योर्तिलिङ्ग की नाना प्रकार से स्तुतियाँ की गयीं । यही छत्राकृति पृथक काशी के रूप में सुशोभित हुई ।

विष्णु ने सूकर का रूप धारण कर हरण्याक्ष राक्षस का बध करके पातालपुरी से पृथ्वी का उद्धार किया ।

## तृतीयोऽध्यायः

**काशी महिमा वर्णन**—शिष्य द्वारा काशी की महिमा पूछने पर गुरु वेदधर्मा ने बतलाया कि काशी ज्ञात-अज्ञात सभी पापों से मुक्ति दिलाती है । कलियुग में काशी ही एकमात्र ऐसा स्थान है जहाँ भगवान विश्वनाथ एवम् विष्णु की अनेकों प्रकार की कथायें महात्माओं द्वारा कही एवम् सुनी जाती हैं । इसकी परिधि के अन्दर कलिधर्म का प्रभाव युगरुप से नहीं पड़ता । काशी के विभिन्न वनों में तरह-तरह के सुगंधित वृक्ष सुशोभित जिसमें तरह-तरह के पक्षीगण कून्जन करते रहे । काशी के सुरम्य वातावरण में स्वाध्याय, ज्ञान, जप, यज्ञ, दान, सत्संग एवम् साधन की प्रवणता परीलक्षित होती थी । जो अद्यावधि विद्यमान है ।

**काशी निवासियों की महिमा**--शिष्य दोपक ने गुरु से काशी में निवास करने वाले

समस्त प्राणियों की महिमा जानने की इच्छा व्यक्त की। गुरु ने बतलाया कि काशी समस्त त्रिभुवन में उत्कृष्ट है इसमें निवास करने वालों को साक्षात मोक्ष प्राप्त होता है। इस पर शिष्य दीपक ने काशीवास का आनन्द लाभ उठाने की इच्छा व्यक्त की। गुरु ने शिष्य को गृहस्थधर्म के पालनोपरान्त इस पुरी में निवास करने का आदेश देना चाहा लेकिन शिष्य इस उत्कृष्ट आनन्दलाभ को किसी भी स्थिति में छोड़ना नहीं चाहता था, अन्त में गुरु की कृपा से शिष्य दीपक को काशी में निवास कर साधन पूर्वक जीवन-यापन करने का आदेश मिला।

## चतुर्थोऽध्यायः

**कलिदोष और उससे छुटकारे का उपाय**—शिष्य दीपक द्वारा कलि के दोषों और उससे ग्रसित मानव के छुटकारे का उपाय पूछा गया तो गुरु वेदधर्मा ने बतलाया कि सतयुग के समान पवित्र वातावरण, तपस्वी मनुष्य एवम् श्रेष्ट साधन स्थल कलियुग में अत्यन्त दुर्लभ है। सतयुग में ज्ञान से, त्रेता में अपने आचरण से, द्वापर में यज्ञ से मनुष्य को मुक्ति मिलती है, लेकिन कलियुग में इसके विपरीत है। कलियुग में शरीर ही प्रधान है। भोग प्रधान एवम् पदार्थवाद का बाहुल्य है। अर्थ ही सबकुछ है। वेदों के अनुसार आचरण करना निन्दा का विषय माना जाता है। जिनके पास अर्थ है वे ही पूजनीय होते हैं फिर भी काशी की ऐसी महिमा है कि इस युग के अवगुणों वाला मनुष्य भी पापकर्म करने के पश्चात् यदि काशी में शरण लेता है तो उसको मोक्ष मिलता है।

**मोक्षप्रकरण में काशी की विशेषता**—इस पर शिष्य दीपक ने पूछा कि जब भगवान विष्णु शिव के चरणों का आश्रय लेने वाले सभी तीर्थों में मुक्ति लाभ प्राप्त कर लेते हैं तो काशी की क्या विशेषता है ? गुरु वेदधर्मा ने बतलाया कि कभी-कभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, आदि पूर्वजन्मों के संस्कार उसे आगे बढ़ने में अवरोध उत्पन्न करते हैं। धीर पुरुषों को भी आसक्ति होती है लेकिन काशी में भोगेच्छा सम्पूर्ण रुप से विरक्त होती है। साधन की विफलता अन्यान्य तीर्थस्थलों में पूर्ण नहीं हो सकती। काशी में अन्य साधारण साधनों से ही सुगमतापूर्वक मोक्ष की प्राप्ति होती है।

**मुक्तिसाधन के सम्बन्ध में अग्निशर्मा व शोमशर्मा वार्तालाप**--उपर्युक्त वस्तु स्थिति को और स्पष्ट करने के लिए गुरु ने एक आख्यान प्रस्तुत किया--विष्णुशर्मा नामका एक ब्राह्मण नर्मदा नदी के किनारे स्थित माहिष्मतिपुरी में निवास करता था वह पवित्र अन्तःकरण वाला था। उसके अग्निशर्मा और सोमशर्मा नाम के दो पुत्र थे। वे दोनों विद्वान एवम् मनस्वी थे। एक बार रेवा नदी के तट पर दोनों में यह विवाद उत्पन्न हुआ कि मुक्तिसाधन का सरल एवम् सहज उपाय वाला कौन-सा तीर्थ है ? यह

प्रश्न अन्यान्य विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, इसलिए सर्वसम्मत से यह निर्णय लिया गया कि काशी ही एक ऐसा तीर्थस्थान है जहाँ भगवान शंकर देवताओं के साथ निवास करते हैं, वहाँ कलि अपना प्रभाव नहीं डाल पाता।

सोमशर्मा रेवा नदी के तट पर निवास करके शाकाहारी, फलाहारी, वायुभक्षी, जलाहारी ही रहकर एवं पर्वत के शिखरों, तीर्थों, और पुण्यक्षेत्रों में तपकरके दूरदर्शन, दूरस्थ श्रवण, दूरगामिल आदि सिद्धियाँ प्राप्त की। उन सिद्धियों से लोगों को प्रभावित कर, भोज्य-पदार्थ में तत्पर होकर जीवन-यापन करने लगा। मरते समय वह अनेक प्रकार के भोगों को स्मरण करके मरा; फलस्वरूप अगले जन्म में समुद्रतट पर अत्यन्त लोभी म्लेच्छ राजा हुआ एवं मनमानी करने के कारण नरकको प्राप्त किया। अग्निशर्मा काशीरहस्यम् को मारकण्डेय से सुनकर काशी जाकर परमपद का भागी बनने के लिए प्रयत्न करने लगा। तदनन्तर अपने साधन से शिव-पार्वती को प्रसन्नकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त हुआ।

नर्क में सोमशर्मा को अपने भाई के उत्तमगति की याद आयी और अपने दुष्कर्मों पर पश्चाताप हुआ। धर्मराज के निर्देशानुसार काशीस्मरण द्वारा उसका कोल्हापुर में ब्राह्मण के घर जन्म हुआ और फिर उसे काशीवास मिला। इस प्रकार चित्तवृत्ति को विषयाकार बनाने के कारण ही सोमशर्मा को नरक प्राप्त हुआ।

## पञ्चमोऽध्यायः

**कलियुग में धर्म का स्वरूप**—गुरुदेव धर्मा ने दीपक से कहा कि कलियुग में द्वापर एवं कलि के संधिकाल तथा कलि के अन्त एवं कृतयुग के संधिकाल में धर्म के दर्शन होते हैं परन्तु मध्यकाल में विषयी लोगों द्वारा नष्ट किया धर्म क्रमशः क्षीण होता जाता है।

**कलियुग में मनुष्यों का आचरण**—कलियुग में धनी ही गुण, आचार एवं कुल आदि से सम्पन्न माना जायेगा। न्यायव्यवस्था में बल का प्रयोग होगा। पाखण्डी लोग ही पूज्य होंगे। शूद्र ब्राह्मण का भ्रम पैदा करने के लिए यज्ञोपवीत धारण करेंगे। यज्ञोपवीत का चिह्न ही वर्णाश्रम धर्म का कारण बनेगा। निर्धन व्यक्ति असाधुमाना जायेगा। ढोंगी होने पर भी समृद्धशाली व्यक्ति साधु कहा जायेगा। स्त्री-पुरुष शरीर में मृदुता लाने के लिए तेल, साबुन लगायेंगे। शरीर-शोभा के लिए अलंकार धारण करेंगे। दाढ़ी बनाकर सुख अनुभव करेंगे। अपने क्षेत्र में स्थित-तीर्थों की उपेक्षा करके लोग अन्य क्षेत्र के तीर्थों को मनोरथप्रद मानेंगे।

**कलियुग में पुरुषार्थ का स्वरूप**—कलियुग में जो मनुष्य परिवार के पोषण में

प्रयत्नशीलहोगा वह पुरुषार्थी माना जायेगा। निर्लज्ज पापी भी लोगों द्वारा सत्यवादी कहा जायेगा। धर्म का उद्‌देश्य पुण्य न होकर यश होगा। राजा लोग निर्दयी, लोभी एवं तपस्वी तथा परद्रव्य से प्रेम रखेंगे। ब्राह्मण लोग वेद नहीं पढ़ेंगे, पढ़ेंगे भी तो उसके अनुसार आचरण नहीं करेंगे तथा दान लेने के लिए वैदिक धर्म का आचरण करेंगे। लोग कन्या एवं पुत्रों का बिक्रय करेंगे। कुल आदि की उपेक्षा करके लोग परस्पर विवाह करेंगे। जो स्वयं धर्मनिष्ठ नहीं होंगे, वे दूसरों को धर्म का उपदेश देंगे। धन के लोभी द्विज लोग देवताओं, गुरुओं, पितरों एवं यज्ञ आदि सभी को ठगेंगे। धर्म, शास्त्र, गुरु एवं देवता को आदर देने वाले क्षत्रिय परम दुर्लभ होंगे। ये लोग आहार एवं स्त्री-प्रसंग में आसक्त एवं विवादी होंगे। वैश्य लोग निम्नकर्मों से युक्त होकर द्विज एवं देवता की निन्दा करेंगे। शूद्र लोग ब्राह्मणों से ही सेवा करायेंगे। दुष्ट लोग शिष्ट कहे जायेंगे। धन ही सुखप्रद माना जायेगा। लोग निरंकुश होकर शास्त्रीय विषयों के सम्बन्ध में नानाप्रकार के मत फैलाकर लोगों को ठगेंगे। विचारहीन एवं इच्छानुसार रमण करने वाली स्त्रियाँ श्रेष्ठ मानी जायेंगी। जनसमुदाय चोर बहुल होगा। गृहस्थ जंगलों में निवास करेंगे। संन्यासी धनाभिलाषी होंगे। स्त्रियों की सेवा में तत्पर पुरुष, माता-पिता के पक्ष को छोड़कर पत्नी पक्ष लेंगे। पापकर्म करके भी लोग प्रायश्चित नहीं करेंगे। धर्म को न जानने वाले उत्तम आसन पर चढ़कर धर्म का सार कहेंगे। लोग पापशील होकर दुःखी उद्विग्न, दुर्भिक्ष एवं कर से शोषित होंगे तथा रोग एवं चोरों से पीड़ित होंगे।

**कलिदोषों से बचने का उपाय**—कलि दोषों से बचने के लिए एक मात्र उपाय काशी-सेवन है। क्योंकि वहाँ भगवान शंकर का आवास सम्पूर्ण देवगण सहित है, वहाँ कलि की एक नहीं चलती।

**महासेन आख्यान**—काशी में महासेन नामक चन्द्रवंशी राजा था। वह नीच, कामी, क्रूर, कुमार्गगामी, पापी, परद्रव्य तथा परस्त्री-सेवी था। एक बार उसने राजासुमेधा पर चढ़ाई की। धार्मिकवृत्ति वाले राजा सुमेधा ने उसको हरा दिया। भागकर काशी आया और अपनी हार का कारण ऋषि वामदेव से पूछने लगा। वामदेव ने उसके दुराचारी जीवन को ही उसकी हार का कारण बताया। राजा ने अपने काशीवासी जीवन में ऐसी पापाचरण वृत्ति के विघ्नों का कारण पूछा तो ऋषि ने उसकी अधर्मबुद्धि ही कारण बतलाया। कुछ दिनों के पश्चात् महासेन ने सुमेधा पर पुनः चढ़ाई की। कलि एवं द्वापर द्वारा सुमेधा राजा को प्रभाव में लाने के लिए परस्पर विवाद हुआ। कलि के प्रयत्न के बावजूद सुमेधा शिवभक्ति से विमुख न हुआ,

फलस्वरूप महासेन पुनः पराजित हुआ। राजासुमेघा ने अधर्मी महासेन को पकड़कर राज्य से बाहरकर दिया और काशी पर धर्मपूर्वक राज्य करने के लिए महासेन के पुत्र का अभिषेक कर दिया। पराजित महासेन को जब सुबुद्धि आई तो काशी में रहकर अपने शेष जीवन का मार्ग संन्यास द्वारा प्रशस्त किया। सुमेधा के मंत्रियों ने राजा से काशिराज को हराने पर राज्य को अधिकार में क्यों नहीं किया पूछा तो उसने यही उत्तर दिया कि—भगवान विश्वनाथ की पुरी पर किसी तुच्छव्यक्ति का अधिकार नहीं होना चाहिए।

## षष्ठोऽध्यायः

**कपिल-साङ्ख्ययोगदर्शन**—मुनियों ने महर्षि सूत से सांख्ययोग, अष्टांगयोग, व्रत, तपस्या और तीर्थसेवन के बिना मोक्ष मार्ग का उपाय पूछा—सूतजी ने बतलाया कि कपिल का सांख्ययोग सनातन भगवान के ही आदेशानुसार है लेकिन मन की शुद्धि न होने पर सब व्यर्थ है। क्योंकि मन की शुद्धि ही ज्ञानप्राप्ति का प्रथम सोपान है। जीवन में व्यक्ति विषयवृत्ति के कारण आत्मसिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता, फिर भी मोक्ष की इच्छा रखने वाले को कभी भी निराश होकर प्रयत्न नहीं छोड़ना चाहिये। भगवान की शरण लेकर ही समस्त विषयों एवं मायारहित विवेक से सभी को देखना चाहिये। अतः मनुष्य को ईश्वरलीन होकर अपनी विषय-वासनाओं से मनहटा लेना चाहिये और शास्त्रचिन्तन, सत्संग, गुरूपदेश द्वारा अपना कल्याण करना चाहिये। इस प्रसंग से नरनारायण ने नारद जी को उपाय बतलाया।

**माया-मोह में लिप्त मनुष्यों के उद्धार का उपाय**—एक बार कलिकाल में सर्वत्र भोग, राग, द्वेष, काम, क्रोध, शोक, मोह में लिप्त मनुष्यों के उद्धार के लिये नारदजी ने नरनारायण से उपाय पूछा। नरनारायण ने बतलाया कि वाराणसी नगरी समस्त देवगणों एवं मुनिगणों से सेवित है। समस्त परमानन्द के अभिलाषी सज्जन पुरुष इस पुरी में आते हैं। यह नगरी अपने प्रभाव से ही आनन्दवन नाम से विख्यात है। इसमें निवास करने वाले प्राणी को मोक्ष प्राप्ति के साधन पग-पग पर मिलते हैं। जितेन्द्रिय होना ही सुतपस्या है। स्वभार्यागमन ही ब्रह्मचर्य है। भगवन्नाम ही समस्त कष्टों से छुटकारे का एक मात्र माध्यम है।

कामादि पर विजय प्राप्त करने के उपाय पूछने पर नरनारायण ने बतलाया कि सर्वप्रथम काशी माहात्म्य का श्रवण कर काशी निवास करे। तत्पश्चात् क्रोध आदि बुरी वृत्तियों पर विजय प्राप्त करे एवम् शास्त्र आदि पढ़कर शंकर में मन लगावे तो मनुष्य एक ही जन्म में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

## सप्तमोऽध्यायः

**काशी में किये गये पापों से मोक्ष का उपाय**—सिद्धों ने कपिल मुनि से काशी में किये गये पापों से प्राणियों की मोक्षप्राप्ति एवं जीवनसुख का उपाय पूछा। कपिलमुनि ने शंकर-पार्वती के वार्तालापों का वर्णन किया। एक बार पार्वती द्वारा यह प्रश्न पूछने पर भगवान शंकर ने बतलाया कि अज्ञान में इन्द्रियों द्वारा संस्कारवश अच्छे एवम् बुरे कर्म होने अवश्यम्भावी हैं। इस मन की स्थिति अत्यन्त जटिल है, अतः मनुष्य को मुक्ति पाने के लिये प्रायश्चितस्वरूप तीन कार्य करने चाहिए। कूप और तालाब आदि जलस्थानों का जीर्णोद्धार करने से उस संचित जल से जीवित प्राणियों के उद्धार के साथ पितरों की अक्षयतृप्ति होती है। काशी के प्राणी कीट-पतंग तक भगवान शिव की साक्षात प्रतिमूर्ति हैं। इसलिये इसके द्वारा भगवान शिव की साक्षात सेवा कही जा सकती है।

**काशी में धर्म-कर्म सम्पादन का माहात्म्य**—कथा के माध्यम से व्यक्त करते हुए भगवान शिव कहते हैं कि—काशी में धर्मपथ नामक एक अत्यन्त धार्मिक वैश्य था। उसने वायव्यकोण में एक तालाब निर्मित कराया। दुर्भाग्य से वह वैश्य निर्धन होकर एक ब्राह्मण का ऋणी हो गया। जब ब्राह्मण ने अपने धन की मांग की तो वैश्य ने अपनी हीन अवस्था बतलाते हुए विवशता व्यक्त की। तब उस ब्राह्मणने वैश्य द्वारा बनाये गये तालाब को अपने नाम से ख्याति देने को कहा। विवशतावश वह वैश्य इस कार्य के लिये तैयार हो गया। ब्राह्मणों ने उसके कहने पर एकत्र होकर एक बड़ी शिला मँगवाई और यह शर्त रक्खी की जितने मूल्य के पशुपक्षी अथवा मनुष्यों ने इस तालाब का जलग्रहण किया है, तब तक शिला नीचे डूबी रहे और मूल्य पूरा होने पर ऊपर आ जाय। उन लोगों ने शिला को उस तालाब के जल में डाल दिया। उसी समय एक प्यासी गाय अपने बच्चे के साथ आई और तृप्तिपर्यन्त उसने जलग्रहण किया। उस गाय के हटते ही वह शिला जल के ऊपर आ गई। इस प्रकार धर्म की गरिमा के सामने उस शिला की स्थिति तुम्बी के समान हल्की हो गई। लोगों ने इस घटना को आश्चर्य से देखा। भगवान शंकर ने इस विचित्र रहस्य को पार्वती से व्यक्त करते हुए कहा कि—काशी क्षेत्र में सर्वत्र भगवान शंकर का वास है, अतः कोई भवन आदि नूतन बनाने के स्थान पर जीर्ण धार्मिक स्थलों एवं जलाशयों का जीर्णोद्धार करना विशेष पुण्यमय है। इससे न किसी तीर्थ को खोदना होगा और न ज्योतिर्लिङ्गों की प्रतिष्ठा को कोई हानि होगी। काशी में बुद्धिपूर्वक किये गये पापों से पापी के मरने पर उसे पिशाचयोनि मिलती है। इस पिशाचयोनि से बचने के लिये

काशी के माहात्म्य को सुनना ही एकमात्र विकल्प है। क्योंकि इस माहात्म्य को सुने बिना मनुष्य को पापपूण्य का सही-सही ज्ञान नहीं होता, इसलिये भोगादि वृत्तियों से निवृत्ति के लिये सज्जन, धार्मिक पुरुष काशी की शरण में जाकर अपना उद्धार करते हैं।

## अष्टमोऽध्यायः

**प्रायश्चित के विषय में शंकर और जैगीषव्य सम्वाद वर्णन**—पार्वतीजी ने भगवान शंकर जी से विषयी, पापी एवं धनलोभी मनुष्यों की मुक्ति का उपाय पूछा तो उन्होंने जैगीषव्य द्वारा पूछे गये इसी प्रश्न के समाधानार्थ बतलाया कि–एक शिष्य सम्पूर्ण दोषों में फँस गया। उसे आवश्यक दण्ड भी दिया गया। लेकिन उसमें जब कोई सुधार नहीं हुआ तो जैगीषव्य मुनि ने आश्रम से बाहर निकाल दिया। तीन वर्ष तक विंध्यपर्वत में तपस्या करने के पश्चात् भी जब उसके मन को परितोष नहीं हुआ तो भागीरथी आया। वहाँ भी शान्ति नहीं मिली तो श्री शैल पर स्कन्द की आराधना करने लगा। वहीं अगस्त्य नामक ब्राह्मण से काशी नाम सुनाई पड़ा, उसके प्रभाव से स्कन्द ( कार्तिकेय ) का दर्शन हुआ। उसने कार्तिकेय से काशी-प्राप्ति पर प्रश्न पूछा—

**प्रायश्चित एवं पापशान्ति के लिए पंचक्रोशी प्रदक्षिणा वर्णन**—विघ्न बहुलता के कारण काशी-विरह होता है। उसके अन्त होने पर काशी प्राप्त होती है। ज्ञान के बिना किसी मनुष्य का प्रायश्चित नहीं हो सकता। काशी में देहाभिमानी का पतन होता है। यह ब्रह्मप्राप्ति का एक मात्र स्थल है। अन्य स्थानों पर ब्रह्महत्यादि पाप करने पर काशीवास से प्रायश्चित होता है। लेकिन काशी में किये गये पापों का कोई प्रायश्चित नहीं है। उन्हें यातना भोगनी ही पड़ती है; लेकिन काशी के चारो ओर पंचक्रोश में विस्तृत क्षेत्र एवं विश्वेश्वर की प्रदक्षिणा करने से समस्त पाप छूट जाते हैं।

## नवमोऽध्यायः

**मण्डप का प्रायश्चित सम्बन्धी आख्यान**—कुष्माण्ड ऋषि के ज्ञानी पुत्र मण्डप ने संगदोषवश अपने बन्धुवों के मना करने पर भी काशी में पाप का आचरण किया।

एक बार वह कुछ साथियों के साथ राजमहल में घुसा और कुछ धन चोरी करके उसे उसने एक वेश्या के घर रख दिया। एक दिन उसे प्यास लगी तो पानी के भ्रम में शराब पी गया। उसी समय दोनों चोरमित्र आये। उन्होंने चोरी का धन मण्डप से माँगा। मण्डप ने वह धन वेश्या से माँगा तो उसने देने से इन्कार कर दिया। इस पर मण्डप के मित्रों ने मण्डप को खूब पीटा और घर जाकर मण्डप के माता-पिता से सारी कथा

कही। इस पर पिता कुष्माण्ड ने मण्डप को घर से बाहर निकाल दिया। दोनों मित्रों ने उसे अस्सी संगम के निकट ले जाकर इतना पीटा कि वह मरणासन्न हो गया।

जब मण्डप की बेहोशी समाप्त हुई तो उसने देखा कि लोग शिवलिंग की प्रदक्षिणा कर रहे हैं। वह भी उन लोगों के साथ हो लिया। सभी साथी कर्दमेश में टिके। वहाँ मण्डप ने भगवान शिव के समक्ष रात्रिजागरण किया। सभी ने उसकी भक्ति की प्रशंसा की। मण्डप के पूर्ववृत्तान्तों से कोई परिचित नहीं था, फिर भी उसका अन्तःकरण उन यात्रियों के साधुवाद से स्वच्छ हो गया। दूसरे दिन मण्डप ने भीमचण्डो पर सबके साथ विश्राम किया। भोजनादि ग्रहण करके रात्रि में देवी जी के सामने क्षेत्रमाहात्म्य सुना और विह्वल होकर नृत्य भी किया। तीसरे दिन नियम-धर्म का पालन करते हुए महादेव, वासुदेव, शिव आदि नामों का कीर्तन करते हुए देहली विनायक पहुँचा। उसे बार-बार अपने कुकृत्यों पर पश्चाताप होने लगा। रामेश्वर में आते-आते उसकी भक्ति-प्रवणता तीव्र हो गई। वह रामेश्वर और शोभनाथ का पूजन कर निराहार नृत्यआदि परायण करने लगा। उसने वृषध्वज में जाकर विधिपूर्वक अठिला के जल में स्नान कर देवताओं की पूजा की फिर विश्वनाथ व माता अन्नपूर्णा का दर्शन किया। इसके पश्चात् उसका मन और आचरण शिवमय हो गया। घर जाकर उसने दरवाजे पर शिव शिव महादेव-महादेव की आवाज लगाई तो उसके पिता ने उसकी माता को भेजा। माता ने अपने पुत्र मण्डप का परिवर्तित रूप देखकर आश्चर्य किया, प्रायश्चित करने की जानकारी की। तत्पश्चात माँ-बाप ने अपने पुत्र को गले लगा लिया।

## दशमोऽध्यायः

**पंचक्रोश-प्रदक्षिणा-विधि**——पार्वती ने भगवान शंकर से पंचक्रोश-प्रदक्षिणा-विधि पूछी तो भगवान शंकर ने बतलाया कि आश्विन में क्षेत्र-प्रदक्षिणा का महत्व होता है या माघ, फाल्गुन, चैत, वैशाख माहों में प्रदक्षिणा करनी चाहिए। प्रथम दिन ढुण्डिराज का पूजन कर केवल फलाहार करे। दूसरे दिन प्रातः गंगा-स्नानकर विश्वनाथ जी का पूजन करे। उसके पश्चात् भगवती अन्नपूर्णा और विश्वनाथ की पूजा करे। अज्ञात एवम् ज्ञात जपों की मुक्ति के लिए सम्पूर्ण पंचक्रोश स्थित पूज्य देवतागण एवं १२ सूर्यों के साथ नृसिंह केशव के साथ अनेक अवतारों के देवगण एवम् शक्ति-सहित ज्योतिर्लिङ्ग के पूजन के साथ-साथ क्षेत्र-प्रदक्षिणा का संकल्प करे। तत्पश्चात् ढुण्डिराज गणेश को मौन प्रणाम करने के बाद पंचक्रोश-यात्रा निर्विघ्न समाप्ति हेतु आज्ञा माँगे। आमोद-प्रमोद, सुमुख-दुर्मुख एवं गणनायकको प्रणाम कर सोलहो प्रकार से पूजन करे और दण्डपाणि की भी पूजा करे तथा कालराज और अविशेश्वर भगवान का पूजन कर मणि-

कर्णिका घाट जाकर स्नान करे एवम् मणिकर्णिका महादेव का पूजन करे। वहीं तट के समीप गंगा, केशव, ललिता, जरासन्धेश्वर, शोभनाथ, दाल्भेश्वर, शुलटङ्केश्वर, वाराह, दशाश्वमेघ के लिङ्ग की बन्दना एवं अर्चना करे। फिर केदार, सर्वेश्वर, हनुमदीशः, सङ्गमेश लोलार्क अर्कसज्जकगणाध्यक्ष का अस्सी के संगम पर पूजा करे। क्षेत्र-प्रदक्षिणा में किसी भी स्थान का बिना दर्शन किये आगे न बढ़े। दुर्गाकुण्ड में स्नानकर दुर्गाविनायक की पूजा करे। भगवती दुर्गा को मधु, पायस एवम् लड्डुओं से ब्राह्मण को तृप्त करे। रात्रि में पुराणश्रवण, भगवान का भजन एवम् नित्यकर्म कर भगवती का पूजन करे। विष्वक्सेन एवम् कर्ममेंश को पंचधान्यों से पूजन करे, कर्दमक्षेत्र तीर्थ में स्नान कर कूपावलोकन करे एवम शोभनाथ, विरुपाक्ष और नीलकण्ठ की अर्चना करे। कर्दमेश्वर में नित्यक्रिया कर हवन करके ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा श्राद्ध आदि करने से देव-ऋण, ऋषि ऋण एवम् पितृऋण से उऋण हो जाये। प्रातः नित्यक्रिया कर कर्दमेश्वर का पूजन कर आगे बढ़े। नागनाथ, चामुण्डा, मोक्षेश, करुणेश्वर, वीरभद्र, विकटा, उन्मत्त-भैरव कालकूट का पूजन कर विमला को प्रणाम कर महादेव के दर्शनार्थ जाय। नन्दिकेश, भृङ्गिरिटि, गणप्रिय यज्ञेश, विमलेश्वर, मोक्षद और अमृतेश्वर का पूजन करें! गन्धर्व सागर पारकर भीमचण्डी में प्रवेश करके वहाँ स्नानकर दुग्ध से भीमचण्डी को स्नान करा कर पूजा करे। पण्डितों को भोजन कराकर चण्डविनायक में निवास करे। रविरक्ताक्ष, गन्धर्व और नरकार्णव, तारकशिव का पूजन कर रात्रि जागरण कर हरिकीर्तन, हरिकथा आदि करे। प्रातः पूजन कर महाभीम देवस्थान में जावे, यहाँ तिलो को छोड़ता जाये। भूतनाथ, सोमेश, कामेश, गणेश्वर, वीरभद्र, चारुमुख एवम् गणनाथ का पूजन कर देहलीश के यहाँ जाये। इन्हें लड्डू, खीर, सत्तू तथा ईख के दण्ड से पूजन करे। उन्हीं के पास १६ विघ्ननाथों को पूजे। उद्दण्ड गणपति, उत्कलेश्वर का पूजन करते हुए रुद्राणि भगवती के तपोभूमि का दर्शन करते हुए रामेश्वर जाये। वहाँ वरुणा में स्नान-तर्पण आदि कर भगवान रामेश्वर की श्वेततिल, विल्वपत्र आदि से पूजन करे, यहीं पर नाना दिशाओं में विराजमान शोभनाथ का पूजन कर भूतेश, लक्ष्मणेश्वर शत्रुघ्नेश्वर, द्वावा भुवनेश्वर, नहुषेश्वर की पूजा करे। वहाँ रात्रि जागरण कर प्रातः नित्यक्रिया कर भगवान रामेश्वर का पूजन कर वरुणापार के सम्पूर्ण देवस्थानों का दर्शन करता हुआ पाशपाणि तथा विनायक का पूजन करे क्षेत्र के बाहर पृथ्वीश्वर का पूजन करे कपिल क्षेत्र में वृषभध्वज का पूजन कर यहाँ तर्पण और श्राद्ध करे। यहाँ एकदिन रात्रि निवासकर जागरण करे, तत्पश्चात् ज्वालानृसिंह में जाये और कपिल सरोवर की प्रदक्षिणा कर वरुणा को पारकर संगम में स्नानकर आदिकेशव भगवान का पूजन करें। वहाँ जौ बिखेरते हुए चलना आवश्यक है। इसके बाद प्रह्लादेश्वर त्रिलोचन, बिन्दुमाधव, पञ्चह्रद गभ-

स्तीश और मंगलागौरी का पूजन करे। तत्पश्चात् वशिष्ठ, वामदेव, पर्वतेश्वर, महेश्वर सिद्धि विनायक, सप्तावरण गणनायक का पूजन कर मणिकर्णिका में स्नानकर भगवान विश्वनाथ के यहाँ आकर पञ्चोपचार से पूजन करे। यहाँ मुक्तिमण्डप में आकर विष्णु, दण्डपाणि, ढुण्डीभैरव, आदित्य तथा पाँच गणकों का पूजन करे और यथाशक्ति पंञ्चक्रोश प्रदक्षिणा की सिद्धि के लिए दान इत्यादि देकर घर जाकर ब्राह्मण भोजन करावे।

## एकादशोऽध्यायः

**पंञ्चक्रोशी यात्रा नियम**—पार्वती ने शंकर जी से पञ्चक्रोशी-यात्रा के नियम पूछा तो महादेवजी ने बतलाया कि पंचक्रोशी यात्रा करने वाले को प्रतिग्रह, परान्न, परधन एवम् परस्त्री से सम्भाषण त्याग देना चाहिए। पापियों के साथ रहने पर सम्पूर्ण कार्य निष्फल हो जाते हैं। विष्णु, शिव एवम् दूसरों की निन्दा करने वालों के साथ न जाये। गुरु, शास्त्रनिष्ठा, शिवधर्म, महात्मा, तीर्थ, लिङ्ग आदि की निन्दा न करे। अन्य क्षेत्रों में किया गया पाप इस क्षेत्र की परिक्रमा करने पर नष्ट हो जाता है। परन्तु इस क्षेत्र की प्रदक्षिणा में किया गया पाप कभी भी नष्ट नहीं होता। साथ ही इच्छा रखने वालों को समस्त क्षेत्र-प्रदक्षिणा करनी चाहिए। इन दिनों में ब्राह्मण, अनाथ, अपंगों को दान देना चाहिए। पृथ्वी पर शयन कर तेल, मांस, उड़द, मसूर, चना, कोदो, ताम्बूल, मैथुन आदि का त्याग करे। दोनों समय स्नान एवम् नित्य पूजन करे।

**क्षेत्र प्रदक्षिणा**—पार्वती ने महेश से पूछा कि जो लोग पंचक्रोश-यात्रा करनेमें असमर्थ हों उनका पाप कैसे नष्ट हो, बतलाइये। भगवान शंकर ने कहा—प्रातः स्नान कर शिवकी की पूजा कर मोद आदि पंचक, ढुण्ढिराज, दण्डपाणि, भैरो और दुर्गा की पूजा कर सात आवरण विनायकों में वहिरावरण में अवस्थित सिद्धिविनायक की दक्षिण से परिक्रमा एवं अर्क विनायक आदि सातों की वायीं ओर से परिक्रमा करके रात्रि-विश्राम करे। फिर प्रातः नित्यक्रिया करके दण्डपाणि का पूजन करे इसके पश्चात् परिक्रमा समाप्त कर विश्वनाथ की पूर्ववत पूजा करे।

## द्वादशोऽध्यायः

**अशक्त प्राणियों के प्रायश्चितस्वरूप कार्य का विधान**—पार्वती जी ने शंकर जी से अशक्त प्राणियों के प्रायश्चित रूप में पंचक्रोश यात्रा का सुलभ उपाय पूछा तो भगवान शंकर ने बतलाया कि जो लोग अशक्त हैं वे काशीक्षेत्र के देवस्थानों का जीर्णोद्धार, मंदिरों के छतों का निर्माण या नूतन शिवजी का मन्दिर बनवायें तो सारा प्रायश्चित होकर उन्हें मोक्ष का लाभ होगा। शिव या विष्णु मूर्ति की प्रतिष्ठा का काशीक्षेत्र में विशेष

माहात्म्य है। शिव-विष्णु-भक्त विद्वानों को समस्त सामग्रियों से पूर्ण कर देना विशेष फल देने वाला है। ब्राह्मण को गृहदान देना और भी उत्तम कार्य है।

**महातेजा क्षत्री का आख्यान**—सूर्यवंशी महातेजा ने व्यापार करके काफी धन कमाया एवम् अपना सामाजिक स्तर ऊँचा किया। दुर्भाग्य से उसकी पत्नी का देहान्त हो गया और वह दासीगामी हो गया। चूँकि उसके पास प्रचुर धन था, इसलिए उसे ब्राह्मणों को ब्याज पर देने लगा। समय-समय पर पाप करता रहा। चाहते हुए भी उस दासी से उसे कोई सन्तान न हुई। दासी महातेजा के आचरण से दुःखी थी, वह दान में विश्वास करती थी लेकिन महातेजा महाकृपण था। एक दिन दासी ने भोजन नहीं बनाया। पूछने पर उसने कहा कि भोजन में धन का व्यय होता है, इसलिए भोजन नहीं बनाया। महातेजा ने उसके इस व्यवहार पर आपत्ति की तो पत्नी ने कहा कि भगवत कथा एवम् दान करने में मन लगाना चाहिए। उसने दासी को लाख समझाया, वह न मानी तो विवश होकर महातेजा त्रिलोचन तीर्थ के पास कथा सुनने चला गया। वहाँ अर्थ व काम के वासनावश धन का दुरुपयोग व उसकी नारकीय योनियों की प्राप्ति का प्रकरण चल रहा था। धन के सदुपयोग और उससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति का कल्याणदायक उपाय सुनकर वह अनमना-सा घर लौटा। दासी ने भोजन पकाकर सामने रख दिया। महातेजा ने उस भोजन को बिना अतिथियों को खिलाये न ग्रहण करने का आग्रह किया। दासी द्वारा भिखमंगों को बुलाने पर कोई उस कृपण का अन्न खाने को तैयार नहीं हुआ। इस बात से महातेजा बहुत दुःखित हुआ, उसने बिल्लो, कुत्ते, कौवों को बुलाना चाहा परन्तु वे भी नहीं आये। इस पर वह रात्रिभर अपने पूर्वजीवन का ध्यान कर पश्चाताप करने लगा। प्रातः उठकर स्नानकर धर्मकथा सुनने लगा। वहाँ महात्मा शान्तव्रत काशी माहात्म्य सुनाते हुए कह रहे थे कि काशीवास नाना जन्मों के पुण्यों से होता है। यदि यहाँ भो मनुष्य पापकर्म में लिप्त होकर जन्म को व्यर्थ खोता है तो उसको मोक्ष नहीं मिलता। इस कथा का महातेजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने प्रातः गंगा स्नानकर भगवान विश्वनाथ की पूजा की। घर आकर भिक्षुओं को दान देने के लिए बुलाया तो वे नहीं आये, वह बड़ा दुखी हुआ। रात्रि में उसे मानसिक ग्लानि और पश्चाताप हुआ। वह शिव-शिव की करुणा भरी रट लगाता हुआ अपने किये पर पश्चात्ताप करने लगा। तीसरे दिन स्नान कर महात्मा जी से अपने दुष्कृत्यों से छुटकारे का उपाय पूछने लगा। महात्मा ने बतलाया कि अच्छे ब्राह्मण को सामग्री सहित सुन्दर निवास योग्य घर देना, देवालय बनाना उनका जीर्णोद्वार करना पापों से प्रायश्चित का उपाय है। इसे सुनकर महातेजा ने अपने धन से सुन्दर निवास योग्य गृह बनाकर सत्पात्र को दिया। परिणामस्वरुप उसका उद्धार हो गया।

## त्रयोदशोऽध्यायः

**काशी स्थित प्रमुख तीर्थों का वर्णन**—ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि काशी में कौन-कौन से प्रमुख तीर्थस्थान हैं, उनका क्या माहात्म्य है ? सूतजी ने कहा सर्व प्रथम अविमुक्त में रहकर गंगा स्नान करे, मध्याह्न में मणिकर्णिका का सेवन करे। प्रातः पंचनद में भक्तिपूर्वक स्नान करे।

आदिकेशव भगवान का स्थान जहाँ वरुणा गंगाजी से मिली हैं, अत्यन्त महत्व पूर्ण है। गंगा के किनारे अनेकों तीर्थ हैं, उनमें नौ उत्तम हैं। रेणुका, सूकर, काशी, काञ्ची, काली, नरेश्वर, कालञ्जर एवं महाकाल नवखण्ड और नवनाग प्रसिद्ध हैं। यहाँ विभिन्न स्थानों में महापुरियाँ अवस्थित हैं। शंखोद्वार प्रवेश में द्वारिका, विन्दु माधव के पार्श्वस्थित विष्णुकाञ्ची, अर्क से उत्तर वरुणा तक मथुरा, सोमेश्वर के समीप वायुकोण में अयोध्या, अस्सी के संगम के कोण पर हरिद्वार, कृत्तिवासेश्वर तक महाकाल पुरी उज्जयिनी है। इन सप्तपुरियों की क्रमशः वर्षा, शरद्काल, वसंत, ग्रीष्म, हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में यात्रा करनी चाहिए। अविमुक्तेश्वर, विशेश्वर, मणिकर्णिकेश्वर, केदारेश्वर, कृतिवासेश्वर, वृद्धकालेश्वर, चन्द्रेश्वर, ब्रह्मेश्वर, त्रिलोचनेश्वर, ओंकारेश्वर, कपर्देश्वर, धर्मेश्वर ऐसे स्थान हैं जहाँ उनका दर्शन करके मनुष्य को मोक्ष मिल सकता है।

## चतुर्थशोऽध्यायः

**काशी माहात्म्य के सन्दर्भ में ब्रह्मा, यम एवं शिव का वार्तालाप**—एक बार मनु दुःखी होकर ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा द्वारा कारण पूछने पर मनु ने कहा कि काशी में सम्पूर्ण पापों से छुटकारा मिल जाता है इसलिए उन्हें काशी जाने की आज्ञा दी जाय। ब्रह्मा काशी विषयक प्रश्न पर विचार कर ही रहे थे कि उसी समय यम का आगमन हुआ। यम ने कहा—भारत में पापी लोगों के पापों का छुटकारा काशी नामोच्चारण, उसके दर्शन एवं वहाँ पर स्नान करने मात्र से हो जाता है इसलिए पापियों पर शासन की अब कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

ब्रह्मा जी उन दोनों को लेकर शंकर के पास गये। उन्होंने मनु और यम की समस्या उनके समक्ष रखी। शंकर ने समस्या का समाधान करते हुए कहा कि—ब्रह्म एकमेव सत्य सनातन है, माया सम्वलित ब्रह्म के द्वारा ही यह सृष्टि प्रकाशित है। माया के प्रभाव से सम्पूर्ण प्राणिनाम चित्तविक्षेपयुक्त रहते हैं। केवल काशी अविमुक्त क्षेत्र ब्रह्म का निवास-स्थल है; इसमें शिव एवं विष्णु निवास करते हैं। अतः यहाँ रहने वाले प्राणी को उसी तरह मोक्ष मिलता है जैसे पारस को छूने मात्र से ही लौह सुवर्णमय हो जाता है वैसे ही काशी में सम्पूर्ण प्राणी ब्रह्ममय हो जाते हैं। जैसे प्रकाशपुंज ही सम्पूर्ण जगत का

प्रकाशक है और उपाधिभेद से सूर्य एवं दीपक में भासित होता है, अधिष्ठान के अनुसार वैसे ही हिरण्यगर्भ एवं जीवों में अधिकृत भेद है, यह रहस्य काशी के अविमुक्त के सम्बन्ध में है। अतः काशी में हर प्रकार का मनुष्य स्मरण पूजन, कीर्तन, स्नान आदि कर अपने आत्मशुद्धि के साधनों में प्रवृत्त हो मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। इसको प्रत्यक्ष रूप से दिखलाने के लिए शंकर जी ने उन तीनों को काशी लाकर अविमुक्त क्षेत्र का चमत्कार दिखलाया।

## पंचदशोऽध्यायः

**द्विज तेजा और ब्राम्हण का आख्यान**--मिथ्याजगत् से मुक्ति का उपाय काशी के अलावा और कहीं नहीं है, इस विषय को लेकर सूत जी ने एक आख्यान ऋषियों के समक्ष प्रस्तुत किया।

मगध देश में बहुविवाद करके ब्राह्मणों को वाद में जीतने वाला एक द्विजजेता नामक ब्राम्हण रहता था। एकदिन अधिक भोजन कर लेने के कारण वह बीमार हुआ। उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्युपश्चात् वह ब्रह्मराक्षस हुआ और बहेंड़ के वृक्ष पर रहने लगा। वह मधुर बोलकर ब्राह्मणों को अपने पास बुलाता और उन्हें भक्षण कर जाता। एक बार एक ब्राम्हण उस मार्ग से आ रहा था। ब्रह्मराक्षस ने उसे बुलाकर पूछा कि क्या शास्त्रार्थ कर सकते हो, कहाँ जा रहे हो? ब्राह्मण शास्त्र—सम्मत ब्राह्मण को देखकर बोला कि वह काशी जा रहा है, जहाँ निवास करने के पश्चात् किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं उत्पन्न होगी। ब्रह्मराक्षस भी काशी जाने के लिए लालायित हो गया। उसने ज्योंही अपना प्रस्ताव ब्राह्मण यात्री के समक्ष रखा उसके आधे पाप कट गये और उसकी प्रवृत्ति हिंसात्मक न रही। दोनों काशी की ओर चले। ब्राह्मण यात्री द्वारा पूर्व वृत्तान्त पूछने पर ब्रह्मराक्षस ने सबकुछ बतलाकर अपने मोक्ष का उपाय पूछा। ब्राह्मण ने काशी के रेणु कणों से स्नान के पश्चात् मुक्ति मिलने की बात कही। जब वे काशी सीमा पर पहुँचे तो वह ब्राम्हणयात्री ब्रम्हराक्षस को बाहर ही छोड़ आनन्द-कानन में जाकर स्नान किया और शंकर का ध्यान एवं पूजनकर भष्म का ढेर लेकर ब्रह्मराक्षस के पास आया। उसे भस्म से नहलाया और शुद्धकर काशीक्षेत्र में प्रवेश किया। दोनों ने मणिकर्णिका में स्नान करके भगवान शिव का दर्शन-पूजन किया और नियम-धर्म से काशी में रहने लगे। परिणामस्वरूप उस ब्रह्मराक्षस का शरीर दिव्य हो गया और पापभय से कभी भो बुरी प्रवृत्तियों को उसने नहीं दुहराया। इस प्रकार सज्जन, संगति, सदबुद्धि, सदाचार, सत्य और शास्त्र से पाँचों का पालन करने से मनुष्य को मृत्यु का भय नहीं रहता।

## षोडषोऽध्यायः

**काशी में नित्य यात्रा-विधान**—ऋषियों ने नित्य-यात्रा विधान के सन्दर्भ में काशी में किये गये पाप नष्ट होने एवम् पुण्य की वृद्धि हो जाने का उपाय सूतजी से पूछा। सूतजी ने शिव-पार्वती के सम्वाद के माध्यम से इस प्रश्न का समाधान किया।

प्रातःकाल उठकर ठुण्डीराज, भवानी शंकर, कालभैरव दण्डपाणि, गणेश, केशव, आदित्य और चण्डिका का स्मरण और नमस्कार कर मनुष्यनित्यक्रिया से निवृत होकर सन्ध्या तर्पण करे। भगवान विश्वनाथ का स्मरण करता हुआ भगवती अन्नपूर्णा का पूजन करे तत्पश्चात ढुण्डीराज, विश्वनाथ, दण्डपाणी, आदित्य, द्रौपदी, विष्णु तबा महेश्वर की निर्वाण मण्डप में पूजन करे उसके पश्चात षोडसोऽचार विधि से विश्वनाथजी की पूजा करे। तीन प्रदक्षिणा कर पाँच प्रकार से प्रणाम करे। निर्वाण मण्डप में विष्णु भगवान को नमस्कार कर अर्न्तगृह में बैठकर विश्राम एवम् सत्संग करे। यहाँ रहते हुए परान्न-परवाद-परदार, परधन, परधर्म, दुराचरण, द्वेष, अभक्ष, आलस्य एवम दैन्ययुक्त दस दोषों से दूर रहे। इस संसार में दुख नाम की कोई चीज नहीं है परन्तु विषयाकुल चित्तवाले व्यक्ति सदा ही दुःख पाते हैं। भगवानकी शरण होनेसे यह दुःख नहीं सताता। यम, नियम में प्रवृत्ति, गुरुपदेश परमार्थ दृष्टि असत्य कथा का वर्जन, जप, आस्तिकता मयी बुद्धि, शिवनाम, कीर्तन, आत्मशुद्धि, मृदुवचन, शान्ति, सदाचार, दान, काम, क्रोध आदि से दूर रहना, मान-अपमान से दूर रहकर, भगवत भजन करते हुए काशी निवास करना ही कैवल्य मुक्ति का साधन है परन्तु प्रवृत्त मार्ग के लोगों के लिए यह मार्ग उपयोगी नहीं है क्योंकि लोलुपता आदि विघ्न उनके मध्य आ जाते हैं यही उनके दुःख का कारण है। यहाँ रहकर मनुष्य प्रतिग्रह, परिग्रह आदि से दूर रहे तो मोक्ष को प्राप्त हो सकता है।

## सप्तदशोऽध्यायः

**काशीनाम प्रसिद्धि का रहस्य**—योनिकारण वीज शक्ति और ज्योतिलिङ्ग शिव है। प्रकृति एवं पुरुष के ये रूप पुराणों आदि में प्रसिद्ध है। शिव ही अनेक नामों से प्रसिद्ध हैं। सदाशिव की जो चैतन्य रुपिणी शक्ति है वही काशी नाम से प्रसिद्ध है। कोई इसे अविमुक्त, पञ्चक्रोश क्षेत्र रुद्रावास, विष्णुवास और वाराणसी धाम कहते हैं। परन्तु यह एक ही पूर्ण सच्चिदानन्द सदाशिव के सनातन ज्योर्तिलिङ्ग का वाचक है। भगवान शङ्कर ने एकबार अपनी शक्तिचैतन्यरुपिणी को अलग कर दिया वही काशी नाम से विख्यात हुई और शङ्कर के वरदान से क्षेत्रस्वरुपिणी अधिष्ठात्री देवता हुई। पश्चिमाभिमुख गङ्गा केशव के सानिध्य में यह अविमुक्तेश्वर का स्मरण करती हुई

सनातन काल से उसी रूप में प्रकाशित है। जो द्वादशी को प्रातः उठकर स्नानकर काशी का पूजन करता है उसकी बुद्धि पाप में नहीं लगती और चतुर्विध श्रृष्टि के प्राणी काशी में ही मुक्ति प्राप्त करते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं।

**काशी में कलि का प्रभाव**—ऋषियों द्वारा यह पूछने पर कि काशी में कलि का प्रवेश है ही नहीं तो यहाँ पर रहने वाले प्राणियों को कलि क्यों बाधा देता है? इस पर सूतजी बोले कि कलि का प्रवेश काशी में नहीं होता बल्कि प्राणी के पूर्वजन्मार्जित संस्कारों के वश से उनमें वासना का उदय होता है, शुभ वासनायें पुण्यजनक होती हैं और अशुभ वासनाये पापजनक है। अशुद्ध बुद्धि ही कलि नाम से कहा गया है। इससे दूर रहने वाले व्यक्ति की शुद्ध निर्मल बुद्धि होकर काशी की कृपा से विश्वेश्वर एवम् भगवती के चरणों में दृढ़निष्ठा होकर परमपद की प्राप्ति होती है।

## अष्टादशोऽध्यायः

**काशी एवं शंकर वार्तालाप**—सूतजी बोले कि काशी ने पापी लोगों के भार को धारण करने में अपनी अशक्ति बतलाई ( विशेष रूप से काशीक्षेत्र में किये हुए पापों की। ) इसपर भगवान शङ्कर ने काशी को आश्वासन दिया कि काशी में पापीपुरुषों की स्थिति भविष्य में नहीं होगी। मेरी आज्ञा से दण्डपाणि उन्हें काशी से बाहर निकाल देंगे।

**असज्जन पुरुषों के लक्षण**—काशी ने असज्जन पुरुषों के बाह्यलक्षण पूछे तो शंकर ने कहा कि जो व्यक्ति गृह, परस्त्री, धन-पुत्र में रमते हैं, परमधर्ममोक्ष से विरत रहते हैं, ऐसे लोगों के सम्पर्क से सदा ही असद्वृत्त होने का डर रहता है। अतः ऐसे लोगों का सम्पर्क दूर से ही टाल देना उचित है।

**काशी में कामकला आख्यान**—कामकला वेश्या को अपने कुकृत्यों के कारण पश्चात्ताप हुआ। उसे भगवती काशी के दर्शन की उग्र उत्कण्ठा हो गयी। कुछ दिन के बाद वह काशी आई। भगवान के नाम का प्रतिदिन भजन करने से उसके पाप नष्ट होने लगे, काशी आकर उसने मणिकर्णिका में स्नान किया और अपना धन सत्पात्र को दान कर दिया। उसने अपने केशों को कटवाकर शुद्ध जीवन का व्रत लिया और भगवान का ध्यान करती हुई उनसे दिनरात श्रद्धा-भक्ति से प्रार्थना करने लगी।

उसे एक ही पति भगवान काशीपति भूतभावन जनार्दन दीखने लगे। ऐसी स्थिति में उसे सुरसा नामक ब्राह्मणी ने देखा और परिचय पूछा तो कामकला ने आदि से अन्ततक अपना परिचय देते हुए अपनी काशीभक्ति का विस्तार से वर्णन सुनाया और सर्वत्र ही काशीक्षेत्र में केशवमय मूर्ति के दर्शन होने की बात कही।

सुरसा ने अपनेको काशीक्षेत्र की अधिष्टात्री देवता बताकर कहा कि कल भगवान केशव के दर्शन करोगी और उसे अपने स्वरूप का दर्शन कराया ।

दूसरे दिन विलाप करती हुई मध्याह्न में जैसे ही वह वेश्या मणिकर्णिका में स्नान कर केशव को पुकारती हुई ध्यान करने लगी तो उसकी मृत्यु हो गयी । उसे साक्षात मोक्ष प्राप्त हुआ ।

## ऊनविंशोऽध्यायः

**वीरसेन एवं कामकला सम्वाद**—वीरसेन अपने पुत्र प्रसेन को विदर्भ का राज्य सौंपकर अपनी पत्नी के साथ काशी आकर वरुणा के किनारे भगवान केशव की आराधना करने लगा ।

एक दिन वीरसेन ने कामकला को बुलाकर पूछा-तुम्हारा पति कौन है ? कामकला ने भगवान केशव को अपना पति बतलाया ! वीरसेन ने पुनः पूछा-वह कैसे मिलता है ? कामकला ने कहा कि गुरुभक्ति, स्मरण से एवं अहंकार-वृद्धि के नाश होने से वह मिलता है। विषयों में आसक्त, लोभी, पापात्मा पुरुषों से वह दूर रहता है । जो उनमें ही एक-चित्त होकर भक्तिपूर्वक लगता है, उसे साक्षाद् मोक्ष प्राप्त होता है । काशीपुरी भगवान विष्णु के साक्षात्कार का क्षेत्र है । यहाँ गुरु एवं शास्त्र से श्रद्धा होने पर वह मिलता है और मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है । वीरसेन ने पूछा किस पूण्य से श्रद्धा का उदय होता है ? तो कामकला ने श्रुति, स्मृति, पुराण द्वारा प्रतिप्रादित धर्म के अनुष्ठान को ब्रह्मार्पण बुद्धि से करने से ही श्रद्धा की प्राप्ति बतलायी ।

**श्रद्धापूर्ति के सम्बन्ध में भिल्ल एवं ब्राह्मण की कथा**—विन्ध्यपर्वत के कोटर भिल्ल पल्ली में रोद्राक्ष नामक एक भिल्ल रहता था । जो यात्री उस पथ से जाता वह उसे मारकर धन छीन लेता और अपने पापों में वृद्धि करता रहा । एक दिन उस पथ से जा रहे कुछ ब्राह्मण मिले । भिल्ल ने उन्हें पकड़ लिया । उसके धमकाने पर ब्राह्मणों ने अपना सब कुछ सौप दिया और काशी पहुँचने के लिए जीवनदान की याचना की । उस भिल्ल ने ब्राह्मणों से धन की महत्ता जाननी चाही तो ब्राह्मणों ने धन को समस्त पापकर्मो और अनर्थो का मूल बतलाया । उन्होंने पापकर्मो को दुःख का मूल और नरक का पथ बतलाया तथा धर्म करने वाले के लिए स्वर्ग बतलाया । दूसरों का धन बलात् छीन लेना, सत्पुरुषों की निन्दा, अपने लिए जो प्रतिकूल लगे वह दूसरों के लिए करना पाप है । शरीरधारी की शुद्धि के लिए दस संस्कार होते हैं । ये संस्कार विशिष्ठ सत्पुरुषों की सङ्गति, स्वयं के उद्धार की बुद्धि, सत्यशास्त्र परायणता, विचार, अनुभव का आनन्द विषयों के सुख का त्याग, आहार शुद्धि, ईश्वर में पराभक्ति हैं । पापों में डूबे मनुष्य के हृदय में शास्त्रों के प्रति आस्था नहीं होती ।

भिल्ल ने अपने उद्धार का उपाय पूछा तो ब्राह्मणों ने एकमात्र भगवत्कथा ही उद्धार का उपाय बतलाया जो काशी में ही संभव है।

वह भिल्ल ब्राम्हणों के साथ काशी आया और जेष्ठेश्वर के निकट उसने शिव, काशी विष्णु की कथा का श्रवण एवं दर्शन-पूजन किया। उस भिल्ल को शास्त्रश्रवण से श्रद्धा मिली और उसने मोक्ष प्राप्ति के लिए भूख-प्यास का त्यागकर भगवत्भक्ति में मन लगाकर मोक्ष प्राप्त किया।

## विंशोऽध्यायः

**शास्त्रश्रवण-विधि एवं सच्चे गुरु का लक्षण**—शास्त्रश्रवण-विधि, वक्ता और श्रोता के सम्बन्ध में ऋषियों द्वारा पूछने पर सूत जी ने बतालाया कि भगवान सर्वप्रथम कृष्ण द्वैपायन रूप में गुरु में प्रवेश कर वक्ता बनते हैं, जिससे शिष्य को सत्यपथ पर जाने का उपदेश मिलता है, इसलिए व्यास के सदृश गुरु और सूत के सदृश शिष्य होना आवश्यक है। गुरु वही है जिसके सदुपदेश से पापी, कामातुर, मूर्ख व्यक्ति भी धर्ममार्ग में प्रवृत्त होकर शाश्वत मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। जो पाप से हटाकर शीघ्र गृहस्थआश्रम के नियमों से उसे धर्म, अर्थ और काम की शिक्षा दे फिर धर्म के द्वारा निष्काम भक्ति का उपदेश देकर उस प्राणी का उद्धार करे वहीं सच्चा गुरु है।

**गुरुओं के प्रकार**—रागयुक्त और रागरहित दो प्रकार के वक्ता गुरु होते हैं। सराग वक्ता की बातें हृदय को स्पर्श नहीं करतीं। निराग वक्ता दो प्रकार के होते हैं। एक देव, गुरु. धर्म आदि में शिष्य श्रद्धा की परीक्षा लेने वाला जैसे याज्ञवल्क्यादि। दूसरा वह जो बिना किसी परीक्षा के ही उपदेश देता है। बिना परीक्षा लिये किया गया उपदेश ऊसर भूमि में बोये गये बीज के सदृश है।

**जनक के प्रति याज्ञवल्क्य का उपदेश**—एक बार मिथिला के राजाजनक ने विचार किया कि योग्य ज्ञानियों को एक हजार गायें दान स्वरूप दी जायँ। इसके लिए उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाया। यह देखकर याज्ञवल्क्य ने जनक से कहा—आप धन्य हैं, आपको इस संसारी पदार्थों में रंचमात्र भी व्यामोह नहीं है, अतः आप धर्म के प्रकरण में स्वयं सिद्ध हैं। आप गोदान करके तीनों प्रकार के दुःखों को नष्ट करने वाला ज्ञान प्राप्त कीजिए। जनक ने गोदान कर दिया। तत्पश्चात् ऋषियों ने जनक की परीक्षा कर ज्ञान दिया। इस प्रकार ज्ञान के अधिकारी वे हैं जिन्होंने प्रारम्भ में धर्म, अर्थ, काम, को देने वाली धर्मकथाएँ सुनी हों और उसका बोध करके निवृत्ति-मार्ग में आ गये हों। ऐसे ही लोग परमपद के ज्ञान द्वारा मोक्ष को प्राप्त करते हैं। काशी-क्षेत्र मोक्ष-प्रदायक है।

## एकविंशोऽध्यायः

**गंगा-महिमा-वर्णन**—सूत जी ने कहा कि काशी-सेवन, गंगा-स्नान सर्वदा धर्म में

प्रवृत्ति करने वाला और मोक्ष का द्वार है। काशीलाभ भगवान विश्वनाथ की कृपा एवं पूर्णात्मा मनुष्य को हो सुलभ होता है।

**पाण्ड्य राजा पूण्यकीर्ति काशी परिचय की कथा**—राजा पूण्यकीर्ति गंगा का बड़ा ही भक्त था। वह सत्संग में अपना समय व्यतीत करता था। गंगा को लौकिक-पारलौकिक पुरुषार्थ का साधन मानता था।

वह समस्त धार्मिक कार्य गंगाजल से ही सम्पादित करता था। उसकी इस तरह की श्रद्धाभक्ति से प्रसन्न होकर गंगा जी ने वर मांगने को कहा। राजा ने कहा कि यदि आप वर देना चाहती हैं तो मुझे ऐसा दीजिए कि मैं प्रतिदिन आप का दर्शन पाता रहूँ। गंगा ने काशी आकर दर्शन करने को ही अपना अमृत-स्वरुप दर्शन बतलाया और काशी की महिमा व्यक्त करते हुए कहा कि काशी में ही सभी के आराध्य विष्णु, शिव, पार्वती, सूर्य, ब्रम्हा और समस्तदेव, ऋषि और योगिराजा निवास करते हैं, परमसुख की अभिलाषा ही उनके निवास का रहस्य है। अतएव यदि मनुष्य जितेन्द्रिय, शास्त्र और विषयों से विमुख होकर यहाँ काशी लाभ करे तो उसे अवश्य ही वास्तविक सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए हे राजन्, इस राज्य को अपने पुत्रों को सौंपकर काशीवास के लिए प्रस्थान करो।' यह कहकर गंगा अलक्षित हो गयीं। राजा ने गंगा के आदेशानुसार अपने पुत्र को सम्पूर्ण राजपाट सौंपकर पत्नी-सहित काशी की ओर प्रस्थान किया। वहाँ जाकर गंगा में स्नानकर विष्णु, शंकर, पार्वती अन्नपूर्णा के दर्शनकर अपना सर्वस्व धर्मनिष्ठ ब्राम्हणों को दान कर दिया।

**पापी का प्रभाव**—अब वह नित्यप्रति पत्नी-सहित गंगा-स्नान करके देवी-देवताओं की आराधना करने लगा। उसके इस आचरण से गंगा जी अत्यन्त प्रसन्न होकर पुनः वर देने के लिए उपस्थित हुईं। राजा ने वर स्वरूप काशी का प्रभाव जानने की इच्छा व्यक्ति की। गंगा जी ने बतलाया कि विष्णु द्वारा निर्मित काशी पंचक्रोशक्षेत्र में स्थित है। धर्मनिष्ठ मनुष्यों को वह परमसुख की प्राप्ति कराती है। काशी में सम्पूर्ण देवता ऋषि, मुनि, सिद्ध, योगेश्वर लोगों का निवास है। वहाँ ब्रह्मज्ञान के समस्त साधन सुलभ हैं। संसार में प्रिय वस्तु मनको व्याकुल करने वाली एवं अधिक संख्या में नहीं होती। परमात्मा ही एक ऐसा है जो परमसुख एवं प्रिय इष्ट है। यह सब उससे ही प्राप्त हो सकता है।

राजा द्वारा 'गुरु कैसा हो ?' पूछनेपर गंगा जी ने बतलाया कि शान्तिपूर्ण, विष्णु-भक्त, शिवपरायण, वेदवेदार्थरूपवाले भक्त और भक्ति का विवेचन करने वाले ही योग्य गुरु कहे जा सकते हैं। भक्त ही समस्त पापों का नाश करते हैं। भक्त, साक्षात् तीर्थरूप होते हैं इसलिए भक्तों की सेवा में सर्वदा लगे रहना चाहिए।

## द्वाविंशोऽध्यायः

**मृत्यु के बाद आत्मा का गमन**—ऋषियों ने सूत जी से पूछा कि जो लोग अपने पापकर्मों का प्रायश्चित करने के लिए काशीवास नहीं करते, मृत्यु के बाद उनकी आत्मा का गमन कहाँ होता है ?' सूतजी ने बतलाया कि जो मनुष्य धन की ओर स्वार्थबुद्धि रखकर उसी में दिनरात लिप्त रहते हैं उनको तो नरक का कोई डर नहीं रहता।

धन दो प्रकार के बतलाये गये हैं—प्रथम बन्धनकारक धन यह धन देहादि के विषय सुख के लिए होता है। दूसरा मोक्षसाधन में सहायकधन, यह परमार्थ एवं विप्र आदि के सेवार्थ सदुपयोग में लगाया गया पूण्य एवं मोक्षसाधनवाला धन है। पूण्यधन के भी दो प्रकार हैं— काम्य और मुक्ति हेतु वाला। काम्य का उपयोग धर्मविषयों एवं परलोकके साधन के लिए होता है मुक्ति हेतु वाला वह धन है। जो ब्रह्मार्पण बुद्धि से किया जाता है। जो मनुष्य धन को ही सर्वस्व मानकर रातदिन उसी में लगे रहते हैं उनके पापों का कभी भी अन्त नहीं होता।

**पापानुसार नरक के प्रकार स्थिति एवं लक्षण**—मुनिगणों द्वारा पापानुसार नरक के प्रकार स्थिति एवं उनका लक्षण पूछनेपर सूत जी ने कहा कि धर्मराज की नगरी संयमिनी में धार्मिक व्यक्तियों पर शिव और पापियों पर महायम शासन करते हैं। उनके आदेशानुसार पापियों को कर्मानुसार उनके पापों का स्मरण कराते एवं दण्ड देते हैं। ज्ञात—अज्ञात पाप के अपराधियों को भी यम कठोर दण्ड देते हैं।

**पापी और मुमुक्षु की धर्मोपासना में अन्तर**—पापी और मुमुक्षु एकही धर्म की उपासना करते हैं परन्तु पापी सुखभोग उद्देश्य बनाता है, मुमुक्षु मोक्षइच्छा को लक्ष्य बनाता है। विराग और राग का फल भिन्न-भिन्न होता है। एक से मोक्ष और दूसरे से बन्धन मिलता है। मुमुक्षु लोग समस्त स्थावर—जंगम को नश्वररूप में देखते हैं और ब्रह्मबुद्धि वाले होते हैं, फलस्वरूप वैराग्य, ज्ञान, तप, धर्म और परमसुख का दाता है। वैराग्य पापों का नाशक है। मनुष्य पापपूण्यके कारण अशुभ और शुभरूपों की कल्पना करता है। धन में स्वबुद्धिएवं भोगबुद्धि पतन एवं नरक प्राप्ति का कारण होती है। भगवान को अर्पित बुद्धि मोक्ष का कारण बनती है।

## त्रयोविंशोऽध्यायः

**पाप-पापी और उनकी यातनाओं का आध्यात्मिक रहस्य**—सदस्यों द्वारा पाप, पापी और उनकी यातनाओं का आध्यात्मिक रहस्य पूछने पर धर्मराज ने बतलाया कि सर्वप्रकार पाप का चिन्तन फिर उनका संग्रह परिणामस्वरूप पापवासनाओं का उग्ररूप

धारण कर लेना आदि ही उपपातक, पातक और महापातक का स्वरूप है। अतएव पापों की निश्चित संख्या बतलाना असंभव है लेकिन पापों का मूल मानसिक पाप-चिन्तन से ही प्राप्त होकर मनुष्य को गर्भ-यातना पाप, स्वर्ग, अपवर्ग पुण्यों के कारण ही होते हैं। संयमिनी में जो यातनाएँ होती हैं एवं सुखप्राप्तिपूर्वक धर्मप्रसङ्ग का वातावरण होता है वह सभी पापपुण्य के कारण ही होता है। अतः पापों से बचने के लिए ही इतनी उग्र यातनाओं और नरकों की परिकल्पना है। देहाभिमान-बुद्धि से पापी को दुःख भोगने पड़ते हैं।

**वेद-रहस्य के सम्बन्ध में ऋतुध्वज आख्यान**—ऋतुध्वज मिथिला के राजा थे उन्होंने उपासना, कर्म एवं ज्ञान में लगे हुए अनेकों ऋषियों से वेद का तात्पर्य पूछा। ब्रह्मर्षियों ने दान, तप, तीर्थ, यज्ञ, वैराग्य, ज्ञान-विज्ञान और विविध व्रत, स्वाध्याय, वर्ण एवं आश्रम में अलग-अलग वेद-तात्पर्य बतलाया। इससे ऋतुध्वज का शंका-समाधान न हो सका तो वे भरतमुनि से मिले। भरतमुनि ने उनकी शंका का समाधान करते हुए कहा कि भोगों की क्षणिक सुखवाली प्रवृत्ति से विरत हो सच्चिदानन्द तत्व को साक्षात्कार विधि का निरूपण ही वेद का रहस्य है। अभेदबुद्धि से किये गये स्वधर्म आचरण से ज्ञान-प्राप्ति काशीक्षेत्र में अत्यन्त सुलभ है।

**वर्णानुसार अपराधों का वर्णन**—विष्णु से शंकर ने समस्त अपराधों के विषय में पूछा तो उन्होंने बतलाया कि—ब्राह्मण का अपने धर्म द्वारा आचरण न करना, क्षत्रियों का प्रजा से दूर, रण से भय और पाप से भय न करना, वैश्यों का व्यवसायादि में बेइमानी करना, शूद्रों की द्विजों को उपेक्षा, मद्य-मांसादि का व्यसन अपराध है। माया से लोक-वंचना और तामसी वृत्तियों को त्यागकर सभी वर्ण के लोग काशी में रहकर मुक्तिलाभ कर सकते हैं।

**काशीसेवन का आध्यात्मिक रहस्य**—इसके विषय में भगवान विष्णु ने शंकर जी से कहा कि-धन, स्त्री, पुत्र से विरत होकर काशीनिवास करना अतिउत्तम होता है। काशीनिवास के लिए सदाचार सम्पन्नता, भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा की भक्ति एकमात्र इष्ट है। धर्माचरण, गुरु एवं समस्त सेवा आवश्यक है। शास्त्रश्रवण करने के बाद जो मूर्ख पापरत ही रहते हैं उनको कभी भी मोक्ष नहीं मिलता। अतः मन पर पूर्णनिग्रह आवश्यक हैं।

## चतुर्विंशोऽध्यायः

**विघ्नज्ञान के विषय में सनातन ब्राह्मण का आख्यान**—सनातन नाम का ब्राह्मण वेद-शास्त्रों का ज्ञाता एवं सुखी गृहस्थ था। वह सर्वदा काशी माहात्म्य सुना करता था। उसके तीन पुत्र और कई पौत्र थे। दुर्भाग्यवश वे सभी कलह, जुआ, पाखण्ड

आदि कुकर्मों में लगे रहते थे। एकदिन उनका ज्येष्ठ पुत्र सिनी जिसे ज्योतिष शास्त्र का कुछ ज्ञान था सुबाहु राजा के अन्तःपुर की स्त्रियों की हस्तरेखापरीक्षा करने के बहाने राजमहल में गया और वहाँ की राजपत्नी से व्यभिचार करने लगा। राजा ने उसे रंगेहाथ पकड़कर पिटाई की और उसके पिता सनातन को बुलाकर सम्पूर्ण घटना बताने का उलाहना देते हुए कहा कि—हे ब्राह्मण मैं बिना दण्ड दिये तुम्हें और तुम्हारे परिवार को देश निकाला देता हूँ।' उस ब्राह्मण ने काशीवास के लिए आतुरता दिखलाते हुए अपने पुत्रों को छोड़ने की प्रतिज्ञा की। उसी समय अपशब्द कहती हुई उसकी पत्नी आयी। इन सभी घटनाओं से दुःखी होकर सनातन ने अपनी पत्नी को छोड़ने की बात कही।

वह ब्राह्मण काशी में नियम-धर्म से जीवनयापन करने लगा। एक दिन उनके भाई-बन्धु उसे पकड़कर राजा के समक्ष ले गये और अपने हिस्से का भाग मांगने लगे। राजा सुबाहु ने सनातन को कुटुम्बियों को धन देने का आदेश दिया। सनातन समस्त धन कुटुम्बियों को बांटकर काशीवास करने लगा। उस काशीवासी जीवन से अपना भविष्य सुधाकर मोक्ष को प्राप्त किया। अतएव काशीवास में स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी आदि के लिए मोह तथा धनप्राप्ति लोभ बाधक है। इन्हें छोड़कर ही मनुष्य परम-पद पा सकता है।

**काशीवासी व्यक्ति के लिए दुःख का कारण**—सूत जी ने बतलाया कि काशी में पापी लोग यह नहीं सोचते कि एक बार भी छोटा-बड़ा किया गया पाप अक्षम्य होता है। वे केवल उत्पन्न होने वाली बाधाओं का कारण जानना चाहते हैं, यही उनके दुःख का कारण है। अतएव जो मनुष्य शान्तचित्त से सांसारिक जंजालों को छोड़कर निःस्वार्थ भाव से काशीवास करते है उन्हें मोक्ष मिलता है।

## पञ्चविंशोऽध्यायः

**काशीवासियों के लिए कर्तव्य एवम् धर्म-निर्देश**—सूत जी ने कहा कि काशी में निवास करने वाले पापीगण यह विचार नहीं करते कि काशी में एक बार भी किया हुआ छोटा-बड़ा पाप उनके लिए अनिष्टकारी है। वे यही सोचते हैं कि विघ्न का कारण कुछ और है जबकि यही प्रवृति उनके दुःख का एकमात्र कारण है। अतः जो मनुष्य माया-मोह को त्यागकर शुद्ध मन से काशी का सेवन करता है, उसे परमपद की प्राप्ति होती है। इसके प्रतिकूल जो मनुष्य पाखण्ड का आचरण करते हैं, वे स्वयं को ठगते हैं।

**कामीपुरुषों के उद्धार का उपाय**—हिरण्य नामक शिवभक्त अत्यन्त अभिमानी था, पाप आचरण करने के कारण उसे पिशाच योनि मिली। इसकी कथा यह है कि वह

धर्मेश्वर के निकट एक मठ में रहता था। वह जितेन्द्रिय और तपोनिष्ट था। उसकी वार्ता धर्मनिधि नामक ऋषि से हुई। धर्मनिधि ने जप, तप, शुद्धविद्या, योग, समाधि, दान को पूर्ण आत्मशुद्धि का कारण बताया। इस पर पाशुपत ने अपनी प्रतिकूल विचार-धारा व्यक्त की। प्रतिक्रियास्वरूप धर्मानिधि ने कहा कि तुम ब्रह्मज्ञानी होने का पाखण्ड मत करो, नौकर-चाकर तुम्हारे पास हैं; गाय, भैंस का व्यापार करते हो, धन-धान्य का संग्रह करते हो, रजोगुण युक्त हो फिर भी तुम अपने को ब्रम्ह कहते हो। इस पर पाशुपत ने कहा कि यह सब वस्तुएँ तो कल्पित हैं, स्वयं में पूर्ण होना ही परमार्थित बुद्धि है। पाशुपत ने धर्मनिधि की एक न सुनी और कुकृत्यों को करता रहा। एकदिन उच्छ्वास लेते-लेते उसका प्राणान्त हो गया। कालभैरव ने उसे बत्तीस हजारवर्ष तक भैरवी यातना दी। उसके पश्चात् कालराज ने कहा कि जो मनुष्य जानते हुए भी काशी में धनसंचय एवम् मिथ्यापाखण्ड आदि पाप करता है उसका परिष्कार वेदों और पुराणों में भी नहीं मिलता।

अतः मनुष्य को चाहिए कि काशी में धनसंचय न करे और यदि करे भी तो देवालय आदि के निर्माण जैसे शुभकर्मों में लगा दे। काशी में दान का संकल्प करने पर तुरन्त दे देना चाहिए अन्यथा पश्चात् में कई गुना देना पड़ता है।

**मृत्यु के बाद ऋणी-मनुष्यों की गति**—सूतजी ने कहा सत्याशीष नामक एक सदाचारी वैश्य रहता था। उसके दो लड़के थे, एक कल्याण दूसरा धनप्रिय। एकदिन अपना समस्त धन दोनों बेटों में बाँटकर काशीवास करने लगा। कल्याण ने अपना धन खानेपीने और याचकों में बाँटकर खर्च कर दिया। कुछ दिनों पश्चात् वह ऋणी हो गया। कालान्तर में दोनों की मृत्यु हो गयी। कल्याण का मोक्ष मिला और धनप्रिय को भैरवी यातना। इसलिए काशी में निवास करके धन का सदुपयोग करना चाहिये।

## षट्विंशोऽध्यायः

**मनुष्य के स्वर्ग-नरक प्राप्ति का उपाय**—सूतजी ने कहा सत्संग भगवद्गुणानुवाद श्रवण, कीर्तन, व्रतोपवास रखने वाले मनुष्य सदैव विराम द्वारा मोक्ष प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य कटुभाषी होते हैं, वे भैरवी यातना में पड़ते हैं। परनिन्दक, पापी पापकर्मों में प्रवृत्त, अस्थिरमन वाले नरक को प्राप्त करते हैं।

**काशी में परनिन्दा फल के सम्बन्ध में विष्णुशर्मा का आख्यान**—यज्ञशर्मा मुनि ने अपने पुत्र विष्णुशर्मा को वेद और उपनिषद से पारंगत कर दिया। विष्णुशर्मा ने पिता से पूछा कि—मेरे लिए और क्या आदेश है ? पिता यज्ञशर्मा ने कहा कि पुरुषार्थ फल देने वाली

एक ऐसी महाविद्या है जिसके द्वारा मनुष्य मोक्षगामी हो जाता है। सम्पूर्ण प्राणीमात्र में परमात्मा का निवास है। जो मनुष्य उसकी निन्दा करता है या उसे दुःख देता है वह नरकगामी होता है।, अतः सम्पूर्ण विश्व को देवमय एवम् शिवमय मानकर किसी की निन्दा या किसी को पीड़ा नहीं देनी चाहिए।

**मिथ्यावादियों के पापों का स्वरूप**—विष्णुशर्मा ने पूछा कि जो मिथ्यावादी हैं उनके पापों का स्वरूप कैसा होता है? सूतजी ने कहा मिथ्यावादी कई प्रकार के होते हैं परन्तु वेद द्वारा बतलाया गया जो मिथ्यावाद है वही माननीय है, उससे सदा दूर रहना चाहिए। जो व्यक्ति सदैव झूठ बोलता है, उसे कभी मोक्ष नहीं मिलता। ऐसा मनुष्य रौरव नरकगामी होता है। अन्तिम समय भी झूठ नहीं बोलना चाहिए क्योंकि किसी भी समय जूठ बोलने से अधोगति मिलती है। पुराणों में झूठ बोलने का निषेध किया गया है, झूठ बोलने से पाप बढ़ता है और पूण्य का क्षय होता है।
विष्णुशर्मा अपने पिता की आज्ञा मानकर निन्दा से मुंह मोड़कर असज्जनों का साथ छोड़कर पुराण प्रवचन में लग गया। सभी धर्मो में मिथ्यानिन्दा से बचने की बात कही गयी है। पुराणों के सुनने से पुरुषार्थ का मार्ग प्रशस्त होता है, शुभ-अशुभ का ज्ञान होता है जिसके कारण मनुष्य बुरे आचरणों से बच जाता है।

ऋषियों ने सूतजी से पूछा-योगी लोग अन्तर्दृष्टि से काशी रूपी देह को विमुक्त बताते हैं वे कैसे हैं?

सूतजी ने कहा—भोगों से विरक्ति लेकर काशी-सेवन से शुद्ध बुद्धि, निर्मल ईश्वरीय ज्ञान का आभास होता है। और अन्त में मनुष्य को मोक्ष मिलता।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराणस्थ तृतीयखण्डान्तर्गतम्

# काशीरहस्यम्

## प्रथमोऽध्याय

### मुनिसूतसम्वादवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

युगानि युगमानं च युगधर्माः सनातनाः।
युगेषु लोकचरितं श्रुतमस्माभिरादितः ।१।
पुनः कलियुगस्याऽस्य स्वरूपं वर्णयाऽऽदितः।
कलिनाऽधर्मभित्रेण वञ्चिता अपि सज्जनाः ।२।

सूत उवाच

संहृत्य सर्वं सुप्तोऽम्भस्यद्वयो हरिरव्ययः।
प्रबुद्धो बुधसंसेव्यस्तदा नाभेरजायत ।३।
आत्मानं च परं वाऽपि न वेत्ति स यदा महान्।
तदा भगवता प्रोक्तं मां भजस्वेति सत्तम! ।४।
तच्छ्रुत्वा शरणं गत्वा ननाम भुवि दण्डवत्।
जय देव! जगन्नाथ! न त्वां जानामि तत्त्वतः ।५।
प्रसीद! तात वरद! किं करोमि तवाऽऽज्ञया ।६।

श्रीभगवानुवाच

तात! मा ते व्यथा काचित्सृष्टिकर्मणि जायताम्।
कुरुष्व महतीं सृष्टिं द्विचतुर्लक्षणां शुभाम् ।७।

ब्रह्मोवाच

अज्ञस्य मम का शक्तिः सृष्टौ सर्ववरेश्वर ! ।
देहि सामर्थ्यमतुलं यथासृष्टिं प्रवर्धये ।८।

श्रीभगवानुवाच

वेदान् गृहाण द्रुहिणशक्त्या सह सुदुर्लभान् ।
वेदं दृष्ट्वा प्रवर्तन्तां न कदाचित्पराभवः ।९।

सूत उवाच

वेदान्प्राप्य ततो वेधाः ससर्ज विविधाः प्रजाः ।
स्थावरान् जंगमांश्चैवाप्यण्डजादिचतुर्विधान् ।१०।
भगवच्छक्तियुक्तस्य स्मरणेन जगत्त्रयम् ।
आविर्भूतमनायासाद्वेदं दृष्ट्वा प्रकुर्वतः ।११।
सृष्टिक्रमं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु परमर्षयः ।
यथाश्रुतं यथाज्ञातं यथा ब्रह्माऽकरोद्धरेः ।१२।
कृष्णाद्वैपायनात्साक्षाच्छ्रुतं जैमिनिनाऽपि च ।
वैशम्पायनपैलाद्यैः श्रुतं च ऋषिभिः पृथक् ।१३।
सनकादीन्ब्रह्मनिष्ठान्मरीच्यादींस्तु कर्मगान् ।
तद्द्वारा देवदैत्यांश्च ससर्ज जगदीश्वरः ।१४।
सत्यादीनि युगान्यादौ सृष्ट्वा धर्मान्विभक्तवान् ।
युगादिमध्यधर्मांश्च कलिधर्मान्पृथक्स्थितान् ।१५।
व्यभजद्देवदेवेशो लोकानुग्रहकाम्यया ।
सत्यमाहूय भगवानपृच्छत्त्वं निरुद्यमः ।१६।
कथमाशु वदस्वेति समयस्तव वर्तते ।१७।

सत्ययुग उवाच

न मन्मध्ये प्रवर्तन्ते विषयेषु पृथग्जनाः ।
सर्वे निवृत्तिधर्मज्ञाः सर्वे शान्ता हरिप्रियाः ।१८।
सर्वे सुमनसः प्राणदेहेन्द्रियपराङ्मुखाः ।
नियन्तव्याः कथं तेषु तेषु धर्मेषु सत्तमाः ।१९।

शान्तं निवृत्तं भगवत्प्रियं नरं न कर्मकालादिगुणाः प्रधर्षकाः।
अशान्तमार्त्तं भगवत्पराङ्मुखं निन्दन्ति देवाधिकृतोऽस्मदादयः।२०।

ब्रह्मोवाच

मृत्युलोकं विशस्वाशु त्वद्धर्माः संप्रवर्ततताम्।
काल एव शनैर्लोकान्प्रवर्तयति सर्वदा।२१।

युगेष्वपि च सर्वेषु सर्वान्तर्भाव एव हि।
भवत्यवश्यं सततं पुण्यापुण्यजनैः कृतः।२२।

सूत उवाच

रूपमाकृतिकर्मादियुगानां श्रूयतां द्विजाः।
यच्छ्रुत्वा युगरूपं च न रूपैरभिभूयते।२३।

सत्यं वैराग्यबहुलं ज्ञानवत्पूर्णविग्रहं।
यज्ञोपवीताक्षमालाप्रकोष्ठं ब्राह्मणप्रियम्।२४।

इत्यादिलिंगं सुभगं सत्यं प्राख्यापयत्प्रभुः।
ततस्त्रेताद्वापरं च कलिश्चेति युगत्रयम्।२५।

उवाच भगवान्वेधाः स्वव्यापारः प्रवर्त्यताम्।
त्रेताऽऽदृततनुः सद्भिर्जुह्वन्स्रुबकरो बृषः।२६।

धर्मप्रवर्तकश्चापि प्रियधर्मः प्रकीर्तितः।
द्वापरः खड्गखट्वांगपाणिः शरधनुर्धरः।२७।
लक्षणैर्लक्षितः शांतः पुण्यपापात्मकः कटुः।२८।

कलेः स्वरूपं शृणुताऽथ विप्रा! विवेकिनां शीघ्रफलप्रदं यत्।
विचारहीनाः प्रयतन्त्यबोधाः कलौ यतस्ते सुविचारहीनाः।२९।

पिशाचवदनः क्रूरः कलिः कलहवल्लभः।
वामेन शिश्नं दक्षेण जिह्वां धृत्वा ननर्त च।३०।
पाणिना पामरैस्तुल्यः पुण्यापुण्यविमिश्रकः।
ब्रह्मणोऽग्रे हसन् खिद्यन् रुदन्मुह्यन्नवस्थितः।३१।
स्मितपूर्वमुवाचैनं ब्रह्मा पद्मवरासनः।३२।

ब्रह्मोवाच

लिंगं जिह्वां दृढं धृत्वां किन्नृत्यसि कले ! मुहुः ।
गच्छ स्वकार्यपरमो भव भावेन भण्डवत् ।३३।

कलिरुवाच

मा मां प्रेषय सर्वेश ! सर्वोच्छेदकराकरम् ।
निरंकुशं निरानंदं निद्राकलह वल्लभम् ।३४।
परदारपरद्रव्यपरद्रोहपरायणम् । वंचकं दंभमात्सर्यभेदप्रिय जनप्रियम् ।३५।
एकांतयोगसंन्यासच्छलेनोदपूरकाः ।
आत्मानं च परं चापि वंचयंति मयि प्रभो ! ।३६।

ब्रह्मोवाच

पापात्मानस्त्वयि नराः पुण्यात्मानस्तथोज्झिताः ।
भविष्यन्ति जनाजीर्णाः सोद्यमाश्च शुभाशुभे ।३७।
त्वयि ये सावधानाः स्युः पुण्यभारकृतावनाः ।
स्वल्पमायुर्विदित्वा हि करिष्यन्ति स्वकं हितं ।३८।
तेषां त्वमेव साहाय्यं कुरुष्व मम शासनात् ।३९।

कलिरुवाच

विभेमि शत्रुवर्गेभ्यः स्थितिर्मम सुदुर्लभा ।
यैः कृता भारते खण्डे कथं यास्यामि तद्वद ।४०।

ब्रह्मोवाच

के शत्रवस्तव किं शत्रुत्वं कृतंच तैः ।
त्वं कालात्मा दुराधर्षो दुर्ज्ञेयश्चापि पंडितः ।४१।

कलिरुवाच

देव देव श्रृणुष्वाद्य शत्रुवर्गं ममानघ ।
उपद्रुतोऽहं न सुखं प्राप्स्ये निर्दयैरहम् ।४२।
शिवनामहरेर्नाम गंगा वाराणसी पुरी ।
सत्संगदानतीर्थादिकथा विष्णोः शिवस्य च ।४३।
अन्यान्यपि च पुण्यानि मम क्षोभकराणि च ।
सन्ति वेदेशं किमहं वदामि तव सन्निधौ ।४४।

यदा शान्तः क्षणं कोऽपि भवति प्राकृतोऽपि हि ।
तदा मम भयं भूरि जायते दांभिकादपि ।४५।
व्यग्रान् व्यापृतचित्तांश्च पुत्रदारपरीवृतान् ।
दृष्ट्वा हृष्यामि भगवन्वेदसिद्धान्तविद्विषः ।४६।
जितेद्रियैः शिवपरैः रागद्वेषविवर्जितैः ।
सह न स्थातुमिच्छामि धीरैर्धैर्यविवर्धकैः ।४७।
उन्मूलितुं मामिच्छन्ति विभेमि तदनारतम् ।

ब्रह्मोवाच

तव प्रभावात्तेषां हि प्रचारो विरलः सदा ।४८।
भविष्यति न संदेहो गच्छ तिष्ठ यथासुखम् ।४९।

कलिरुवाच

मम तेषां स्वभावस्तु विरुद्धः केन हेतुना ।
उन्मूलितुं मामिच्छन्ति ते तु तानहमप्यहो ।५०।

ब्रह्मोवाच

त्वं कालमल इत्युक्तो मले शुद्धिर्न विद्यते ।
शत्रवो निर्मलास्ते तु ततः कलह एव च ।५१।
यदा यः प्रबलस्तिष्ठेत्तदा विजयते परम् ।
तेषां प्रचारो विरलस्तव प्रौढो भविष्यति ।५२।
विवेकिनां समीचीनस्त्वं विचारवतां सदा ।
धीराः खलु कलौ जन्म वाञ्छन्ति भगवत्पराः ।५३।

कलिरुवाच

केनांशेन समीचीनस्त्वं प्रोक्तं भवता मम ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि यास्यामि च तवाऽऽज्ञया ।५४।

ब्रह्मोवाच

धैर्यमालम्ब्य यैः शुद्धैः शुद्धिः संपादिता नरैः ।
न तेषां त्वत्कृतो दोषः काश्यां निवसतामपि ।५५।
न तेषां कलिदोषोऽस्ति लोभादिजनितः क्वचित् ।
ये भजन्ति महात्मानं शिवं वाऽपि जनार्दनम् ।५६।

गुरुसेवा पुराणस्य श्रवणं चेन्नृणाम्भवेत् ।
सर्वाणि साधनान्येव भवन्ति हि शनैः शनैः ।५७।
सुकृतैः शास्त्ररता गुरुसेवा च जायते ।
सारासारविवेकस्तु ततो भवति तत्त्वतः ।५८।
आत्मसारं विदित्वाऽज्ञः काशीं संसेवते कृती ।
काश्यां संसेवितायां तु लभ्यते शास्त्रजं पदम् ।५९।
अतः सुकृतहीनानां न शर्म तु कलेर्भवेत् ।
भयात्प्रमत्तो न भवेत्कलौ सुकृततत्परः ।६०।

कलिरुवाच

गुरुशब्दस्य तात्पर्यं वद लोकेश्वरेश्वर ! ।
को गुरुः किंच वा तस्य स्वरूपं कस्य वा गुरुः ।६१।

ब्रह्मोवाच

गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः ।
उकारो विष्णुरव्यक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः ।६२।
गणेशो वाऽग्निना युक्तो विष्णुना च समन्वितः ।
वर्णद्वयात्मको मन्त्रश्चतुर्वर्गफलोदयः ।६३।
गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुरेव परः शिवः ।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।६४।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परन्तत्त्वं तस्माद् गुरुमुपाश्रयेत् ।६५।
हरौ प्रसन्नेऽपि हि वैष्णवा जनाः सम्प्रार्थयन्ते गुरुभक्तिमव्ययाम् ।
गुरौ प्रसन्ने जगतामधीश्वरो जनार्दनस्तुष्यति सर्वसिद्धिदः ।६६।
गुरुम्भजन् शास्त्रमार्गान्प्रवेत्ति तीर्थं व्रतं योगतपांसि धर्मान् ।
आचारवर्णादिविवेकधर्मान् ज्ञानं परं भक्तिविरागयुक्तम् ।६७।

कलिरुवाच

देवदेव ! महच्चित्रं सर्वधर्ममयो गुरुः ।
धर्मादिसकलाध्यक्षः शिव एव गुरुः कथम् ।६८।

ब्रह्मोवाच

गुरुम्विना न श्रवणं भवेत्कस्याऽपि कुत्रचित् ।
शास्त्रस्य यस्य श्रवणान्मुच्यते त्वत्कृताद्भयात् ।६९।
अत्राऽर्थे सम्प्रवक्ष्यामि कथां सर्वार्थदायिनीम् ।
यां श्रुत्वा गुरुभक्त्या च धर्मेण च युतो भवेत् ।७०।
अस्ति गोदावरीतीरे मुनेराङ्गिरसः शिवः ।
आश्रमः सर्वविख्यातः पुण्यद्रुममृगाकुलम् ।७१।
ब्रह्मक्षत्रर्षयस्तत्र तप्यन्ते तप उत्तमम् ।
तन्मध्ये वेदधर्मा च ऋषिः पैलात्मजः कृतिः ।७२।
तस्य शिष्यास्तु बहवो वेदवेदाङ्गपारगाः ।
तेषां सन्दीपको नाम शिष्यो गुरुपरायणः ।७३।
श्रुत्वा शास्त्रपुराणानि निगमान् प्राप्य सद्गुरोः ।
नैष्ठिको न्यवसद् गेहे गुरोः सेवार्थमादृतः ।७४।
एकदा तत्र महता स्वकार्यार्थं महात्मना ।
आगच्छ सन्दीपकेति गुरुणाऽऽहूत एव च ।७५।
आगतो जय जीवेति वदन् शीघ्रतरं महान्

वेदधर्मोवाच

मम शिष्येषु वत्स ! त्वं मयि प्रीतिसमन्वितः ।७६।
विचार्य वद मत्पृष्टं यदि कर्तुं क्षमो ह्यसि ।
पूर्वजन्मसहस्त्रेषु यान्यघानि कृतानि मे ।७७।
तानि सर्वाणि हि शनैः क्षालितानि तपोबलात् ।
वाक्कयमानसानीति मोक्षविघ्नकराणि च ।७८।
कानिचित्तेषु शिष्टानि भोक्तव्यानि मतिर्मम ।
अभूक्तानि विनश्यन्ति न कदाचिदपि ध्रुवम् ।७९।
पापानि सर्वशास्त्रेषु विहितेयं स्थितिः परा ।
वाराणस्यां स्वल्पमपि प्रायश्चित्तं महाघहृत् ।८०।
पापद्वयस्य युगपद्भोग आरभ्यते मया ।
शुश्रूषा चेत्त्वया कार्या वद वत्स ! महामते ।८१।
अथवाऽन्यं वृणे शिष्यं सेवार्थं सोऽहमादरात् ।८२।

दीपक उवाच

आहूतानि समायान्ति प्रेरितानि व्रजन्ति च ।
पापानि पापदहन ! किमर्थं दुःखसंग्रहः ।८३।

वेदधर्मोवाच

जीवता मनुजेनेह प्रायश्चित्तं कृतं न चेत् ।
तस्य बुद्धिं भजन्त्येव पापानि विविधानि च । ८४ ।
देवान् ऋषीन् मनुष्यांश्च न त्यजन्ति कृतानि यत् ।
तस्मात्पापक्षयायाऽऽशु यतितव्यं विजानता । ८५ ।

दीपक उवाच

करिष्यामि गुरोः सेवां यथाशक्ति विधानतः ।
आज्ञापयन्तु गुरवो ह्यसंकोचेन चेतसा । ८६ ।

वेदधर्मोवाच

अहं कुष्ठी भविष्यामि चक्षुर्हीनश्च सुव्रत ! ।
मच्छरीरं पालयस्व वर्षाणामेकविंशतिः ।८७।

दीपक उवाच

विद्यमाने मयि विभो ! कथमेवम्प्रभाषसे ।
कुष्ठी कुरुष्व मामद्य तव पापर्थमेव च ।८८।
आरोप्यतां मच्छिरसि पापन्त्वं कुशली भव । ८९ ।

वेदधर्मोवाच

न पुत्राय न शिष्याय पापं यच्छन्ति केचन ।
पापभोगस्तु कर्त्तारं बाधतेऽन्यं न कुत्रचित् । ९० ।
ततो मयैव भोक्तव्यं त्व शुश्रूषापरो भव ।
भोगादपि महत्कष्टं शुश्रूषायाम्भविष्यति ।९१।
नय मां काशिकां शुद्धां पुरीं देवस्य धूर्जटेः ।
समाप्य सर्वं प्रारब्धं मोक्षं प्राप्स्यामि शाश्वतम् । ९२ ।

दीपक उवाच

वश्यमेव गन्तव्यं क्षेत्रं देवस्य धूर्जटेः ।
मया त्वच्चरणाम्भोजसेवकेन शिवार्थिना ।९३।

ब्रह्मोवाच

ततस्तौ सहितौ विप्रौ काशीं गत्वा स्थितौ सुखम् ।
मणिकर्ण्युत्तरे कूले कम्बलेश्वरसन्निधौ । ९४ ।
स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य विश्वेशं विश्वया सह ।
प्रारब्धभोगमशुभं गुरुर्भोक्तुमुपक्रमे ।९५।
कुष्ठरोगं समासाद्य नेत्रान्धत्वमपि प्रभुः ।
स्थितः परमदुःखार्त आर्तानां दुःखमोचकः ।९६।
स दीपकोऽकरोत्तस्य सेवां श्रद्धासमन्वितः ।
पूयविण्मूत्रविष्ठाश्च सोपसारयतिद्विजः ।९७।
भिक्षित्वा चान्नमादाय भोजयेत्सगुरुर्गुरुम् ।
जितेन्द्रियोऽपि सऋषिर्वेदधर्मा जितेन्द्रियः ।९८।
जातो रोगवशात्साधुरसाधुत्वमुपागतः ।
कदाचित्सर्वमानीतमन्नम्भुङ्क्ते कदाचन ।९९।
स्वल्पमश्नाति स क्रुद्धो मिष्टन्नेति वदन्मुहुः ।
कदाचिद्वत्स तातेति कदाचित्पापपूरुषः। ।१००।
वदत्यनुचितं सर्वं महारोगग्रहान्वितः ।
पापेनैव नृणां वाणी भवेत्कटुकभाषिणी ।१०१।
दैन्यमात्सर्यपरमा शुभाशुभविवर्जिता ।
दैन्यस्य दुःखदस्याऽत्र महापातकरूपिणः ।१०२।
अन्यानि दुःखपापानि कलान्नार्हन्ति षोडशीम् ।
निरन्तरं वेदधर्मा शिष्यं धर्मपरायणम् । १०३ ।
दैन्यग्रस्तो वदत्येव देहि देहि क्षणे क्षणे ।
सर्वं सोढ्वा श्रद्दधानः सेवते गुरुमीश्वरम् ।१०४।
यथा यथा मनस्तस्य मिष्टान्नादिषु सम्पपृहम् ।
तथा तथाऽऽशु भिक्षित्वा प्रयच्छति स दीपकः ।१०५।
न तीर्थयात्रा न च देवयात्रा स्वदेहयात्राऽपि न लोकयात्रा ।
अहर्निशं ब्रह्महरीशबुध्या गुरुम्प्रपन्नो न हि सेव्यमन्यत् ।१०६।
पश्यत्यमुं सर्वगतं जनार्दनं गुरुं गरिष्ठं स तु दीपकः कृती ।
श्रुतिस्मृतीशः खलु पार्वतीशः स एव साक्षादिति दीपकः कृती ।१०७।

भिक्षितम्बहुतरं न चेद्भवेत्स्वल्पमेव किल भक्षयत्यसौ ।
न स्वपित्यपि कदापि दीपकः सावधानहृदयः सदार्थदृक् ।१०८।
यद्यत् गुरुः प्रार्थयते शुभाशुभं तत्तत्समानीय समर्पयत्यसौ ।
एकाग्रबुद्धया परमादरेण स्नेहेन कालस्य विवर्जनेन ।१०९।
न निर्घृणो नाभिवदत्यनन्वित नासूयकः खेदयुतोऽपि नो गुरौ ।
न द्वैतवादी न विरागबुद्धिर्दास्ये प्रवृत्तो न परम्बिचिन्तयेत् ।११०।
कदाचिदेकाग्रमनाः स दीपकः सेवापरो व्यजनासक्तहस्तः ।
ददर्श विश्वेश्वरमग्रतः स्थितम्वरं गृहाणेति गृणन्पुनः पुनः ।१११।

विश्वेश्वर उवाच

गुरुभक्त ! महाप्राज्ञ ! वरम्ब्रूहि सनातनम् ।
गुरुभक्त्या न यावत्त तोषितोऽस्मि जगत्प्रभुः ।११२।

दीपक उवाच

मृत्युञ्जय ! महादेव ! प्रसन्नोऽसि यदीश्वर ! ।
गुरुम्पृष्ट्वा पुनर्वक्ष्ये नाऽहं जानामि किञ्चन ।११३।
इत्युक्त्वा गिरिशं दीपः श्रीगुरुम्पर्यपृच्छत ।
अविमुक्तेश्वरो देवो ददाति वरमुत्तमम् ।११४।
श्रीगुरोराज्ञया देवम्प्रार्थये रोगनाशनम् ।
यद्वा यन्मन्यसे कार्यं भगवंस्तद्वदस्व मे ।११५।

वेदधर्मोवाच

न प्रार्थ्यो रोगनाशाय देवदेवस्त्वयाऽनघ ! ।
मत्कृते पातकं स्वीयं मुक्त्वा शुद्धो न चान्यथा ।११६।
देहभोगनिवृत्यर्थं को देवम्प्रार्थयेच्छिवम् ।
संसाररोगदहनं मनोमलविनाशनम् ।११७।
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्य गत्वा देवस्य सन्निधौ ।
प्रणम्य न वर देव ! गृह्णामीत्युक्तवान् वटुः ।११८।
पुनः पुनः शिवेनोक्तो न गृह्णामि वरम्वरम् ।
शङ्करोऽपि निजं स्थानं जगाम सगणस्तदा ।११९।
शङ्करोप्युमया सार्द्धं स्थित्वा निर्वाणमण्डपे ।
उवाच सर्वदेवाना शृण्वतां मधुसूदनम् ।१२०।

नारायणारविन्दाक्ष ! ममाऽप्यानन्ददायक ! ।
गुरुभक्तिर्विचित्रा मे दृष्टा सन्तोषकारिणी ।१२१।

निष्णुरुवाच

को गुरुः कश्च वा शिष्यः कुत्र दृष्टो वृषध्वज ! ।
कीदृशी वा गुरोर्भक्तिः श्रोतव्या सविशेषतः ।१२२।

विश्वनाथ उवाच

शृणुष्व महदाश्चर्यमेकाग्रेण जनार्दन ! ।
बालेन दीपकेनाऽहमाकृतो गुरुभक्तितः ।१२३।
गोदावरीतीरवासी वेदधर्मा महातपाः ।
काशीमाहात्म्यविच्छान्तो विरक्तः सर्ववस्तुषु ।१२४।
तस्य दीपकनामाऽस्ति शिष्यः शासितविग्रहः ।
एतादृग्गुरुभक्तस्तु न दृष्टो न मया श्रुतः ।१२५।
गतो वरानहं दातु न गृह्णाति गुरुप्रियः ।
प्रलोभितोऽपि बहुधा पुरुषार्थवरैरपि ।१२६।
निश्चयग्रस्तहृदयो नान्यत्पश्येद्गुरुम्विना ।
गुरवे देहमारोप्य तद्धीनः करोत्यलम् ।१२७।
सेवां सकलशास्त्रेषु सम्मतां पुरुषोत्तम ! ।
त्वाञ्च माञ्च सुरान् सर्वान् पितॄं स्तीर्थवृषद्विजान् ।१२८।
सर्वम्पश्यति सर्वात्मगुरौ गुरुतरोऽभकः ।
किम्बहूक्तेन मे विष्णो द्रष्टुं योग्यः स दीपकः ।१२९।
दीप एव भवध्वान्तनाशको गुरुवल्लभः ।
धर्मज्ञानादिसकलं गुरौ सर्वम्विभाव्य सः ।१३०।
भक्तिङ्करोति विविधां गुरुपादाब्जयोः कृती ।
इति श्रुत्वा शिवमुखाद्विष्णुः सकलधर्मविन् ।१३१।
गुरुशिष्यसमीपं स गतो ह्यब्जकाब्रवल्लभः ।
दृष्टवान्दीपकं विष्णुः सेवन्तं गुरुमात्मनः ।१३२।
यथोक्तं शङ्करेणाऽऽशु ददर्शाऽग्रे ततोऽधिकम् ।
आहूय चोक्तवान्देतो वरम्ब्रूहि निजेच्छया ।१३३।

दीपक उवाच

वासुदेव ! नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ! ।
कयाभक्त्या प्रसन्नोऽसि मह्यं बालाय तद्वद ।१३४।
त्वामात्मतत्त्वं जगतामधीश्वरं भजन्ति ते साधनकोटिभिर्नराः ।
न त्वाम्प्रपश्यन्त्यपि सर्वगं हरे ! तेऽपि स्वमात्मानमधोक्षजम्परम् ।१३५।
अहन्त्वनाथः खलु बालबालो यावज्जनिस्मरणं नाऽपि ते मे ।
तथाऽपि दातुं प्रवरान् वरप्रदः समागतोऽसीति महद्विचित्रम् ।१३६।

श्रीविष्णुरुवाच

गुरुभक्त्या प्रसन्नोऽस्मि श्रद्धया च दमेन च ।
गुरुभक्त्या मया पूज्याः पालनीयाः प्रयत्नतः ।१३७।

दीपक उवाच

वेदवेदान्ततर्कांश्च पठित्वा सुविचारितम् ।
अयमेव परो देवो ह्ययमेव परन्तपः ।१३८।
अयमेव परन्तीर्थं यत्प्रसादान्मयेक्षितम् ।
ज्ञानं सर्वात्मकं शुद्धं परमानन्ददायकम् ।१३९।
अतो गुरुम्विहायान्यम्प्रार्थयं न कथञ्चन ।
यदि देयो वरो मह्यं गुरुभक्तिम्प्रयच्छ मे ।१४०।
गुरुस्वरूपं जानामि यथा तदुपदिश्यताम् ।१४१।

श्रीविष्णुरुवाच

ज्ञातं त्वया निजगुरोः स्वरूपम्ब्रह्मदम्मुने ! ।
तथापि वक्ष्ये वात्सल्यात्तव तात ! सुखप्रदम् ।१४२।
सद्बुद्धिं लौकिकीं यस्तु प्रयच्छति समानभाक् ।
यस्तु धर्मोपदेष्टा स्यात्स गुरुस्तत्त्वतोऽधिकः ।१४३।
वेदान्यः पाठयेत्साङ्गांस्तोऽपि न विशिष्यते ।
वेदार्थरूपकस्तस्मात्ततोऽपि मक चिन्तकः ।१४४।
मत्स्वरूपं यतः शुद्धम्प्राप्यते श्रवणाद्यतः ।
स्वयं ज्ञात्वा श्रावयति स गुरुस्त्वहमेव हि ।१४५।
कामादिदोषबहुलं मनस्त्वाशीविषोपमम् ।
न विमुञ्चति दौर्जन्यं नरके पातयत्यपि ।१४६।

तच्छोधयति यः शास्त्रैः पुराणैर्मलदारुकैः ।
ततः परः परो देवः कोन्योऽस्ति जगतीतले ।१४७।
शुभाशुभ दर्शयति कृत्यञ्चाकृत्यमेव च ।
मार्गामार्गौ विरागादि रहस्यं सम्प्रकाशयेत् ।१४८।
अयेमेवानुग्रहोऽयमयमेवपरो वरः ।
अयमेव परः स्वार्थो यद्गुरुः सेव्यतेऽनिशम् ।१४९।
यदा मम शिवस्याऽपि ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य हि ।
अनुग्रहो भवेन्नृणां सेवते सद्गुरुन्तदा ।१५०।

दीपकउवाच

महावरस्त्वया दत्तो गच्छ देव यथासुखम् ।
कृतार्थोऽस्मि गुरुं ज्ञात्वा त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ! ।१५१।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो विष्णुः स गुरुं पर्यतोषयत् ।
आहूतश्चैव गुरुणा श्रुत्वा सम्वादमभ्दुतम् ।१५२।
दीपको गुरुणा पृष्टः किमुक्तं स्वामिभिः शुभम् ।
वत्स ! दीपक केन त्वं सम्वादं कृतवानसि ।१५३।
किम्वा प्राप्तं त्वया तात निवेदय ममाऽग्रतः ।
इति पृष्टः सगुरुणा शिष्यः प्राह कृताज्जलिः ।१५४।

दीपक उवाच

विष्णुनाऽनुगृहीतोऽस्मि शिवेन च सुरैरपि ।
वरार्थं को वरो याच्यः किं वरेणावरेण च ।१५५।
अयमेव वरोऽस्माकं तवपादाम्बुजार्चनम् ।
सर्वदा मम सिध्येच्चेच्छ्रद्धया त्वत्प्रसादतः ।१५६।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गुरुं शिष्यस्तत्सेवायां परोऽभवत् ।
गुरुः प्रारब्धकदनात्तीर्त्वा सर्वाङ्गसुन्दरः ।१५७।
अभवद्धर्मपरमः कृतार्थः काशिसंश्रयः ।
दीपकम्प्राह हृष्टः सन्क्रोधादिमलवर्जितः ।१५८।

वेदधर्मोवाच

तीर्णोऽहं कर्मपाशाद्धि कृच्छात्प्रारब्धसञ्ज्ञितात् ।
संसारादपि तीर्णोऽहं काशिवासफलाश्रयः ।१५९।

न काशिकायां पतितोऽपि धर्मकृत् दुःखं समाप्नोति मम प्रसादात् ।
इति प्रतिज्ञा जगदीश्वरस्य महानुभावस्य शिवस्य नित्या ।१६०।

काश्यां प्रदीपप्रभया प्रकाशितः पापान्धकारः खलु नाशमेति ।
विश्वेशहोम्दवया सुविद्यया महात्मनां पुण्यकृतां कृतात्मनाम् ।१६१।

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते तृतीयभागे
काशीरहस्ये प्रथमोऽध्यायः ।१।

# अथ द्वितीयोऽध्यायः

## शिष्याय वरप्रदानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कदाचित्सुप्रसन्नोऽभूद्वेदधर्मा महामतिः ।
शिष्यायसुविनीताय वरदानमचिन्तयत् ।१।

वेदधर्मोवाच

दीपकाऽऽगच्छ भद्रन्ते वरम्वरय मुक्त ! ।
त्वयाऽहं तोषितः सम्यक् सेवया चाऽनयाऽनघ ।२।
एवनेकाग्रचित्तानां श्रद्धयावृषसेविनाम् ।
मृदःसर्वामहाभागसिद्धयोऽष्टौ भवन्तिहि ।३।
नदेवाः पर्वताग्रेषु न देवो विष्णुसद्मनि ।
देवश्चिदानन्दमयो हृदि भावेन दृश्यते ।४।
यत्र कुत्र दृढा भक्तिर्यदा यस्य महात्मनः ।
तत्र तत्र महादेवः प्रकाशमुपगच्छति ।५।
अहो तात ! महाभाग ! प्रसन्नोऽहं तथाऽनघ ! ।
येन स्वचित्तकुहरात्साधिताः सिद्धयः शुभाः ।६।

दीपक उवाच

सन्तोषेण तवाऽयाहं कृतार्थः सद्वरैर्युतः ।
जातोऽस्मि भगवंश्छुद्धस्त्वत्सेवक इति श्रुतः ।७।
किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोऽहमाज्ञायति चेद्गुरु ।
पृच्छामि सन्दिग्धपदं परमाश्चर्यकारणम् ।८।

गुरु उवाच

पृच्छ दीपकभद्रन्ते नाऽवक्तव्यं त्वयि क्कचित् ।
यस्यते गुरुभक्त्यैवदेवदेवाः प्रसाधिताः ।९।

शिष्य उवाच

त्वं साक्षात्तपसाम्मूर्तिर्धर्मवेत्ता यथा मनुः ।
पैलपुत्रो भाष्यकर्ता वेदार्थाचारचञ्चुरः ।१०।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वज्ञपरिपूजितः ।
ब्रह्मविद्देहनेहादिममतारहितः त्वदृक् ।११।
त्वत्पादाब्जरजोभिर्मा पूतं विषयवासनाः ।
नस्पृशन्तिदुराधर्षाः सूर्यन्तु मिहिकात्यथा ।१२।
यत्र त्वं तत्र तीर्थानि तत्र देवा महर्षयः ।
निवसन्ति सदा ब्रह्मन् ! काशीं किं त्वमिहागतः ।१३।

गुरु उवाच

आदौ त्वमेवचात्मानं पश्य वत्स ! विचार्य च ।
बहुकालं वहिः सेवा कृता ते मम सुव्रत !। १४।
देवान् कश्चित्तो दृष्टाः मे वया दीर्घऽयापि हि ।
काश्यां स्वल्पेन कालेन दृष्टो देव उमापतिः ।१५।
लक्ष्मीपतिरपि प्रीतः पश्य क्षेत्रमहीं शुभाम् ।
अन्यत्र यः कृतो धर्मः स साङ्गः श्रद्धयाऽन्वितः ।१६।
अनेककालसम्पाद्यः स सिद्धोऽत्र क्षणाद्भवेत् ।
वर्षायुतसहस्राणिये सेवन्ते हरिं हरम् ।१७।
तेऽत्र क्षणात्प्राप्नुवन्ति वत्स ! त्वमिव धार्मिकाः ।१८।
काश्यां कृतं स्वल्पमपि ध्रुवं स्यात्पुण्येतरत्पुण्यमपि स्वभावात् ।
शिवः शिवा श्रीर्हरिरत्रहारिर्विधिर्विधिः स्वात्मजनेषुनूनम् ।१९।

शिष्य उवाच

यदि प्रसन्नोऽसि गुरो ! यदि देयो वरो मम ।
महिमानं काशिपुर्या वदस्व वरणार्थिनः ।२०।
सत्यमेव त्वया प्रोक्तमाश्चर्यं सर्वथा हि तत् ।
अन्यत्र बहुकालेन स्वधर्मैः सत्कृतैरपि ।२१।
विष्णुरुद्रौ न दृश्यौ तौ दृष्टावानन्दकानने ।
अन्याश्च देवताः सर्वा दृश्यन्ते धर्मवत्सलः ।२२।

अन्यत्र बहुकालेन प्रकाशस्तु प्रजायते ।
काश्यां पापैश्छादयन्ति स्वदृष्टिं ये नराधमाः ।२३।
काश्यां स्थितोऽपि विश्वात्मा दृश्यते तैर्न हि क्वचित् ।
इति श्रुता मया सद्भ्यो वेदविद्भ्यो महत्फला ।२४।
का काशी केन रचिता कथमाश्चर्यकारिणी ।
महाप्रभावा महती महादेवहरिप्रिया ।२५।

## काशीमाहात्म्यविषये गुरुशिष्यसम्वादवर्णनम्

कथञ्जाता महानन्दरुपिणी रुपवर्जिता ।२६।

गुरुरुवाच

धन्योऽसि वत्स ! भद्रन्ते यस्य ते मतिरीदृशी ।
यया वशीकृताःसर्वे देवा विप्राः सहात्मना ।२७।
सर्वधर्मफलं सम्यक् काश्यां श्रद्दधते मनः ।
काशी ब्रह्मेति विख्याता यद्विवर्तो जगद्भ्रमः ।२८।
अविवर्तन्तदेवाहुः काशीति ब्रह्मवादिनः ।२९।

यथा विष्णोः शंकरस्यापि नाम्ना लोकाः शोकं नाश्य मोक्षन्प्रयान्ति ।
बाराणस्या नामगृह्णन्विशेषा तीर्त्वामृत्युं मृत्युजेता स्वयं स्यात् ।३०।
तीर्थानि सन्ति विविधानि फलप्रदानि कामप्रदानि धनधान्यसुखप्रदानि ।
जीवन्विवेकसुखमाप्य सुखेन तीर्त्वा काश्यां भवार्णवमथो परिपश्यति स्वम् ।३१।
येऽत्रद्विजाग्र्याः श्वपचास्तुनिन्द्या ये चक्रवर्तिष्वपि धर्मरूपाः ।
ये वा दरिद्राः परमार्तिरूपां समानरूपाः गतिमाप्नुवन्ति ।३२।
मृत्वा शीर्त्वा काशिकायां स्थिता ये विघ्रान्सर्वान्नाश्य देवीप्रसादात् ।
ते देहान्ते तारकं प्राप्य शुद्धं शुद्धं नित्यं प्राप्नुवन्त्येव सत्यम् ।३३।
वासः काश्यां सज्जनानां प्रसङ्गो गङ्गास्नानं पापकर्म्मारुचिश्च ।
पुण्ये प्रीतिः स्वेच्छया लाभसौख्यं दानं शक्त्या न प्रतिग्राह्यमत्र ।३४।
अष्टावेते यस्य सन्त्येवयोगा योगाभ्यासैस्तस्य किं काशिकायाम् ।
येऽत्र स्थित्वा शङ्करम्बा हरिम्बा नोपासन्ते विघ्नपूगास्तु तेषाम् ।३५।
काशीस्थलोकं सहसाऽपि ये न प्रधर्षयन्ते मनसा महान्तः ।
तेऽधोगतान् स्वानपराञ्जनौघानुद्धर्तुमीशाः परदोषशून्याः ।३६।

काश्यां स्थित्वा हीन्द्रियाणां व्ययन्नो कुर्याद्वाल्यात्सत्कृतं रक्षणीयम् ।
अन्तर्यामी प्रेरकः कारणानां सोऽयं द्रष्टा हीन्द्रियैर्नाशितैः स्यात् ।३७।
यत्र स्वेच्छाचारदोषात्प्रनष्टा लोकाः कामाद्भ्रान्तिभाजो भवन्ति ।
तस्मात्सद्भिर्नैव पन्था ह्यशुद्धः सेव्यः सेव्यो वेदमूलो हि धर्मः ।३८।
दानं यज्ञान् पूजनं कुर्वतां यत्प्राप्यं काशी लीलयातत्प्रदद्यात् ।
सत्यादौ यद्दुर्लभं स्वात्मरूपं तिष्ये काशी सम्प्रदद्यादपाये ।३९।
पापं काश्यां वाङ्मनः कर्मभिर्नो कुर्यात्कुर्याद्वाङ्मनः कर्मभिस्तत् ।
यद्वै साक्षाद्विष्णुना शम्भुना वा व्यासाद्यैश्च प्रोच्यते सर्वकालम् ।४०।

कालाद्भयन्नास्ति यत्र यत्र पापभयन्न हि ।
जन्मान्तरसहस्रेषु कृतं नश्यति दर्शनात् ।४१।
तत्क्षेत्रमहिमानं कः सम्यग्वर्णयितुं क्षमः ।
तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन् जन्तूनामघहान्यहो ।४२।
तानि सर्वाणि शुद्ध्यर्थं काशीमायान्ति नित्यशः ।
यस्तु काश्यां वसेज्जन्तुः सर्वव्यापारकृन्नरः ।४३।
तस्यापि या गतिः प्रोक्ता न सा यज्ञैर्न चान्यतः ।
स्मरन्ति ये नराः काशीं यत्र कुत्राऽपि संस्थिताः ।४४।
तेऽप्यघौघविनिर्मुक्ता भवन्ति ज्ञानभागिनः ।
परं साहसमालम्ब्य काश्यां स्थेयम्मुमुक्षुभिः ।४५।
साहसात्सिद्धिमाप्नोति नरो विकलमानसः ।४६।

दीपक उवाच

किं तत्साहसमाख्यातं गुरुणा येन मानवः ।
सिद्धिमाप्नोत्यविकलां महाबन्धविघातिनीम् ।४७।

गुरुरुवाच

समुद्रतरणं वत्स ! महागरलभक्षणम् ।
स्वशिरश्छेदनं कूपपतनञ्चाग्निभक्षणम् ।४८।
पर्वतात्पतनं सर्ववृश्चिकैः सह खेलनम् ।
अगम्यागमनञ्चैव तथा ब्रह्मवधादिकम् ।४९।
तथा पापान्तरञ्चैव हननञ्च गजस्यच ।
एते तु साहसाभासाः कृता नश्यन्त्यपि क्वचित् ।५०।

अजितेन्द्रियवर्गस्य कृतं कल्पशतैरपि ।
न नश्यति महाबुद्धे ! साहसं किमतः परम् ।५१।
अजितेन्द्रियवर्गस्तु स्वात्मानं स्वयमेव हि ।
अनेकगर्भजालेषु पातयत्यनिशं हठात् ।५२।

अतो महासाहसिनो जितेन्द्रियान्ज्ञात्वा तु नश्यत्यपि शास्त्रजालम् ।
जितेन्द्रियाश्चापि हि साहसैर्युता ह्यशक्यमप्याऽऽशु यतः प्रकुर्वते ।५३।

**काश्यां क्षेत्रसंन्यासमहिमवर्णनम्**

अन्नदानन्तु यः कुर्याद्यस्य कस्यचिदप्यहो ।
यावन्त्यब्दानि तावन्ति युगानि स वसेद्दिवि ।५४।
वाराणस्यां निवसतां यत्पुण्यमुपजायते ।
तदेव संवासयितुः फलं भवति नान्यथा ।५५।
यैर्यैरुद्वेजितो जन्तुस्त्यजेत्काशी सुदुःखितः ।
ते ते नरकजालेषु पच्यन्ते पितृभिःसह ।५६।

यं कश्चिद्वै ब्राह्मणं काशिकायामन्नाद्यैर्यो वासयेत्सुप्रतर्य्य (क्यं) ।
त्रैलोक्यं स्याद्रक्षितं तेन वत्स ! ह्यात्मा मग्नः संसृतेरुद्धृतश्च ।५७।
आनन्दाख्ये कानने ये वसन्ति क्षेत्रन्यासं सम्विधायाऽत्र पुत्र ! ।
तैर्वस्तव्यं रुद्ररूपैर्हि यत्नाद्यतो रुद्रो धर्मपालः प्रसिद्धः ।५८।
ये क्षेत्रसंन्यासकरा महामते ! ते वन्दनीयाः कृतबुद्धयः सदा ।
ते शङ्करत्वं समवाप्य जीवा भवन्ति चेदिन्द्रियार्थेषु लोलाः ।५९।
ते दाम्भिका वञ्चकाः स्वार्थकामाः कामारिमप्याऽऽत्मना वञ्चयन्ति ।
लक्ष्मीपतिः किं वद भिक्षुकःस्याद् गृहे गृहे दीनमनाः परिभ्रमन् ।६०।
सन्यस्तदेहः किल काशिकायां यः कश्चनेशः स कृती महेशः ।
स चेद्भवेद्दैन्यपरो जनेषु ततः परः कोऽन्यतमः शिवध्रुवक् ।६१।
शिवद्रोहात्काशिकाद्रोह एव भवत्यवश्यन्न विचार्यमत्र ।
पशुं प्रविक्रीय पुनर्न तस्य चिन्तां प्रकुर्वन्त्यपि पामरा ये ।६२।
सन्तः पुनः क्षिप्तरदेहं समर्प्य जनं जनं दीनवत्प्रार्थयन्ते ।
क्षेत्रसंन्यासशब्देन नैश्चित्यं परमं विदुः ।६३।

अन्यत्र योगाभ्यासेन यावज्जीवं कृतेन च ।
वाराणस्यां प्राणरोधात्तत्पुण्यं समवाप्यते ।६४।

सर्वतीर्थविगाहाच्च यत्पुण्यं स्यान्नृणामिह ।
तत्पुण्यं कोटिगुणितं मणिकर्ण्येकमज्जनात् ।६५।
अन्यत्र ब्राह्मणानान्तु कोटिं सम्भोज्य यत्फलम् ।
वाराणस्यां मुदैकेन भोजितेन तदाप्यते ।६६।
दिनेनैकेन यच्छ्रेयो हेलयः लभ्यतेऽत्र यत् ।
वर्षाणां तु शतेनापि तदन्यत्र न लभ्यते ।६७।
यः स्तौति स्मरते काशी यः कीर्त्तयति मानवः ।
तेन तप्तं हुतं जप्तं कृतं ध्यानमहर्निशम् ।६८।
महापातकयुक्तोऽपि श्रद्धाविरहितोऽपि हि ।
काशीप्रवेशादनघः सम्यक्स्थित्वा सुखी भवेत् ।६९।
अस्मिन् कलियुगे घोरे लोकाः पापानुवर्तिनः ।
भविष्यन्ति महाबुद्धे ! वर्णाश्रमविवर्जिताः ।७०।
नान्यत्पश्यामि जन्तूनां मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम् ।
सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं कलौयुगे ।७१।
कलौ विश्वेश्वरो देवः कलौ वाराणसीपुरी ।
कलौ भागीरथी गङ्गा दानं कलियुगे महत् ।७२।
नन्दन्ति न कलि धीरा विजितेन्द्रियमानसाः ।
भगवद्भजने रक्ताः सक्ता धर्मेष्वनुक्षणम् ।७३।
कलिमलमपहन्तुं काशिका काशतेऽसौ,
स्मरहरहरिसूर्यब्रह्मविश्रामभूमिः ।
न हि विरमितचित्तो दुःखमाप्नोति-
किञ्चिज्जननशतसहस्रैर्दुर्दर्शं ब्रह्मभूयात् ।७४।

शिष्य उवाच

अन्यत्र ये मृता दैवज्जीवास्तेषां यदि प्रभो !
कीकसम्प्रपतेदत्र तेषां का गतिरुच्यते ।७५।

गुरुरुवाच

अन्यत्र पतितानान्तु जीवानां कीकसं यदि ।
वाराणस्यां प्रपतति नरकं न पतन्ति ते ।७६।

स्वर्गदुष्कृतनः पापा अपि गच्छन्ति नान्यथा ।
अस्थिकेशनखा मांसं यदि काश्याम्पतेदिह ।७७।
महापापास्तदा स्वर्गं यान्ति साहस्रवत्सरान् ।
पुनः काशीं समासाद्य मुक्ताः स्युः सर्वजन्तवः ।७८।

### विष्णोर्हृयात्काशीप्रादुर्भावबर्णनम्

शिष्य उवाच

अहो माहात्म्यमतुलं काश्याः पापाशनेः श्रुतम् ।
महानुभावा ऋषयः पण्डिता शुद्धबुद्धयः ।७९।
वसन्ति काश्यां न कथं तपसः फलरूपिणीम् ।
या हि भागीरथीतीरे अर्धचन्द्राकृतिः कृता ।८०।
केशवेन महापुण्या पुण्यदा मोक्षदा स्मृता ।
तच्छ्रोतुमहमिच्छामि विष्णुना शिवसात्कृता ।८१।

गुरुरुवाच

शृणु वत्स ! महाप्राज्ञ ! कथां पापापनोदिनीम् ।
यस्याः श्रवणमात्रेण काशिका काशिका भवेत् ।८२।
वाराहकल्पे यद्वृत्तं तद्वदामि तवानघ ।
कदाचित्पृथिवीमग्ना प्रलयाब्धौ तलङ्गता ।८३।
महर्जनस्तपोलोकवासिभिस्तु जनार्दनः ।
स्तुतः श्रुत्यनुकूलाभिर्वाग्भिः सर्वेश्वरो हरिः ।८४।
प्रकटोऽभून्महाविष्णुर्मुनीनां भावितात्मनाम् ।
उवाच स महाविष्णुः किमर्थं संस्तुतस्त्वहम् ।८५।
वदन्तु तन्मयाऽऽपाद्यं ऋषयः स्वार्थमुत्तमम् ।८६।

### काशीप्रादुर्भावे ऋषीणां विष्णुना वार्तावर्णनम्

ऋषय उचुः

देवदेव ! जगन्नाथ ! दीनानाथाश्रयाश्रय ! ।
सर्वज्ञस्थ सदा ज्ञस्य तवाऽग्रे मधुसूदन ।८७।
बिज्ञाप्यमस्ति ! महीमग्ना महाम्भसि ।
तस्या उद्धरणे यत्नं कुरुष्व जगदीश्वर ।८८।

छत्राकारन्तु किं ज्योतिर्जलादूर्ध्वम्प्रकाशते ।
निमग्नायान्धरिण्यान्तु न निमज्जति तत्कथम् ।८९।
किमेतच्छाश्वतं ब्रह्मवेदान्तशतरुपितम् ।
तापत्रयाग्निदग्धानां जीवानां छत्रताङ्गतम् ।९०।
दर्शनादेव भगवन्कृतार्थाःस्मो जगद्गुरो ! ।
वारम्वारे तवाऽप्यत्र दृष्ठिर्लग्ना जनार्दन ! ।९१।
परमाश्चर्यरुपोऽसि आश्चर्येण प्रपश्यसि ।९२।

विष्णुरुवाच

वाराहरूपमास्थाय पृथिवीमुद्धराम्यहम् ।
प्रतीक्षन्तु कियत्कालं यावद्दैत्यसमागमः ।९३।
दैत्यं हत्वा निमग्नाङ्गासानयिष्ये जलोपरि ।
ततः प्रवर्ततां धर्मो वर्णाश्रमनिबन्धनः ।९४।
छत्राकारं परञ्ज्योतिर्दृश्यते गगने चरम् ।
तदिदम्परमञ्ज्योतिः काशीति प्रथितं श्रुतौ ।९५।
रत्नं सुवर्णे खचितं यथा भवेत्तथा पृथिव्यां खचिता हि काशिका ।
न काशिका भूमिमयी कदाचित्ततो न मज्जत्यसकृत्कृती यत् ।९६।
जडेषु सर्वेष्वपि मज्जमानेष्विय चिदानन्दमयी न मज्जति ।
स्वयं निमग्नः कथमुद्धरेत्परान्लोकेऽपि वेदेऽपि विचार्यमेतत् । ९७ ।

ऋषय ऊचुः

देवदेव ! जगन्नाथ ! विश्वनाथ ! जगन्मय ! ।
वासुदेव महादेव ब्रह्मरुप नमोऽस्तु ते ।९८।
तत्स्वरूपा कथङ्काशी कथम्वा रचिता त्वया ।
भूमौ भुवननाथेन किमर्थम्वा पृथक्कृता ।९९।

विष्णुरुवाच

कस्मिश्चित्सुमहाकल्पे लोका धर्मपरायणाः ।
साधनानि प्रकुर्वन्ति मोक्षार्थं तप आदिभिः ।१००।
तथाऽपीन्द्रियवैषम्यान्मोक्षे विघ्ना भवन्ति हि ।
आगत्य सर्वैर्विज्ञप्तिः कथ मुच्यामहे विभो ! ।१०१।

नानातीर्थैस्तपोभिश्च वृत्तैर्दानैर्जपैर्वृषैः ।
कृतैरपि मनःशुद्धिर्दृश्या तेन नृणामिह ।१०२।
मनःशुद्धिम्बिना देव! न मोक्षो धर्मदुर्लभः ।
कथं मुच्येमहि वयं दुस्तराद्भवसागरात् ।१०३।
न तं धर्मं सूक्ष्मरूपं विदामो मुक्ताः स्यामो येन पापाद्भवाब्धेः ।
तं त्वात्मानञ्जीवजीवञ्गताःस्मो विद्यावीजनिर्मूलहेतुम् ।१०४।
नानापाशैः पाशितान्नः सुरेशः! त्राहि त्रस्तांस्त्वन्न चान्यत्र मुक्तिः ।
युक्तिः सेयम्वेदशास्त्रानुकूला मूला तूला नश्यति त्वत्प्रसादात् ।१०५।

### पञ्चक्रोशलिङ्गमहिमवर्णनम्

विष्णुरुवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषाञ्जनानाम्पुण्यकर्मणाम् ।
सदाशिवो महादेवो लिङ्गरूपधरः प्रभुः ।१०६।
मया स्मृतो लोकमुक्त्यै प्रादेशपरिमाणतः ।
लिङ्गरूपधरः शम्भुर्हृदयाद्बहिरागतः ।१०७।
महतीम्वृद्धिमासाद्य पञ्चक्रोशात्मकोऽभवत् ।
आपातालादाविकुण्ठम्व्याप्य चोर्ध्वमवस्थितः ।१०८।
ममेष्टदेवो दयितः परमात्मा पिनाकधृक् ।
कैलासादप्यगाद्देव्या भवान्या सहितः प्रभुः ।१०९।
दृष्ट्वा लिङ्गं परानन्दं ज्योतीरूपं सुनिर्मलम् ।
दृष्ट्वा मामुक्तवान् रुद्रस्त्वया सम्यगिदं कृतम् ।११०।
ज्योतिर्लिङ्गं प्रकटितं सर्वप्राणिविमुक्तिदम् ।
रुद्रस्य वचनं श्रुत्वा मया तत्स्थाणुरूपधृक् ।१११।
शुद्धसत्वात्मकं ज्ञात्वा स्तुत श्रुतिशतैः पृथक् ।
लिङ्गाकारं कचिद्भाति दण्डाकारं कचित्पुनः ।११२।
छत्राकारं कचिद्भाति पिण्डाकारं त्रिकोणकम् ।
दृश्यते मुनिसङ्घैस्तद्यथामति तथैव तत् ।११३।
अजडत्वात्मावकाशं क्षेत्राकारतया स्थितम् ।
आनन्दनिविडत्वाच्च लिङ्गाकृति तथा महत् ।११४।

जडत्वात्पृथिवी मग्ना सप्राणिनगकानना ।
अजडत्वादिदं लिङ्गं छत्राकारमवस्थितम् ।११५।
चैतन्यजडयोरैक्यं कथमेकस्थयोरपि ।
भवेदिति महाभागा जानन्ति कथयन्ति च ।११६।

## विष्णुमुखोद्गतकाशीमहिमवर्णनम्

तस्मात्काशी ब्रह्मरूपा जडपृथ्वीर (ध्व्या अ) संगता ।
महर्जनस्तपोलोकवासिभिर्मुनिभिर्मही ।११७।
जलम्प्रविष्टा दृष्टा सा छत्राकारम्महद्युति ।
दृष्टन्तत्काशिकारूपं निर्मितं न मया परम् ।११८।
वदन्ति लोकाः सततं काशी केशवनिर्मिता ।
निर्माणन्तु जडस्यात्र क्रियते न परात्मनः ।११९।
उद्धरिष्यामि च महीं वाराहं रूपमास्थितः ।
तथा पुनः पृथिव्यां हि काशी स्थास्यति मत्प्रिया ।१२०।
इत्युक्त्वा ऋषिमुख्येभ्यो भगवानादिसूकरः ।
उद्धारमहादेवो महीं मग्नां महाम्भसि ।१२१।
एकीकृता काशिकया पुनर्जीवानमोचयत् ।१२२।
यस्यां स्थावरजङ्गमाजडधियः सुज्ञाः सुधर्मान्विताः ।
पापाश्चैव सदाशिवेन मिलिता जीवा भवन्ति ध्रुवम्।
या गङ्गादि समस्ततीर्थशरणं या देवतादैवतम् ।
सा काशी मम शङ्करस्य वसतिः प्रार्थ्या न कैः सद्गुणैः।१२३।

## गुरूपदिष्टकाशीमाहात्यवर्णम्

### गुरुरुवाच

एवं विष्णुर्महाभाग ! प्रार्थितो मुनिभिः पुरा ।
इमां कथां कथितवान्काश्याः सन्देहशान्तये ।१२४।
गुरुभक्तो विष्णुभक्तः शिवभक्तस्त्वमेव हि ।
यस्य काशीकथायान्तु प्रीतिर्जाताविमुक्तिदा ।१२५।
अन्यत्किञ्चिद्वरय मां त्वयाहन्तोपितः शिशो ! ।
महत्या सेवया प्राज्ञ ! पाप्मभिर्दुर्लभं शिवम् ।१२६।

काश्यां ये पशुपक्षिकीटतरवस्ते कामलोभादिभि-
र्हीनाः पापवृपादिशुद्धमनसा कुर्वन्ति नो कर्हिचित् ।
मर्त्याः पापविकारकाममनसा कुर्वन्त्यपि स्वादतः ।
पापम्पापरतास्तथार्थरहिता यान्त्येव ते यातनाम् ।१२७।

मनुष्याणां सहस्रेषु पापभीरुः सुदुर्लभः ।
भीरुष्वपि सहस्रेषु दुर्लभः पापवर्जकः ।१२८।

वर्जकेष्वपि धर्मात्मा धर्मात्मसु जितेन्द्रियः ।
तेष्वपि मुमुक्षुर्यः साधनैः परमैर्युतः ।१२९।

साधनैः परमैर्युक्तः समदृक् शान्तमानसः ।
ब्रह्मात्मभावं यद्याति तत्काश्यां हेलयाऽऽप्यते ।१३०।

सेवाफलं त्वयैवाऽऽसु प्राप्तं गुरुकृतम्महत् ।
न हि पापा गुरोर्भक्ति कुर्वन्ति ह्यात्मवञ्चकाः ।१३१।

यत्प्रसादात्प्राप्नुवन्ति शाश्वतम्पदमव्ययम् ।
गुरुभक्त्या शिवो दृष्टो गुरुभक्त्या जनार्दनः ।१३२।

गुरुभक्त्या महासिद्धिः काशिका दर्शनङ्गता ।
मयाऽपि सुप्रसन्नेन गुरुणाङ्काशिका गुणाः ।१३३।

उपदिष्टा बहुमता स तान्नत्वसताम्गुने ।१३४।

सन्तः (सद्भिः) सेव्याः सन्मुखात्काशिकायाः श्रोतव्यास्तेसद्गुणाः सिद्धिरूपाः ।
यस्याम्वासः पापनिर्मूलकारी यस्यास्मृत्युर्मोक्षदः प्राणिनां हि ।१३५।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते काशीमाहात्म्ये तृतीयभागे द्वितीयोऽध्यायः ।२।

# अथ तृतीयोऽध्यायः

## काशीवासिजनैः कर्तव्यधर्मप्रतिपादनम्

शिष्यउवाच

काशिकायाः स्वरूपन्तु श्रुतम्वेदादिगोपितम् ।
त्वत्प्रसादाद्देवदेव ! शरणागतवत्सल ।१।
ब्रह्मादयस्त्रयोदेवा दृष्टा मे त्वत्पसादतः ।
धर्मस्वरूपमखिलम् ज्ञातन्त्वत्कृपया महत् ।२।
अविमुक्तस्य माहात्म्यं शृण्वंस्तृप्यामि नो गुरो ! ।
विचित्रममृतं ह्येतच्छृण्वताममृप्यामितप्रदम् ।३।
न हि धर्मदयो लोके प्रयच्छन्ति श्रुताः फलम् ।
अयमेव वरो मह्मम भगवान्काशिसत्कथाम् ।४।
कथयस्व कृपासिन्धो ! न तृप्याम्यमृतम्पिबन् ।५।

## काशीवासिजनैस्त्याज्यधर्मवर्णनम्

गुरुरुवाच

दृष्ट्वा काशीम् साङ्ख्यभूमिं सुखाख्याम् संसाराब्धेस्तारकं केशवश्च ।
ब्रह्माणश्च ब्रह्मघोषैरुपेतङ्कस्तां काशीम् सन्त्यजेन्मोक्षदात्रीम् ।६।
ये येऽपराधा भविनां भवेयुर्भवापहाः काशिका तान्क्षमेत ।
शिवं शिवां केशवं काशिकां यः स्मरन्वसेत्पापभीरुः सदाऽत्र ।७।
बुधैर्नर्शुविहिता तथागमैनं तीर्थमन्त्राहुतिदानपावनैः ।
वाराणसीम्प्राप्य जितेन्द्रियाणां यथा भवेच्छङ्करभक्तिभाजाम् ।८।
यन्नाममात्रेण समस्तदोषान् दूष्यान्सुतीर्थी कुरुते हि जन्तुः ।
तां काशिकांकाशिताकाशरम्यां को विस्मरेत्सुकृती शान्तचित्तः ।९।
ये स्थावराः काशिकायाम्वसन्ति ते सर्वयोगिष्वपि योगनिष्ठाः ।
क्षुब्धम्मनो नैव सुखाय यत्र सम्प्राप्यते तत्सुखं शान्तचित्तैः ।१०।
काशीस्थलोको न यमाद्बिभेति न दुःखसङ्घान्न च गर्भवासात् ।
बिभेति चैकान्महतो भयात्परं यन्मानुषं जन्म शिवेन हीनम् ।११।

न कुर्वन्ति त्रिधा पापं　त्रिधा पुण्यं प्रकुर्वते।
लोकाः काशितकाशाश्च　वसन्ति शिवसद्मनि ।१२।

केचिन्महादेव ! शिवेश ! शम्भो ! केचिज्जगत्पालक ! विश्वमूर्ते।
केचिन्महापातकनाशनाद्य (नेति) केचिन्महायोगदा भोगदेति ।१३।
पश्य तात परमार्चितां पुरीं योगिभिः सुकृतिभिर्मुनीश्वरैः।
यां निरीक्ष्य पुरुषः पुराकृतैः पातकैः पातमितैर्वियुज्यते ।१४।
पूर्वजन्मशतकोटिसञ्चितम्पापराशिमतुलं विनाशयेत्।
काशिकापरदप्रकाशिका दर्शनश्रवकीर्त्तनादिभिः ।१५।
पश्य तात ! निवसन्ति साधवो माधवैकशरणाः शिवाज्ञया।
मानयन्ति सुकृतन्न पातकम्पातकाद्भयमुपापतेर्भवेत् ।१६।
शरीरसंस्कारकृतो महाजना बहिस्तथान्तः शिवदर्शनार्थम्।
असंस्कृतम्पश्यति नो हरः स्वयं ह्यसंकृता नो भगवन्तमीश्वरम् ।१७।
पश्यन्त्युमावल्लभमीश्वरम्मतिम्पतिव्रतावन्नियताङ्गमानसाः ।
स किं महात्मा व्यभिचारिणां नृणां सुदर्शनं यति रतिप्रियः सदा ।१८।
लिङ्गानि तीर्थानि सुमङ्गलानि दिशन्दिशम्प्राप्य मुदावहानि।
स्थितानि सद्भिः परिपूजितानि काश्यां न कः प्राप्नुयाद्धर्ममार्यः ।१९।

## काशीमहत्त्ववर्णनम्

काशीमहोत्सवमवाप्य महाजनोऽयं सम्प्रार्थयत्यखिलसाधनसिद्धिरूपम्।
विश्वेश्वरं सकललोकगुरुं सदाऽऽप्तन्द्रष्टुं शुभाशुभविनाशकरंशिवाख्यम् ।२०।
पश्य वत्स ! तरणंतरन्तितांस्वः स्थिताङ्गमनवर्जितां गतिम्।
दारुलोहरहिताम्भवार्णवात्तारिताखिलजनाम्प्रकाशिकाम् ।२१।
कान्यां येषां नाम गृह्णन्ति लोका वीजन्तेषाज्जायते मोक्षमार्गे।
काशीं ये वै संस्मरन्त्यन्यदेशे तानप्यात्मा शङ्करस्तारयेत्र ।२२।
काश्यां ये वै शीघ्रमायुर्व्ययेन सिद्धिम्प्राप्तास्ते तु तीर्णभवाब्धेः।
देशः कालो लोकजात्युक्तधर्मास्तिप्ये दुष्ठा नाशमायान्ति सर्वे ।२३।
वदन्ति जानन्ति गृणन्त्यभीक्ष्ण पश्यन्ति पुण्यानि च पातकानि।
तथापि मुह्यन्ति कलावधर्मज्ञैः सौख्यैश्च वर्णाश्रमधर्मवर्जिताः ।२४।

कलौ पूर्वावस्था न भवति परा सर्वजगतां ।
यथा सत्ये सम्यक्प्रतिदिनमपारः शुभचयः ।
अतः काश्यां सर्वैर्जितविबिधलौल्यैर्गुरुनतैः ।
प्रबस्तब्यं नित्यं हरिहरपथास्वादनपरैः ।२५।

न काशिकायामजितेन्द्रियाणां सुखाय काशी हरवासभूमिः ।
तपोभिरुग्रैर्नियमैर्जपैर्दानैःविविक्तासनभक्तियोगैः ।२६।
श्रीभैरवाज्ञाप्रतिपालनैश्च वैराग्यसाम्राज्यसुखैर्विशोकैः ।
शरीरशोषैर्मलमूत्रशोषैर्वाह्यागमाचारगुरूपसत्तिभिः ।२७।
मानायमानादिविवर्जनैः सदा ह्यन्येषु मानप्रियदानदायकैः ।
वाक्यैः पवित्रैरभिमानवर्जितैः पाखण्डनिन्दापरदारवर्जनैः ।२८।
अन्यैरनेकैः श्रुतिसाधनैर्ये युक्ताः स्वधर्मप्रतिपालकाश्च ।
वसन्ति काश्या शिववासभूमौ युक्ताः परत्रेह च शंल्लभन्ते ।२९।
ये लिङ्गम्विश्वमूर्तेर्भवभयहरणं शोकशोषं विशोकम् ।
सेवन्तेऽर्चन्ति पश्यन्त्यथविमलजलैः पुष्पधूपादिभिश्च ।
स्तोत्रैःस्तुत्वा गिरीशं वहुविधिनटनैर्भावयन्तो दिनेन ।
सम्पूर्णार्थाः कृतार्थाः परमसुकृतिनो यान्ति ते शुद्धमोशम् ।३०।
स्थित्वाऽविमुक्ते शिवदर्शनार्थं कुर्वन्ति कुर्वन्ति बहूनि लोकाः ।
कार्याण्यकार्याणि भवन्ति तेषाम् तस्माच्छिवम्प्रत्यहमर्चयेदिह ।३१।
स्थित्वा काश्याम्विश्वनाथन्त्वदृष्ट्वा सुप्तास्ते ते मोहसङ्ग्रस्तचित्ताः ।
दृष्टो देवः साधयत्येव सर्वं तस्मात्पश्येद्देवदेवम्महेशम् ।३२।
पश्य तात सुकृतैकसंश्रयम्ब्रह्मकाननमिदं परात्परम् ।
तारितैकभुवनम्भुवङ्गत भूधरार्चितसुरासुरार्चितम् ।३३।

### काश्यां नानाविधिवनानांवर्णनम्

आनन्दकाननमिति प्रवदन्ति देवा धर्माख्यकाननमिति प्रवदन्ति विप्राः ।
अर्थार्थकाननमिति प्रवदन्ति लोकाः कामारिकाननमिति प्रतिकृत्तकामाः ३४।
विश्रान्तिम्प्राप्य यत्र व्रजति परसुखम्मूलविश्रान्तिरूपम्
विश्रान्ताः साधवो ये श्रमधनखचिता व्यग्रतां सन्त्यजन्ति ।
वैय्यप्रग्रस्तचिता विषयवनमिवाज्ञाय सम्यक्प्रवृत्ताः ।
प्रारब्धव्याधिरूपा अमृतमिव खलाः शौचकार्याणि कुर्युः ।३५।

यथाकथञ्चिन्मरणं शुभात्मनां शुभन्तथा पापकृतां सुदुःखम् ।
अतः कलावप्यधमैस्तथोत्तमैर्धर्मः सदा सेव्य उदारबुद्धिभिः ।३६।
यत्र प्रविष्टा द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपास्थावरजङ्गमाः परे ।
सर्वेन्द्रियैः सर्वसुखानि भुञ्जते न भुञ्जते ते सुखदुःखमात्मनः ।३७।
केचिद्देवाः केऽपि शुद्धा मुनीन्द्रा देवर्षीणां येऽपि भक्ता भवन्ति ।
ब्रह्मानन्दे कानने सम्वसन्ते पक्षिव्याजाः सन्मृगाश्चाऽपि चाऽन्ये ।३८।

## काशीनिवासफलवर्णनम्

विधिनिषेधपरा मनुजाः सदा विधिनिषेधकृतः सुखवर्जिताः ।
विधिनिषेधभिया मृगपक्षिणो न खलु कर्मधियां सुखभूरियम् ।३९।
हरिरपि सुखकारी काशिकायां सुखार्थी विविधकरणहीनो हीनशुद्धस्वरूपः ।
सुवसतिमुपयातो वासिताशेषपुण्यः कथमितरजनोऽत्र व्यापृतात्मासुखीस्यात् ।४०।
काश्याम्मृताःस्निग्धरूपाः क्षितीन्द्रास्तिष्ठन्त्येव प्राणिमात्रानुकूलाः ।
लोकानान्ते सर्वभावैः कृतार्था धिक् चाञ्चल्यं यत्र काशीवियोगः ।४१।
तदेवजन्माऽस्तु सुखं सुखाप्तये येनात्र वासः परिपाकमोक्षदः ।
येनात्रवासः परलोकदुःखकृत् सदुक्तमार्गे निरतो भवेच्चेत् ।४२।
पश्य पश्य मृगपक्षीवीरुधाङ्कीटवृक्षकृमिकामजन्मनाम् ।
देहदैहिकविपादवर्जितः प्रीतियुक्तमनसां सुखम्महत् ।४३।
स्थाने स्थाने सङ्घशः शातिताद्याः शब्दब्रह्म ब्रह्मःमूलम्वदन्त ।
वन्यैर्योग्यैर्जीवनङ्कल्पयन्तः सन्तः शान्ताः साधितार्था वसन्ति ।४४।
शैवसौरहरिदासविघ्नहृच्छक्तिभासितमनोभिराततम् ।
स्वस्वदेवपरिसेवनार्थिभिः साधिताखिलफलैर्निषेवितम् ।४५।
स्वभाववैरम्परिहृत्य यत्र व्याघ्रादयोऽपि प्रतिहृष्टमानसाः ।
तृणश्चरन्तो न च सङ्ग्रहेच्छवो यत्सङ्ग्रहाद्वैरपरः सदा भवेत् ।४६।

ब्रह्मोवाच

ततोऽप्यग्रेदृष्ट्वा सदयहृदयान् शङ्करपरान्सुवर्णा
काशीस्थान्परमसुहृदः स्थावरचरान्
क्वचिच्छाकाहारान्क्वचिदपि च धात्रीफलचरान् ।
क्वचिट्बैल्वैः पत्रैः कृतशमदमांश्छान्तमदनान् ।४७।

स दृष्ट्वा सौभाग्यं मदनरिपुपुर्याः प्रकथयन्
प्रदीपाग्रे विप्रस्थितिवृषपरः शासितपरः
यथा देवो देव्याः पुरत इहसवकथितवां-
स्तथा शिष्यस्याऽग्रेकथयति गुणान्गौरवगुरुः ।४८।

या निर्वृतिम्वितनुते जितमानसानां योद्वेगदा विवधपापरतात्मनाञ्च ।
या विष्णुलोकशिवलोकपरापरेयं सा तापपापशमनी शुभसेविता स्यात् ।४९।
ततः प्रदेशान्तरमासाद सरोवरैर्मण्डितमप्रमेयम् ।
कैलास वैकुण्ठसुरालयाधिकन्धिगस्तु तान्ये न चरन्ति तत्र ह ।५०।

काश्यां पक्षिसङ्घस्म भगवतः शिवस्य भक्तिवर्णनम्

हंसाश्चकोराश्चटका वकाः शुका लूकाः समूका इव शुष्कवादे ।
नादैः सदानन्दमयैः सनातनन्निरूपयन्तः सुरुतैः सदाशिवम् ।५१।
शिवानुकम्पा यदि नाऽऽश्रिता स्यादभूषणञ्जन्मभाजाम् ।
सुजन्मभाजामपिदूषणन्तन्नानाविवादैः कलहप्रियाणाम् ।५२।
मन्दारसन्तानकपारिजातकल्पद्रुमाख्यान् हरिचन्दनञ्च ।
पश्वन्विचित्रान् सुवहून् सनातनान् मोक्षादिसिद्धिप्रदपुष्पपत्रान् ।५३।
यजन्ति यज्ञैः प्रतपन्ति तापैः कुर्वन्ति दानानि वहूनि सुव्रताः ।
शोचन्ति गत्वा दिवमुत्पतन्तः शोकापहं सौख्यकरन्तदेतत् ।५४।
माधवी मधुरवल्लिवेष्टितम्माधवैकनिलयम्महार्चनम् ।
सर्वजीवरमणं रमाप्रियम् प्रीतिरत्र सुकृतैः परा भवेत् ।५५।

शिष्यउवाच

महालक्ष्मी ह्येषा प्रतिदिवसमाराध्य नृहरिम्,
प्रसन्ने देवेशे वरयतिरतिम्मोक्षगहने ।
ऋषीणान्देवानां नरतुरगकोटान्तभविनाम् ।
सुखम्विश्रान्तानाम् तदिहवरमानन्दगहनम् ।५६।

ब्रह्मोवाच

दृष्ट्वाऽविमुक्तेश्वरमादिदेवं आनन्दमानन्दवनन्तथाऽन्यत् ।
तत्रत्यजीवान्सुखसारपुष्टान् शिवान्निजानन्दसमाधिजुष्टान् ।५७।

उवाच शिष्यः परमादरेण स दीपकः काशिपुर्याः प्रदेशात् ।
प्रपश्यमानः सुचिरम्भहात्मा गुरुम्प्रणम्याऽथ महानुभावः ।५८।

### शिष्यद्वारागुरूपदेशप्रसंशावर्णनम्

#### दीपकउवाच

स्वामिन्प्रसीदपरमम्परमार्थयुक्तं, काश्याः पुनर्वदवदान्यमनोभिरामम् ।
तृप्तिर्नमेभवति काशिनिवासिजन्तून् दृष्ट्वा महाफलयुतान् शिवभक्तियुक्तान्।५९
या ददाति सुकृतैकसाधनं या करोति सुखिन सुसेविता ।
या हरत्यघचयं पुराकृतं या विमुक्तिदसुरासुरार्चिता ।६०।
तत्र तत्र स गुरुर्गिराम्पतिर्मानदः परमशिष्यवत्सलः ।
लिङ्गतीर्थं शिवविष्णुकाननान्यप्यदर्शयदथो महामुनि ।६१।
श्रोत्रदृष्टिमनसां सुखावहां काशिकाम्परिकलय्य पूज्य च ।
तस्य भक्तिरुदिता महामते काशिकाविषयिणी विमुक्तिदा ।६२।

वशीकरणविद्येयमात्मस'द्धार्मिकञ्जनम् ।
करोति व्रह्मसुखदा प्रयच्छत्यमृतम्महत् ।६३।
दर्शितेयम्भगवता गुरुणां गुरुणा मम ।
गङ्गातीरगता काशी दृष्टादृष्टफलप्रदा ।६४।
गुरो ! त्वत्तः विश्चित्परमपरमच्चेतनजडम,
न देवस्तीर्थम्वा नच निगमशास्त्रादिपठनम्,
त्वया नित्यञ्ज्योतिः परमसुखदम्वेदपठितम,
कृपामूर्त्तो ! सिद्धम्प्रकटितमिदं शम्भुमदनम् ।६५।

अवश्यपूज्यम्वददेववृन्दम् पृच्छामि निर्विघ्नघ्रनिवासकामः ।
सर्वापराधान्परिहृत्य भक्तं रक्षन्ति काश्यामधिकारिणो ये ।६६।
गुरूपदिष्टन्न करोति यस्तु शिष्यः कथन्तस्य शुभा मतिःस्यात् ।
विदेहवत्पश्यति सर्वदं गुरुं स सर्वसिद्धिं समवाप्नुयात्कृती ।६७।

पापान्निवारयति धर्मपदे युनक्ति
सिद्धिम्प्रयच्छति ततः परमस्ति किन्तत् ।

सद्ब्रह्म दर्शयति पदम्परमम्ब्रिवण्वृवन्
यस्तीक्ष्णताञ्चजगतः कथयेत्कृपालुः ।६८।
वेदैः पुराणैः स्मृतिभिः सुखं समुदिश्यते तत्सुख
गुरुवक्त्राद्धि श्रूयते धार्मिकैर्जनैः ।६९।

गुरुरुवाच

ये काश्यान्निवसन्ति शङ्करपरा विष्णोः समाराधका ।६९।
स्तेषाम्पापचऽयो याति विलयम्मुक्ति लभन्तेऽपि च ।
ये काश्याम्भवनाशिनीम्भगवतीं श्रीमद्भवानीञ्जनाः ।
सेवन्ते सततं सुपूजनपराः कामादिभिस्ते स्थिराः ।७०।

सर्वैषाविघ्नहर्तृणामपि सर्वेश्वरेश्वरी ।
अतो भवान्यधीनं हि क्षेत्रम्पूज्यात्ततः परा ।७१।

ये काश्याम्प्रभजन्ति ढुण्ढिगणपं सर्वाघविघ्नापहम् ।
तेषां ढुण्ढि समस्तशास्त्रविहितान्भोगान्प्रयच्छत्यसौ ।
ये नानाविधमोदकैः सुमधुरैर्विप्रान्सूपूज्याऽऽदरात् ।
स्तुत्वा मोदकदास्त एव सुखिनः काश्यामवश्यञ्जनाः ।७२।

ढुण्ढिराजः प्रियः पुत्रो भवान्याशङ्करस्य च ।
तस्य पूजनमात्रणत्रयोऽपि वरदाःसदा ।७३।
गणेशः सर्वदेवानादौपूज्यः सदैव हि ।
सर्वैरपिमहाविघ्ननाशकोऽन्यत्र किन्त्विह ।७४।

ये कालराजङ्कलिकालभीषणं ह्याराधयन्तो वटकाज्यभक्तैः ।
भजन्तिकाश्यामपर्गहेतोस्त एव क्राश्यामपवर्गभाजः ।७५।
आराधितः कालरजो महेशः पापानि सर्वाणि विनाशयत्यलम् ।
मनस्तु शुद्धम्प्रकरोति येन भजत्यस्तं शिवमीशितारम् ।७६।
ये दण्डपाणिं द्विजभोजनाद्यैर्भजन्ति काशां सुखवासहेतोः ।
ते विघ्नपूगान्परिहृत्य दूरादारात्पदं शाश्वतमाप्नुवन्ति ।७७।

दण्डपाणिभजनं सुखावहं सम्भ्रमोद्भ्रमविकारनाशकम् ।
भक्ष्यभोज्यसुखमोक्षदं यतस्तद्विना भवति चाऽकुलाकुलः ॥ ७८ ॥
लोकार्कादिरवीन् रवौ सुमधुरैर्दुग्धादिभिस्तुद्विजा-
न्नाराध्याश्रमवासिनोऽपि सततं भावैर्भजन्ते जनाः ।
तेषां शोकरुजादिदोषनिवहान् दूरीकरोत्येकदृक्
सर्वेषामभिवाञ्छितञ्च विदध (ा) त्याराधितो भास्करः ॥ ७९ ॥

**काश्या उत्कृष्टत्ववर्णनम्**

काश्यां ये सूर्यभक्ताः शमदमसहिताः शङ्कराराधकास्ते
विष्णुम्ब्रह्माणमग्निम्विविधसुरगणांस्तेऽर्चयन्तीति नूनम् ।
आत्माऽयं स्थावराणां श्रुतिशतपठितो जङ्गमानान्तथाऽऽत्मा
शीघ्रं काश्यामवश्यम्फलति वृषफलं धर्मकामादिशुद्धम् ॥ ८० ॥
ये ये देवाः प्रार्थिताः प्राणिनां हि सिद्धिन्दद्युः प्रार्थितामन्यतीर्थे ।
तेषाम्भक्ताः प्राप्नुवन्त्येव सिद्धिमेकां काश्यां यत्र देवा अदेवाः ॥ ८१ ॥

किम्वर्णितेन वहुधा काश्यां ये वासिनः कृशाः ।
तेऽपि स्थूलतराः प्रोक्ता यतो व्यापकमूर्त्तयः ॥ ८२ ॥
काशीस्थजन्तुजातस्य सेवकः शिवसेवकः ।
काशीवासिविरोधेन विरोधो हि भवे भवे ॥ ८३ ॥

काशीकथाश्रवणमङ्गलपूर्णमूर्तिर्मूर्तः स एव भगवान् शिवशान्तमूर्तिः ।
ते पापराशिमपहृत्यपरम्प्रियस्य शुद्धातिशुद्धसुखरूपपदम्भजन्ते ॥ ८४ ॥
वेदैः पुराणैः स्मृतिभिः सुखं समुपदिश्यते चतुर्विधन्तत्तु सुखं काशिका सम्प्रयच्छति॥
तीर्थान्तराणि सुखदानि भवन्त्यवश्यं काशी सुखादिसकलम्प्रविनाश्य तद्धि ॥ ८५ ॥
किञ्चित्प्रयच्छति तु येन स तीर्थवासी जानाति नैव बहिरर्थमनर्थहेतुम् ॥ ८६ ॥

**दीपकन्मतिगुरोः काशीवासायाऽऽदेशवर्णनम्**

शिष्य उवाच

कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोस्मि जगद्गुरो ! ।
त्वत्प्रसादान्मया काशीरहस्यं श्रुतमद्भुतम् ॥ ८७ ॥
नैष्ठिकम्ब्रह्मचर्यस्य धर्मस्य परिपालने ।
बुद्धिर्मम दृढ़ाभूयात्तवाऽनुग्रहतो गुरो ! ॥ ८८ ॥

गुरुरुवाच

कथन्त्वमुपकुर्वाणः पूर्वन्नाद्य तथा भवान् ।
स्नात्वा दारगृहं कृत्वा ह्याश्रमम्व्रज सुव्रत ! ॥ ८९ ॥

शिष्य उवाच

गुरुसेवांकाशिसेवाञ्चिन्तायुक्ता न कुर्वते ।
चिन्ताचक्रं गृहंहित्वा सुखं स्थास्यऽविमुक्तिदे ॥ ९० ॥

गुरुरुवाच

धन्योऽस्यवश्यन्धर्मात्मा गुरुभक्तो महामतिः ।
तिष्ठ काश्याम्भज शिवौ गङ्गां स्नाहि हरिं स्मर ॥९१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तो गुरुणा शिष्यो दीपकः कुलदीपकः ।
गुरुसेवापूर्वकञ्च स सर्वं समकल्पयत् ॥ ९२ ॥
पुनः प्रोवाच तं शान्तम्वेदधर्मा महामुनिः ।
भक्तिमन्तं शिष्यवर्यं काशीवाससुखाप्तये ॥ ९३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

# अथ चतुर्थोऽध्यायः

## कलेर्दोषास्तद्दोषग्रस्तस्य मोचनोपायः

गुरुरुवाच

श्रृणु त्वं कलिदोषान्हि प्रसरन्ति यतस्ततः ।
ताञ्ज्ञात्वा वर्जनात्पापान्मुच्यते साधवः सदा ॥ १ ॥
पापिनाङ्कुवंभक्तानां श्रवणम्विघ्नितम्भवेत् ।
तस्माद्गुरुम्प्रपद्येत श्रवणेच्छुः सुपण्डितम् ॥ २ ॥
पण्डितोऽसिमहाप्राज्ञ ! धर्ममूलविचारक ! ।
त्वदग्रे कथयिष्यामि सूतोक्तामृषिसंसदि ॥ ३ ॥
कथांकलिप्रसङ्गेन काशीस्थितिविधायिनीम् ॥ ४ ॥

ऋषयऊचुः

कलिदोषगुणग्रस्तो नरो मुच्येत्कथञ्चन ।
वद तत्सूत सर्वज्ञ ! गुर्वनुग्रहभाजन ! ॥ ५ ॥

सूतउवाच

श्रृण्वन्तु ऋषयः सर्वे गुर्वनुग्रहमद्भुतम् ।
विद्यामानेषु मुनिषु पैलादिषु तपस्विषु ॥ ६ ॥
विलोमजन्दीनतरस्माम्विलोक्य महातपाः ।
कृष्णद्वैपायनो विष्णुर्माम्वक्तारञ्चकार ह ॥ ७ ॥
अष्टादशपुराणानि सेतिहासानि चानघाः ।
उपदिश्याऽवदद्देवः श्रावयस्व महामते ! ॥ ८ ॥
भवन्तस्ततसमाः सन्तः साधवः समदर्शनाः ।
कृपयन्ति महात्मानः कथाश्रवणतत्पराः ॥ ९ ॥
कालः समः सत्ययुगे कलावपि हि मान्यथा ।
अधिष्ठातृष्पु वैषम्यं युगादिषु भवेत्पुनः ॥ १० ॥
सत्ये ज्ञानन्ततो धर्मंस्त्रेतायां द्वापरे मखाः ।
कलौ व्यवस्था काचिन्न दृश्यते व्याकुलात्मनाम् ॥ ११ ॥

देह एव कलावात्मा सुखन्देहस्य लालनम् ॥ १२ ॥
यथाकथञ्चिद्धि धनस्य सङ्ग्रहः कलौ नृणाम्पुरुषार्थंपरोऽयम् ।
धनं कुलन्धनमायुर्धनेन मान्या लोकाः स्युः पापरूपातिनीचाः ॥१३॥
कलौ द्विजाः शूद्रवदाचरन्तो हसन्ति वेदान्विषयेषु सक्ताः ।
शूद्रा रहस्यम्प्रविचारयन्ति श्रुतेः श्रुतिं धर्मंपरास्त्यजन्ति ॥ १४ ॥
कृत्वा बहूनि पापानि काश्यामेव कलौ यदि ।
म्रियते यातनान्ते हि शुद्धो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥
कलावन्यत्र पापानि करोति यदि पापकृत् ।
तान्येव मानवम्पापे प्रेरयन्ति पुनः पुनः ॥ १६ ॥
तैः प्रेरितो विशत्यन्धन्तमः शोकभयापहम् ।
न पारं संसृतेर्याति कलौ पापकृदुन्मदः ॥ १७ ॥

**कलिदोषमोचनविषये गुरुशिष्य सम्वादवर्णनम्**

गुरुरुवाच

एवम्विधाः सुबहवो धर्माः सूतेन संसदि ।
मुनीनां कथिता वत्स ! कलिदोषगुणैःसह ॥ १८ ॥
तत्रैव श्रुतवानस्मि द्वापरान्ते बहूंस्ततः ।
तच्छ्रुत्वा काशिकाम्प्राप्तस्त्वया सह विकम्पितः ॥ १९ ॥

दीपक उवाच

कृपाकर ! कलेर्दोषान्गुणान्वदविदाम्वर ! ।
सूतोक्तान्काशिसम्वद्धान्धर्मांश्च कलिनाशकान् ॥ २० ॥
जितेन्द्रियाः पापविवर्जकाश्च शान्ता महान्तो मधुसूदनाश्रयाः ।
अन्येषु तीर्थेष्वपि मुक्तिभाजो भवन्ति काश्यामपि को विशेषः ॥ २१ ॥

श्रीगुरुरुवाच

कामक्रोधादयो दुष्टाः सूक्ष्मच्छिद्रनिरीक्षकाः ।
प्रविशन्तिच सर्वेषु क्रियासु महतामपि ॥ २२ ॥
बहवःशत्रवो दुष्टा बाह्यान्तःकरणेषु च ।
प्रविश्य धीरमप्याशु न धीरं कारयन्ति हि ॥ २३ ॥
एकेन बहवो धूर्ता निवार्यन्ते कथम्वद ।
महानपि महामोहं याति धीरतरोऽपि हि ॥ २४ ॥

यैर्वञ्चितः प्रपतति व्यग्रःसंस्कारतो वशी ।
विशेषं शृणुवक्ष्यामि काश्याः कथयतो मम ॥ २५ ॥
जितेन्द्रियत्वन्धीरत्वमन्तःकरणनिग्रहः ।
तपो जपः स्वधर्मश्चदानं योगादिकाःक्रियाः ॥ २६ ॥
निर्वाणसुखपूगस्य साधनानि भवन्त्युत ।
तथापि वासनाजालं न विमुञ्चति मानवम् ॥ २६ ॥
कृतानि साधनान्यत्र स्वल्पान्यपि महामते ! ।
भवन्ति काशिमाहात्म्यात्सिद्धान्येव न संशयः ॥ २८ ॥
अन्यत्रसाधुसुकृतैः कृतैर्मुच्येत वा नवा ।
भोगेच्छाग्रस्तहृदयः सा पीच्छाऽत्र निवर्त्तते ॥ २९ ॥
मुमुक्षोः प्राणिमात्रस्य पापाद्भीरोः शिवात्मनः ।
जाते साधनवैकल्ये काशी पूर्णम्प्रकल्पयेत् ॥ ३० ॥
तीर्थान्तरेषु वैकल्याद्विघ्नः सञ्जायते नृणाम् ।
मुमुक्षवः सावधानाः पापसंसर्गवर्जकाः ॥ ३१ ॥
पश्यन्ति शीघ्रम्मनुजास्तद्विष्णोःपरमम्पदम् ।
अतएव विचित्रेयं काशी शीघ्रफलप्रदा ॥ ३२ ॥
सेव्या धीरैर्मोक्षपरैर्न पापैः पापिसङ्गिभिः ॥ ३३ ॥
कलौ न काशीम्विसृजेत्कथञ्चिन्मुमुक्षुरव्यग्रमना मनागपि ।
धैर्यम्बिधायाऽत्र यथाकथञ्चित्स्तेयम्विचार्याऽऽशु कलिप्रभावम् ॥ ३४ ॥
कालस्तु भगवान्विष्णुः समः सत्यादिनामसु ।
युगेषु प्राणिनो वत्स ! विषमा विषयग्रहाः ॥ ३५ ॥

**कलिदोषमोचयविषयेऽपूर्वेतिहासवर्णनम्**

प्राप्नुवन्ति फलन्तत्रयथा यद्यदनुष्ठितम् ।
कलिकालस्तथा काशी पापाद्भीतम्मनोयदि ॥ ३४ ॥
एतत्त्रयसमायुक्तो नरो जीवन्विमुच्यते ।
अत्र ते कथयिष्यामि कथाम्पापापनोदिनीम् ॥ ३७ ॥
यां श्रुत्वा मुच्यते जन्तुः सन्देहविषयैरघः ।
अस्ति माहिष्मती नाम नगरी नर्मदातटे ॥ ३८ ॥
तत्र कश्चिद्द्विजवरो विष्णुशर्मेति कीर्तितः ।
वेदयज्ञतपोदानस्वधर्मैः संयुतो वशी ॥ ३९ ॥

तस्य पुत्रौ महात्मानौ वीतरागौ मनस्विनौ ।
अग्निशर्माऽभवज्ज्येष्ठः सोमशर्मातथैवच ॥ ४० ॥
गतौ तौ प्रत्यहन्तीरं शुभं श्रवणतत्परौ ।
रेवायाः शिवविष्णवर्ककथापूरविराजितं ॥ ४१ ॥
ब्रह्मवादः समभवत्कदाचित्तत्रबन्धनुत् ।
कथम्बन्धविनिर्मुक्तः कथं शान्तिसुखन्नृणाम् ॥ ४२ ॥
कथन्निर्विघ्नता भूयात्तपसस्तापहारिणः ।
यत्र तीर्थविशेषे तु स्वल्पम्वहुकृतम्भवेत् ॥ ४३ ॥
यत्र नारायणः साक्षाद्दृश्यतेचाऽनुभूयते ।
यत्रदेवी महादेवः सोमः साक्षात्कृपानिधिः ॥ ४४ ॥
साक्षात्क्रियेत सर्वात्मा बिघ्नविघ्नो गणाधिपः ।
यत्र तु द्वादशादित्या ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ ४५ ॥
भजतां सर्वलोकानांसिद्धि यच्छन्ति मानिताः ।
एवम्प्रश्नसमवायं कथयन्तु द्विजातयः ॥ ४६ ॥

गुरुरुवाच

एवम्परस्परन्दृष्ट्वा तूष्णीम्भूतान्द्विजर्षभान् ।
शैवो मृकन्डुतनयः स्मृत्वा वचनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अहो माया भगवती विष्णोर्मोहकरी नृणाम् ।
अवियुक्ते विद्यमाने ब्रह्मविष्णुशिवाश्रये ॥ ४८ ॥
मृगयन्त्यघनाशाय भोगम्मोक्षम्विमोहिताः ।
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे श्रुतिस्मृतिनिरूपितम् ॥ ४९ ॥
रहस्यं कथयाम्यत्र ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।
महापातकसंयुक्तो महापुण्यसमन्वितः ॥ ५० ॥
समां गतिमवाप्नोति शरीरव्ययमात्रतः ।
ब्रह्मानन्दस्य जननी ब्रह्मादिपरिसेविताम् ॥ ५१ ॥
सुकृतैः सर्वतः पूर्णाम्पापद्वेष्ट्वाऽऽश्रयेन्नरः ।
रागादिमलनिर्मुक्तधियां शीघ्रम्फलप्रदाम् ॥ ५२ ॥
तां काशी को न सेवेत वर्णाश्रमविभागवान् ।
इत्यादिबहुसाहस्रगुणाः प्रोक्ता महर्षिणा ॥ ५३ ॥

श्रुता महर्षिभिः श्रेष्ठैर्विष्णुशर्मसुतैरपि ।
तेष्वग्निशर्मा च तथा सोमशर्मा विचारकः ॥ ५४ ॥
प्राप्तौ फलम्बिलम्बेन शीघ्रेण च विचारतः ॥ ५५ ॥

दीपक उवाच

विचारनिष्ठौ द्वौ प्रोक्तौ फलभेदः कथन्तयोः ।
को वा विचारस्तु तयोः फलम्वा किं समापतुः (?) ॥ ५६ ॥

ब्रह्मोवाच

इति शिष्येण स गुरुः पृष्टः प्राह फलन्तयोः ।
शीघ्रम्बिलम्बेन तथा सोमाग्निशर्मणोः पृथक् ॥ ५७ ॥

**भ्रातोरग्निशर्मशर्मणोः काशीवार्तावर्णनम्**

वेदधर्मोवाच

भ्रातरौ परमस्निग्धौ कदाचिन्नर्मदातटे ।
उपविष्टौ मोक्षपरावूचतुस्तौ परम्परम् ॥ ५८ ॥

अग्निशर्मोवाच

सोमशर्मन्महाप्राज्ञ ! गमिष्यामि हरेः पुरीम् ।
वाराणसीम्मोक्षकामो विश्वेशादिभिरर्चिताम् ॥ ५९ ॥
त्वमप्यागच्छ शैघ्र्येण यत्र मोक्षः प्रलभ्यते ।
न्यूनातिरिक्तन्तपसो धर्मस्याऽन्यस्य शङ्करः ॥ ६० ॥
विगुणं सद्‌गुणंकुर्यात्परमात्मा जनार्दनः ॥ ६१ ॥

सोमशर्मोवाच

मया रेवातटे भ्रातस्तप्तव्यन्तप उत्तमम् ।
मोक्षादिसिद्धयो येन प्राप्यन्ते विजितेन्द्रियैः ॥ ६२ ॥
रागद्वेषविहिनानाञ्चिन्ताचाञ्चल्यवर्जिनाम् ।
सर्वत्र काशी विज्ञेया ब्रह्मज्ञानरतात्मनाम् ॥ ६३ ॥

अग्निशर्मोवाच

मार्कण्डेयमुखाच्छ्रु त्वा रहस्यं काशिसंश्रयम् ।
तथाऽपि स्ववलेन त्वम्मोक्षं साधितुमुद्यतः ॥ ६४ ॥
गन्तव्या काशिकानौका मज्जताम्पारदायिनी ।
मया धर्मासमर्थेन वीतरागेण धार्मिक ! ॥ ६५ ॥

न काशीसदृशीं माता गर्भवासप्रदायिनी ।
गर्भवासादिदुःखानि पापानि च महान्त्यपि ॥ ६६ ॥
क्षालयत्येव निर्दिष्टा दुष्टानामपि सेविता ।
कलिकालस्त्वयन्तीक्ष्णः क तपः क परात्मदृक् ॥ ६७ ॥
काश्येव शरणं शुद्धिका मलिनां नृणाम् ।
इत्युक्त्वा भ्रातरम्विद्वानग्निशर्मा महामतिः ॥ ६८ ॥
जगाम काशीं धर्मादिसाधनैः पूर्णविग्रहाम् ।
काश्यामागत्य धर्मेशं नत्वा धर्मपरो वशी ॥ ६९ ॥
सधर्मविद्धर्मपरो महात्मा सुमानदो मानविवर्जितस्स्वयम् ।
शृण्वन्कथाः श्रावयन्काशिकायाः कुर्वन्वृषान्कारयन्वासमाप ॥ ७० ॥
वचोमनः कायगुणैः परेशं धर्मेश्वरम्प्रीणयन्प्राप्तत्त्वः ।
वसत्यवश्यं शिवनामतत्परः पापार्त्तिदुःखादिविवर्जितः कृती ॥७१॥
एवं स्वधर्मनिरतो ह्यग्निशर्मा शिवार्चक ।
प्राप वाराणसी शुद्धः शुद्धिदां साधुसम्मतः ॥ ७२ ॥
प्राणोत्क्रमणकाले तु भवान्या तु भवः स्वयम् ।
व्याचष्टे तारकम्ब्रह्मस्थिति तस्य सुवर्णयन् ॥ ७३ ॥

श्रीईश्वर उवाच

अहो निश्चयवान्विप्रः काश्यां सद्भिः समादृतः ।
प्राप माम्परमात्मानं शास्त्रदृग्लौल्यवर्जितः ॥ ७४ ॥
एवमेव महाभागा मम क्षेत्रनिवासिनः ।
अग्निशर्मा यथा प्राप्तः प्राप्स्यन्ति परमम्पदम् ॥ ७५ ॥
रागद्वेषविवर्जिता दृढधियो धर्मेषु पापेष्वपि
ग्राह्याग्राह्यविचारतः सुमनसः सिद्धिम्परां यान्ति ते ।
ये तु प्राप्य मनुष्यदेहममृतं निस्कास्य हालाहलम्
सम्पूर्याऽत्र परत्र यान्ति विषमान्ताम्भैरवीं यातनाम् ॥७६॥
अतएव वसेत्काश्यां यावज्जीवञ्जितेन्द्रियः ।
यथाऽग्निशर्मणा प्राप्तम्मक्षु ब्रह्म सनातनम् ॥ ७७ ॥

वेदधर्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुरानन्दगहने चरन् ।
देव्यै सन्दर्शयामास सौभाग्यं काशिवासिनाम् ॥७८॥

दीपक उवाच

भगवन्छ्रोतुमिच्छामि सोमशर्मकथाम्पुन ।
यथा तप्त्वा तपः प्राप गतिन्तां कथय प्रभो ! ॥ ७९ ॥

गुरुरुवाच

सोमशर्मा विप्रवर्यश्चचार विपुलन्तपः ।
अद्रिकूटेषु तीर्थेषु तथा क्षेत्रेषु चाऽऽत्मवान् ॥ ८० ॥
शाकाहारः फलाहारो वायुभक्षो जलाशनः ।
जितेन्द्रियमनोबुद्धिर्विदितात्मा स चाऽऽत्मवान् ॥ ८१ ॥
बहुप्रकारम्महतीं सिद्धिम्प्राप यदृच्छया ।
दूरदर्शनदूरस्थश्रवणं दूरगामिता ॥ ८२ ॥
अन्याश्च सिद्धयः प्राप (ह्रीः सन्प्रात्य) तत्परः समजायत ।
मानयन्ति ततो लोका मुनयो देवतागणाः ॥ ८३ ॥

**तपस्ततपः सिद्धिमधिगतस्यसोमशर्मणोवर्णनम्**

सोमशर्माणमत्युग्रसाधनं गर्वगर्वितम् ।
कञ्चिच्छपति विश्वस्तमनुगृह्लाति कञ्चन ॥ ८४ ॥
कञ्चिद्दरिद्रं कुरुते धनिनं कञ्चिदेव तु ।
पुत्रपौत्रादिसम्पन्नं करोति कमपि स्फुटम् ॥ ८५ ॥
निगृहात्यनुगृहाति लोकांल्लोकैश्च सेवितः ।
गर्वपर्वतमारूढो न पश्यति पुरः सतः ॥ ८६ ॥
नानाविषयसम्भार सम्पन्नस्त्रीभिरन्वितः ।
दिवानिशस्विस्मृतात्मगतिस्तापससत्तमः ॥ ८७ ॥
भक्ष्यभोज्यपरो नित्यम्भोगसौभाग्यगर्वितः ।
जातो न मानयत्येव पितृन्देवान्गुरूनपि ॥ ८८ ॥
कदाचिद्भ्रातरं काश्यां स्थितं दीनधिया स्मरन् ।
नाशितं जन्म मद्भ्रात्रा दीनेनाऽनित्यदर्शिना ॥ ८९ ॥
तपः फलम्मया प्राप्तं यस्य सर्वम्वशं जगत् ।
भोगान्भुक्त्वा ततश्चाऽन्ते यास्यामि परमाङ्गतिम् ॥ ९० ॥
अथ काल उपावृत्ते कालधर्ममुपेयिवान् ।
स्मरन्नानाविधान्भोगान्पञ्चत्वं प्राप तापसः ॥ ९१ ॥

जातो म्लेच्छमहीपालः सिन्धुतीरेऽतिलोलुपः ।
पुनर्यथेष्टाचरणान्नरके विनिपातितः ॥ ९२ ॥
अतएव तयोर्भ्रात्रोर्विरुद्धा मतिरादितः ।
श्रुता त्वया काशिवासिन्विचारय बलाबलम् ॥ ९३ ॥
यः स्वात्मनि समारोप्य वर्तते कामकारतः ।
कर्तृत्वं स महापापो वर्तते सोमशर्म्मवत् ॥ ९४ ॥
सोमशर्मा महाभागस्तपस्वी कुलशीलयुक् ।
तपसा सिद्धिमासाद्य सिद्ध्याभोगान्समाप्य च ॥ ९५ ॥
भोगैर्विषयतादात्म्यन्तादात्म्यान्नरकम्पुनः ।
अतः कलौ तपो विद्यायज्ञदानादिकाः क्रियाः ॥ ९६ ॥
साङ्गा भवन्ति न कृताः कुशलैरपि देहिभिः ।
तस्मात्काश्येव हि कलौ सुकृता पूर्तिकारिणी ॥ ९७ ॥
आत्मासम्भावितोयस्मात्तस्मात्स नरकङ्गतः ।
नरके पच्यमानस्य भ्रातुः स्मरणमागतम् ॥ ९८ ॥
मद्भ्राता काशिकायां यस्तिष्ठत्येव विरक्तिभाक् ।
स धन्यो येन तपसा परलोकः सुसाधितः ॥ ९९ ॥
इति स्मरन्नेव स सोमशर्मा शान्तः सुखम्प्राप मनोऽनुकूलम् ।
विचारयास किमेतदद्भुतं कस्य प्रभावात्सुखमुत्थितन्त्विह ॥ १०० ॥
अहो मयाऽऽत्मा परितापितो वृथा तपोभिरुग्रैर्नियमैर्यमैश्च ।
न भ्रातुराज्ञा सुकृता दुरात्मना महाभिमानात्पतितात्तमोऽन्धं ॥ १०१ ॥
महासिद्धिप्रदां काशीं न सेवन्ते दुरात्मनः ।
महातपोभिरुग्रैश्च साधयामो वदन्ति ये ॥ १०२ ॥
साभिमानाः पतन्त्यन्धं यथाहन्तेऽपि मानवा ।
न तपो न जपः शौचं तीर्थदानव्रतादयः ॥ १०३ ॥
नाशयन्ति महाज्वालामभिमानानलैर्युताः ।
अहोलोकाः काशिकाया माहात्म्यं न विदुःपरम् ॥ १०४ ॥
अज्ञातेनाऽपि येनाऽऽशु मोचितोऽस्म्यभिमानतः ॥ १०५ ॥
ज्ञात्वा काश्यां श्रद्धया ये वसन्ति तेषापुण्यम्वेत्ति नो कश्चिदत्र ।
नानातापैस्तुप्यमानैः सुभीमैर्यन्नाम्नाऽहं मोचितो गर्वराशिः ॥१०६॥

काशी काशीति काशीति बहुधा संस्मरन् द्विजः ।
न पश्यति हि नरकान्वर्तमानान्स्वयं कृतान् ॥ १०७ ॥

गुरुरुवाच

यमदूतैस्तदाश्चर्यं दृष्ट्वा विज्ञापितो यमः ।
शास्यमानोऽप्ययम्विप्रो न शास्तिम्परिपश्यति ॥ १०८ ॥
आक्रन्दरहितो जातः प्रसन्नवदनः सुखी ।
केन पुण्यविशेषेण मध्यआश्चर्यकारिणा ॥ १०९ ॥

**धर्मराजसोमशर्मणोः सम्वादवर्णनम्**

धर्मराज उवाच

न जानाम्यहमप्याऽऽशु सूक्ष्मम्पुण्यम्विचारयन् ।
आनीयतां सोमशर्मा ममाग्रे सत्वरम्भटाः ! ॥ ११० ॥
इत्युक्ता यमदूतास्ते यमेन यातनागृहात् ।
आनिन्युर्ब्राह्मणं शीघ्रं काशीकाशीति जापकम् ॥ १११ ॥
अभिमाननिधे ! विप्र ! किंस्मरस्यत्र मद्गृहे ।
वद ते यातना बह्व्यः समाप्तिकथमागताः ॥ ११२ ॥

सोमशर्मोवाच

ताड्यमानोऽहमनिशं यातनासु बिचित्रधा ।
स्मृतवान्भ्रातरं स्वीयमग्निशर्माणमस्मि भो ! ॥ ११३ ॥
तेनोक्तम्पूर्वमेवाऽऽशु काशीमागच्छयास्यहम् ।
मया पापात्मना काशी निन्दिताऽहं कृतात्मना ॥ ११४ ॥
स्वसामर्थ्यम्प्रकटितन्तथा वस्तुस्वरूपया ।
अभिमानकृतैर्धर्मैस्तपोभिस्तीसुव्रतैः ॥ ११५ ॥
म्लेच्छत्वम्प्रापयित्वाऽऽदौ नरके विनिपातितः ।
न पापम्ब्रह्महत्या स्यान्न पापं गोवधःस्मृतः ॥ ११६ ॥
देहाभिमानपापस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
नाश्वमेधः परम्पुण्यं तुलादानादिसम्भवम् ॥ ११७ ॥
गोसहस्रादिजनितं यथाहङ्कारवर्जनात् ।
अहन्तपस्वी पुण्यात्मा जितेन्द्रियगणस्त्वहम् ॥ ११८ ॥
अहन्धीरो व्रती शान्तः साधयिष्ये परम्पदम् ।
मनस्यभिमति कृत्वा त्यक्त्वा भ्रातरमात्मनः ॥ ११९ ॥

स्थितोऽसत्सङ्गतिरतः प्राप्तश्चोग्रा हि यातनाः ॥ १२० ॥

धर्मराज उवाच

गच्छ काशीम्मुक्तिदात्रीम्भजस्वाऽम्बायुतं शिवम् ।
स्नाहि भागीरथीं रम्यां सम्प्राप्नुहि परम्पदम् ॥ १२१ ॥

गुरुरुवाच

धर्मराजाज्ञया जातो विप्रः कोलापुरे शुभे ।
तारुण्यम्प्राप सर्वात्मा गतो वाराणसीम्पुरीम् ॥ १२२ ॥
सुशर्मणः सुतः सोऽथ सर्वात्मा शिवाभक्तिमान् ।
धर्मेश्वरप्रसादेन प्राप्तः काशीम्विमुक्तिदाम् ॥ १२३ ॥
अहङ्कारादिदोषाणां नाशकर्त्रीं नृणामिह ।
धर्मज्ञः को न सेवेत कृतज्ञः साधुसत्कृतः ॥ १२४ ॥
सोमशर्मकर्मकथादिव्यां सुखमोक्षफलप्रदाम् ।
श्रुत्वा विमुच्यते जन्तुरहङ्कारान्दिवन्धनात् ॥ १२५ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते काशीरहस्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

# अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलिदूषणविषये गुरुशिष्यसम्वादवर्णनम्

गुरुरुवाच

सन्ध्यासन्ध्यान्तयोस्तात ! कलौ धर्मो हि दृश्यते ।
मध्ये क्रमात्क्षयं याति दीनैर्विपर्ययिभिर्हतः ॥ १ ॥

दीपक उवाच

सन्ध्यायाम्पूर्वसंस्काराद्ध्रियते हि बृषः कचित् ।
सन्ध्यान्ते तु कलौ कुत्र धर्मः स्थास्यति सद्गुरो ! ॥ २ ॥

गुरुरुवाच

जनार्दनः कल्किरूपोऽवतरिष्यति दीपक ! ।
तेन प्रवर्तितो धर्मः सन्ध्यान्ते सम्भविष्यति ॥ ३ ॥
कलेस्तु प्रथमे पादे धर्मो भवति कश्चन ।
ततश्चानुदिनन्धर्मः सत्यं शौचन्दया तथा ॥ ४ ॥
कालेन वलिना विप्र नश्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ ५ ॥
वित्तं गुणाचारकुलादिहेतुर्न्यायव्यवस्थासु बलम्प्रयुञ्जते ।
दाम्पत्यमेवाऽत्र रुचिङ्करोति पुज्याञ्चपाखण्डियन एव सर्वे ॥ ६ ॥
यज्ञोपवीतं द्विजहेतुरेव लिङ्गं हि वर्णाश्रमकारणं स्यात् ।
अनाढ्य एवाऽत्र कलावसाधुराढ्यस्तु साधुः कृतदम्भ एव ॥ ७ ॥
अभ्यङ्गमेवाऽत्र परस्परं सदा ह्यलङ्कृति श्मश्रुकर्मातिसौख्यम् ।
तीर्थप्रदेशेव (ष्व) सतान्नृणान्नहि श्रद्धस्वतीर्थेषु कदाचिदत्र ॥ ८ ॥
देशान्तरं कामदम्वर्णयन्ति गत्वा च तत्राऽप्यपराधयुवताः ।
कलौकलुष चित्तानाम्पुरुषार्थः परो हि सः ॥ ९ ॥
यथाकथञ्चित्पुरुषः कुटुम्बभरणोद्यतः ।
सत्यवादी जनैर्धृष्टः प्रोच्यते पापवानपि ॥ १० ॥
कलौ धर्मः सुविरलो यथोऽर्थे यत्र तिष्ठति ।
राजानो निर्घृणा लुब्धाः परदार धनारताः ॥ ११ ॥

न ब्राह्मणा वेदवेदार्थनिष्ठाः प्रतिग्रहार्थम् श्रुतिधर्मयुक्ताः ।
विक्रीय कन्याश्च सुतान्परस्परं कुलाद्युपेक्ष्यैव विवाहकारिणः ॥१२॥
वदन्ति धर्मन्नतु धर्मनिष्ठा निन्दन्ति पापं खलु पापकारिणः ।
देवान्गुरून्पितृयज्ञादिसर्वान्प्रपञ्चन्ते धनलोलुपा द्विजाः ॥ १३ ॥
क्षत्रियाः परमदुर्लभाः कलौ धर्मशास्त्रगुरुदेवपूजकाः ॥ १४ ॥
आहारमैथुनरताः परमादरेण ब्रह्मस्वसंग्रहपराःपरवादशूराः ।
न प्राणिरक्षणपराः परमादरेण कुर्वन्ति धर्महननन्द्रविणार्थमेव ॥१५॥
पैशून्यवञ्चनपरा वणिजो नृपाद्या धर्मादिकार्यकरणे परमात्मनिष्ठाः ।
आहारमैथुनधनानि सदाऽऽदरेण रक्षन्ति शास्त्रविमुखाः पलमद्यभक्षाः ॥१६॥
वैश्याः कलौ नहि भवन्ति कुलादियुक्ता ये वा भवन्ति नहि तेषु वृषः कदाचित् ।
शूद्रादिवृत्तय इमे द्विजदेवनिन्द्या विप्रद्विषः परमदारुणबुद्धयश्च ॥ १७ ॥
शूद्रास्त्वन्नं स्वल्पमेव दत्वा विप्रेभ्य एव हि ।
कारयिष्यन्ति महतीं सेवां सेवाविवर्जिताः ॥ १८ ॥
अन्नादिभिर्व्यवहरन्ति तु ये मनुष्या वैश्या भवन्ति खलु ये व्यवहारदुष्टाः ।
शिष्टास्तएव धनिनस्तु यतः सुपूज्या लोके धनं सुखकरन्ननु तिष्यकाले ॥१९॥
शूद्रा विशुद्धा न हि तिष्यकाले द्विजादिवेषाः श्रुतितत्पराश्च ।
शास्त्रार्थवादैर्जनवञ्चकाश्च कलौ भविष्यन्ति निरङ्कुशास्ते ॥ २० ॥
कलौ दुष्टा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः ।
दुर्भगा भूरितर्षाश्च सर्वे वर्णास्तथाश्रमा ॥ २१ ॥
तदा मायाऽनृतन्दम्भो निद्रा हिंसाविषादनम् ।
शोको मोहो भयन्दैन्यं लोकानां प्रचुरम्भवेत् ॥ २२ ॥
क्षुद्राः क्षुद्रसुखप्रदाः कलियुगे मर्त्या महाभोजनाः
क्षुद्रप्राणधनादिपोषणपराः कामाधिकाः क्रोधिनः ।
लोभाविष्टमनोजुषः परदयाहीनाः सदा वञ्चका-
रागद्वेषपराः परापरविचाराद्यैः सदा चोज्झिताः ॥२३॥
वित्तैर्हीनाः स्वैरवृत्तिप्रसङ्गाः स्वैरिण्यश्च स्त्रीषु या श्रेष्ठवर्णाः
दत्यूत्कृष्टा लोकसङ्घाः सपापा वेदाः क्षीणा ब्राह्मणाः सेवकास्ते ॥२४॥
कलौ न विप्राः समयस्थिताः कचिन्नृपाः प्रजाभक्षणवित्तलोलुपाः ।
व्रतादिहीना बटवो विशुद्धा गृहस्थरूपाः खलु तस्करा मताः ॥२५॥

वनेन वासो बत धासिनां हि धनार्थिनः प्रव्रजिताः कलौ युगे ।
ह्रस्वाःस्त्रियो विपुलम्भक्षयन्ति बालाः क्षुधार्ता बटवः कदर्याः ॥२६॥
वचांसि तिक्तानि वदन्ति चाङ्गनाश्चौर्यादिवीभत्सनिषिद्धकर्त्र्यः ॥२७॥

पाखण्डप्रभवा विप्राः क्षत्रियो वणिजो मताः ।
वणिजः कूटकर्तारः सम्पदः पापहेतवः ॥ २८ ॥
पतिन्त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ।
भृत्यम्विपन्नम्पतयः कौलं गाञ्चापयस्विनीम् ॥ २९ ॥
पितृपक्षम्परित्यज्य भार्यापक्षम्भजन्ति हि ।
गुरुवाक्यं न कुर्वन्ति स्त्रीणां दास्यपरा नराः ॥ ३० ॥
शूद्राःप्रतिग्रहपरा निर्णयज्ञास्तपस्विनः ।
नानावेषैर्वञ्चयन्तो लोकान्वाक्पाटवैः शनैः ॥ ३१ ॥
प्रायश्चितं करिष्यन्ति पापं कृत्वाऽपि नो जनाः ।
धर्मंस्वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३२ ॥
स्वमानार्थं यत्नपरा महत्सु द्विजसाधुषु ।
प्रजाः कलौ पापशिला अतो दुःखसमन्विताः ॥ ३३ ॥
नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरकर्शिताः ।
निरन्ने भूतले मंक्षु व्याधिदस्युभयार्दिताः ॥ ३४ ॥
वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ।
हीनाः पिशाचसन्दर्शा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ ३५ ॥

काकिन्यर्थे जीवनं सन्त्यजन्ति स्नेहं हित्वा वन्धुभिस्ताड्यमानाः ।
रागद्वेषाक्रान्तदेहाः पतन्ति कूपे भक्ष्यं भक्षयन्तो म्रियन्ते ॥ ३६ ॥

पितरम्मातरञ्चैव न सेवन्ते कदाचन ।
पुत्रदारपराधीना मैथुनादिप्रियाः सदा ॥३७॥
कलौ कृतघ्नाः पाखण्डा उपकारविहिंसकाः ।
उपकारेऽपि कृपणाः प्रतिकारविवर्जिता ॥३८॥
उपकारे महति च स्वल्पोपकृतिवर्जिताः ।
निर्लज्जा विष्णुशिवयोर्द्रोहिणः काश्यसम्मतः ॥३९॥

**कलौधर्मापकर्षत्व वर्णनम्**

शिष्य उवाच

गुरो ! श्रुत्वा कलेर्धर्मान्सत्यमेव दिने दिने ।
सर्वग्रासे समुत्पन्ने न शास्त्रं न गुरुः शिवः ॥४०॥

स्मरणीयानि लोकस्य ग्रस्तस्य मुढचेतसः ।
त्वं नश्चक्षुः परम्पुण्यं ,येन पश्यामहे वयम् ॥४१॥
प्रकाशय परं ज्ञानमज्ञानध्वान्तनाशनम् ॥४२॥

गुरुरुवाच

कलौ न वर्णाश्रमधर्मतत्पराः सच्छास्त्रसत्सङ्गविवर्जितास्तथा ।
अतो महापापमये हलाहले कलौ शरण्या किल काशिकैव ॥४३॥
यथा पराभूय जनाः शरण्यं गच्छन्ति शीघ्रम्परमार्तियुक्ताः ।
तथाऽतिशीघ्रं शरणप्रदां नृणां काशीम्प्रगच्छेच्छिवराजधानीम् ॥४४॥
मनुष्यदेहे सुरदेवपूजिते सुकर्मभूमौ विविधार्तिनाशने ।
स्थितो हि जीवः समुपेक्षणीयो भवेन्न बाल्यादिषु वै कदाचित् ॥४५॥
सम्यक्कृतं लालनपालनादि यदस्य देहस्य नरैः कृतज्ञैः ।
तदोपकारः स्थिरतामुपैति देहे त्वजीर्णे यदि काशिका स्यात् ॥४६॥
कलौ न विप्रा नच बाहुजाऽ क्वचिद्व्रजन्ति काशीं न शिवौ हरिम्वृषम् ।
वैश्यादयो ये धनधान्यगेहदेहप्रियाः पापरता न भक्ताः ॥४७॥
शृण्वन्तु लोकाः परमार्तियुक्ता रहस्यमन्त्रम्परमादरेण ।
कलौ विनष्टव्रतधैर्यवीर्या गच्छन्तु काशीम्परमार्तिनाशिनीम् ॥४८॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासम्पुरातनम् ।
महासेनस्य राज्ञश्च वामदेवस्यचिद्गुरोः ॥४९॥
सम्वादः सुमहानासीत्काश्यामेव कलौ युगे ।
आसीच्चन्द्रान्वयो राजा महासेन इति स्मृतः ॥५०॥
काश्यां दुश्चरितः पापः पापिसंसर्गदूषितः ।
परदारपरद्रव्यपरः परमकोपनः ॥५१॥
कदाचित्कस्यचित्पुंसो न सन्तुष्टः कुसङ्गतः ।
कामीकलहकृत्क्रूरः कलहप्रियवल्लभः ॥५२॥
प्रजादण्डपरस्त्रैणश्चाटुचौरजनप्रियः ।
अक्षौहिणीपतिः सोऽथगतो जेतुन्नृपान्तरम् ॥ ५३ ॥
तेनराज्ञाऽभवद्युद्धञ्चितश्चाऽऽशु सुमेधसा ।
प्रतिष्ठानपतिः सोऽथ सुमेधाः शिवभक्तियुक् ॥ ५४ ॥
अविमुक्तप्रियश्चैव हाविमुक्तजनप्रियः ।
सुमेधाः स्वल्पबलवान्महासेनो महाबलः ॥ ५५ ॥

तथापि ताडिनस्तेन धार्मिकेण सुमेधसा ।
सहसेनः पलाय्याऽपि भयं हृत्स्थं न सञ्जहौ ॥ ५६ ॥
काश्याम्प्रभीतो दुःखार्त्तो लज्जितः पुनरागतः ।
वामदेवस्मुनिवरं पप्रच्छ भयकारणम् ॥ ५७ ॥

**काश्यां कलि प्रवेशोऽस्ति नयोन्निवर्णनम्**

महासेन उवाच

वामदेव ! स्थूलबलः कथमल्पैरहञ्जितः ।
परैश्च स्वबलैः क्षुद्रैः शूरोऽहं सर्वदिग्जयी ॥ ५८ ॥

वामदेव उवाच

महासेन ! महाराज ! कलिदोषोऽयमद्भुतः ।
येन त्वं कुलवीर्यादिसम्पन्नः पापमीहसे ॥ ५९ ॥
न च धैर्यं न च कुलं न च धर्मो यशोभगम् ।
कलिः प्रवर्तयेत्काऽपि विपरीतकरः सदा ॥ ६० ॥
प्रविष्टो भारते खण्डे न स्थातव्यन्तदा नृभिः ।
स्थातव्यमेव चेत्काश्यां यत्नतो धर्मवर्त्तिभिः ॥ ६१ ॥
अन्यायवर्त्तिनां काशी फलेरपि सुदुःसहा ।
त्वं काश्यास्पातकरुचिर्लोकविध्वंसकः शठः ॥ ६२ ॥
कथन्न ते पराभूतिर्देवब्राह्मणनिन्दक ! ।
आद्याऽपित्यज दौरात्म्यं भज सौशील्यमादरात् ॥ ६३ ॥
जयो यशः सुखन्धर्माजायतेऽत्र कलावपि ॥ ६४ ॥

महासेन उवाच

कलिप्रवेशः काश्यान्न श्रूयते शास्त्रतः सदा ।
काशीराजस्य च मम कलिदोषात्पराभवः ॥ ६५ ॥
कथञ्जातः काशिकायां स्थितस्याऽपि विशेषतः ।
यत्र विघ्ना न सन्त्येव तत्र विघ्नाः समागता ॥ ६६ ॥

वामदेव उवाच

पापात्मन् ! दुःखसभये कलेर्वेशो न विद्यते ।
कलिग्रस्तमनो ! धृष्ट ! देवब्राह्मणनिन्दक ! ॥ ६७ ॥

कलेः स्वरूपं शृणु मे यथाँकालात्मकस्य च ।
न कलिर्दण्डमादाय हन्ति कञ्चन मानवम् ॥ ६८ ॥
अधर्मे रमयत्येव मानसं मानुषस्य हि ।
पश्य काश्यां महाभागाः सत्यधर्मपरायणाः ॥ ६९ ॥
दानैर्व्रतैश्च नियमैः स्वाध्यायैश्चैव संयुताः ।
तेषाङ्कलिर्नप्रभवेद्विद्यमानोऽपि सर्वतः ॥ ७० ॥
पापं कृतन्तु प्रभवेत्कलिर्माऽस्तु कदाचन ॥ ७१ ॥
पुण्यं कृतञ्चाक्षयमत्र यद्वत्तथाऽत्र पापन्न विनाशमेति ।
ये शङ्कराज्ञाप्रतिपालकाः सदा न तेषु पापन्न भयम्पराभवः ॥ ७२ ॥
शिवापराधेन कलिःसमः किम्भवत्यवश्यं खलु पापरूपः ।
शिवापराधाद्द्रुहिणादयोऽपि नश्यन्ति शिष्यो ननु भृत्यभृत्यः ॥ ७३ ॥
सर्वंप्रकारैनं हि काशिकायां पापम्प्रयुक्तं (च) सुखाय भूयात् ॥ ७४ ॥
कलिर्भवतु मा वाऽत्र पापं दुःखाय केवलम् ।
पापाद्भीतः प्रवर्तस्व युद्धायाऽजिमुखे सुखम् ॥ ७५ ॥

**युद्धोद्यतयोर्महासेनसुमेधसो वर्णनम्**

महासेन उवाच

कदाचिद्ब्राह्मणाब्रूयुः काश्याम्पापं न विद्यते ।
उत्पत्तिम्पातकानाञ्च कदाचित्प्रवदन्ति हि ॥ ७६ ॥
अनन्विहम्वदन्त्येतत् बुध्यते न मया स्फुटम् ॥ ७७ ॥
पुनर्गमिष्ये हि सुमेधसं नृपञ्जेतुं द्विजानां वचनैर्न कृत्यम् ।
न मे स्वतन्त्रस्य परो गुरुः क्वचिद्राजा गुरुर्भाति यशस्विनाम्परः ॥७८॥

सूत उवाच

स्वयमेव महासेनः पार्श्वस्थानाह सर्वदृक् ।
धर्मम्प्रकल्पितन्तात ! निरङ्कुशशिरोमणिः ॥ ७९ ॥
यत्र यत्र भवताम्विचारणा तत्र तत्र परिपृच्छथाऽथ माम् ।
यानि यानि वचनान्यहं ब्रू मे तानि तानि निगमेषु दृश्यताम् ॥ ८० ॥
इत्युक्त्वा स महासेनः सेनां कृत्वा विनिर्गतः ।
सुमेधसम्विजेतुं प्राक् सभृत्यबलवाहनः ॥ ८१ ॥
अभिमानमहाज्वालादग्धदेहद्रुमोऽधमः ।
न देवगुरुवाक्यार्थे धृष्टो धैर्यविनाशनः ॥ ८२ ॥

प्रतस्थेऽधार्मिकैर्युक्तो धार्मिकैश्च विगर्हितः ।
अथाऽऽश्रुत्य सुमेधाः प्राक्‌रिपोरुद्योगमायतम् ॥ ८३ ॥
स्वसैन्येन वृतः प्रायान्महासेनवधोद्यतः ।
ब्राह्मणान्पूज्य विधिवत्काशीनाथं समर्च्य च ॥ ८४ ॥
क्षेत्ररक्षाकरान्सर्वान्सम्पूज्य श्रद्धयाऽन्वितः ।
प्रस्थितः शिवानामाङ्कसन्नाहादिर्भयोज्झितः ॥ ८५ ॥
शिवनामाङ्कितमुखाः सैन्यलोकाः सुमेधकः ।
सैन्योपकरणन्तस्य यत्किञ्चित्स महात्मनः ॥ ८६ ॥
शिवनामाङ्कितम्भाति न कलिस्यत्र विद्यते ।
कलिः प्रतिष्ठानपतिं बहुकालं समीहते ॥ ८७ ॥
प्रवेष्टुन्न समर्थस्तं शिवरूपम्महीसुराः ।
विभूतिभूषिततनुः शिवसन्नामसम्मुखः ॥ ८८ ॥
शिवाक्षमालितः सौम्यः शिवकीर्तनतत्परः ।
न विस्मरति मेधावी शिवं शिववधूम्पराम् ॥ ८९ ॥
आरभ्य बहुलं कालं कलिना धीरभीरुणा ।
प्रवेष्टुन्तु समारब्धः शिवेन परिरक्षितः ॥ ९० ॥

शिष्य उवाच

किमर्थं कलिना राजा क्लिश्यते साधुसम्मतः ।
किम्वा कलेरपकृतं राज्ञा शिवपरेण तु ॥ ९१ ॥

गुरुरुवाच

कलिना द्वापरेणाऽपि विवादः समजायत ।
विष्णुप्रजापतिक्षेत्रे द्वापरं कलिरब्रवीत् ॥ ९२ ॥
अहञ्चतुर्युगेष्वत्र समर्थः सर्वकृत्सकृत् ।
नियन्तुन्न च शक्योऽहमाज्ञापयितुमप्युत ॥ ९३ ॥
मयि जीवति लोकेशे वर्णाश्रमनिबन्धनाः ।
सेतवो भीतिमागत्य पलायन्ते दिशो दश ॥ ९४ ॥
मच्छन्दानुगतो लोकः सुखमास्ते विचारकः ।
निरङ्कुशोऽतिगहनः सर्ववस्तुषु संश्रितः ॥ ९५ ॥
वर्णाश्रमेषु लोकेषु पूरुषार्थनिरोधकः ॥ ९६ ॥

द्वापर उवाच

अहो बत ! महद्धाष्टर्यं तव दुष्टस्य दुर्मते ! ।
न लज्जसे वदन्नित्थं स्वयमेतज्जुगुप्सितम् ॥ ९७ ॥
एवं यः कथयेत्पापो वर्णाश्रमरिपुर्ह्यहम् ।
न शोभते सत्सभासु धिक्कृतः प्राकृतैरपि ॥ ९८ ॥
अजितेन्द्रियशूरस्त्वमधार्मिकमहाग्रहः ।
धीरान्धर्मपरान्स्प्रष्टुमपि न त्वं क्षमो ह्यसि ॥ ९९ ॥
प्रतिष्ठानपतीराजा सुमेधाः शङ्करप्रियः ।
तञ्चेत्प्रविश्य त्वद्धर्मे प्रवर्तयसि धार्मिकम् ॥ १०० ॥
तदा तवोक्तं सत्यं स्यात्सर्वधर्मपराप्रिय ! ॥ १०१ ॥

**महासेन पराजय वर्णनम्**

कलिरुवाच

एष गच्छाम्यहन्तावत्प्रतीक्षस्व क्षणेन तत् ।
करिष्यामियथा राज्ञो बुद्धिर्मम पराभवेत् ॥ १०२ ॥
मयि प्रवृत्ते लोकेशे क धर्मःक हरिः शिवौ ।
धर्मादीनां कथा कातु वर्णाश्रमनिबन्धना ॥ १०३ ॥
अहं स्वतन्त्रः सुखदः पापिनां तु सुखावहः ।
इत्युक्त्वा द्वापरं सोऽथ प्रतिष्ठानपतिंगतः ॥१०४ ॥
छिद्रान्वेषणकृन्नित्यं नानारूपधरः कलिः ।
नप्राप शिवभक्तस्य धार्मिकस्य निरन्तरम् ॥ १०५ ॥
छिद्रंकलिर्महासेनमाश्रितोऽपि कदाचन ।
सम्वत्सरत्रयं साग्रं स्थित्वा राज्ञो गृहे कलिः ॥ १०६ ॥
जगाम सह राज्ञोऽग्रे वञ्चनाय कृतोद्यमः ।
नान्तरं समना लेभे शाङ्करस्य सुमेधसः ॥ १०७ ॥
काशीं त्यक्त्वा काशिराजः प्राप्तः शीघ्रं सुमेधसम् ।
ब्रह्मब्राह्मणधर्माणां दोषान्गृहन्गुणांस्त्यजन् ॥ ॥ १०८ ॥
युद्धाय सज्जः पापात्मा मया जितमितीरयन् ।
अहं काशीपतीराजा सर्वासुरनमस्कृतः ॥ १०९ ॥
अहं सुमेधसन्तुच्छं जित्वाऽन्यांश्च जये वरान् ।
अभिमानमहादण्डस्तब्धो वाक्शौर्यसंयुतः ॥ ११० ॥

युद्धञ्चकार किञ्चित्स प्रतिष्ठाननृपेण ह।
ध्रियतान्ध्रियतां राजा प्रतिष्ठानपतिः कृशः॥ १११॥
न पुनर्मा समासाद्य युद्धं कुर्याद्यथा तथा।
मम काशीपतेस्त्वग्रे कथं स्थास्यति दुर्मतिः॥ ११२॥
वदन्नित्थं महासेनो महाबलपराक्रमः।
तथा सुमेधसा राज्ञा धृतः शिवपराङ्मुखः॥ ११३॥
पृष्टश्च त्वं महाराजा मया तुच्छेन किञ्चितः।
वामदेवेन सम्वादं कृत्वाऽपि त्वंह्यचेतनः॥ ११४॥
शिवभक्तस्य ते राजन्कथमेवम्पराभवः।
पापात्त्रस्तस्य शान्तस्य र्जामिकस्य महात्मनः॥ ११५॥
द्विजदेवपितृप्राज्ञपूजकस्य रणार्थिनः।
वामदेवादिऋषिभिर्बोधितस्याऽपि सन्मतेः॥ ११६॥
प्रजापालनरक्तस्य शूरस्य विजितात्मनः।
नहि स तीर्थवासेन सत्सङ्गेन श्रुतेन वा॥ ११७॥
मतिःकलुषिता नृणाम्भवति ब्रह्मसेविनाम्।
नहि पापात्मनां सङ्गा भवेत्पुण्यजुषां क्वचिम्॥ ११८॥
कथमेवं पराभूतिस्तुच्छा स्वेच्छापरस्य भो!।
तव जाता महाराज! विचार्य वद तत्त्वतः॥ ११९॥

**पराजितस्य काशिराजस्य पश्चाताप वर्णनम्**

गुरुरुवाच

एवमुक्तः काशिराजो धार्मिकेण सुमेधसा।
लज्जितोऽर्वाक्शिराजातःकिञ्चिन्नोवाचतं नृपम्॥ १२०॥
कलिरन्तरमासाद्य नत्वा सुमतिमीश्वरम्।
प्रविष्टः काशिराजस्य देहं लज्जापरस्य च॥ १२१॥
द्वापरन्नोक्तवान्किञ्चित्तेनैव सह जग्मिवान्।
सुमतिः काशिराजतम्मोचयित्वा द्विजैवृतः॥ १२२॥
उवाच काशीराजन्तं गच्छ काशी नराधिप!।
महासेनः स्वतः पाप आविष्टः कलिना पुनः॥ १२३॥
यत्र यत्र महासेनः प्रयाति चिरदुःखितः।
तत्र तत्र महातीर्थे काशी सद्भिः प्रवर्ण्यते॥ १२४॥

एवं तीर्थान्यनेकानि कृत्वा राजा सुदुमनाः ।
द्वारकाम्प्राप स कलिस्त्यक्त्वा भीतः पलायितः ॥ १२५ ॥
निष्पापो द्वारकां गत्वा कलिना च विना कृतः ।
संस्मरनकाशिकाम्पण्यां परमानन्दरूपिणीम् ॥ १२६ ॥
कथं यास्ये पुनः काशी ब्रह्मादिसुरसेविताम् ।
नय मान्देवदेवेश ! द्वारकानाथ ! केशव ! ॥ १२७ ॥
स्वर्धुनीतीरवसतीं काशी कामदुघां सताम् ।
प्रत्यहम्पूजयित्वा तु हरि देवकीनन्दनम् ॥ १२८ ॥
प्रार्थयामास निरतः काशीम्विरहकातरः ।
काशी प्रस्थापय विभो ! द्वारकानाथ केशव ॥ १२९ ॥
अनादरः काशिकायां सत्सु श्रीगुरुषुप्रभो ! ।
शिवे शिवकथायान्वा जातः पापविवर्धनः ॥ १३० ॥
अहो ! सुकृतमेवाऽत्र प्रकर्तव्यमहर्निशम् ।
यद्विनाऽभ्युदयं प्राप्याऽहज्ञातश्चाऽऽत्मघातकः ॥ १३१ ॥
दास्यं कृत्वाऽप्यहं राजा स्थास्यामि तव सन्निधौ ।
प्रत्यहं याचमानस्तु निःपाप (निष्पापः) पुण्यसंयुतः ॥ १३२ ॥
न विरमरति काशी स राजा विरहकातरः ।
प्राप वाराणसीदेशं विह्वलः संस्मरन्शिवौ ॥ १३३ ॥

शिष्य उवाच

यदा सुमेधसा राजा पराभूतो विनिर्गतः ।
महात्मनाम्वदान्यानां सत्सङ्गश्रवणोषिणाम् ॥ १३४ ॥
मनस्त्यजति दौरात्म्यं बहुजन्मार्जितं क्षणात् ॥ १३५ ॥
तैरेव साधनैः पापा द्रोहिणः शास्त्रदेवयोः ।
यान्त्यसद्गतिमापन्ना गुरूद्रोहरताः खलाः ॥ १३६ ॥

गुरुरुवाच

सुमेधास्तम्पराभूय तस्य पुत्रम्महामतिम् ।
स्थापयामास तद्राज्ये शिवभक्त्या समन्वितः ॥ १३७ ॥
उवाच च महात्मानं महात्मा स महामतिम् ।
पाहि लोकान्भज शिवं तिष्ठ काश्यां नृपञ्जर ॥ १३८ ॥

इत्युत्पादिश्य सुमहान्सुमेधास्तं सुमेधसम् ।
शिवं शिवां समाराध्य मन्त्रिणश्चोपदिश्य सः ॥ १३९ ॥
ययौ प्रतिष्ठानपुरं कलिञ्जित्वाऽपि धीरधीः ॥ १४० ॥

शिष्य उवाच

उपदेशी मन्त्रिणां कः कृतो राज्ञा सुमेधसा ।
तं श्रोतुमहमिच्छामि विविच्य ब्रूहि सम्मतम् ॥ १४१ ॥

गुरुरुवाच

महासेनं जितन्दृष्ट्वा मन्त्रिणस्तु सुमेधसम् ।
ऊचुः कथन्न गृह्यते काशीराज्यं जितन्त्वया ॥ १४२
तदेव राज्यं मम नैव मन्त्रिणः कुतः पुनः शङ्करगेहमेतत् ।
राजाधिराजः स हि शूलपाणिर्वयन्तदाज्ञापरिपालका ये ॥ १४३ ॥
ब्रह्माण्डकोटिप्रभवोऽपि ये स्युस्ते शङ्कराज्ञां न विचालयन्ति ।
वयम्पुनः के कृतहीनजीवाः श्रीशङ्कराज्ञां प्रविचालयामः ॥१४४॥
न युक्तं स्वाम्यमन्यत्र किम्पुनः काशिमण्डले ।
अत्र स्वामी जगन्नाथो विश्वनाथः सुमुक्तिदः ॥ १४५ ॥
देहस्याऽपि न मे स्वाम्यं किम्पुनर्धनराज्ययोः ॥ १४६ ॥

## सुमेधसो वैराग्य वर्णनम्

गुरुरुवाच

इत्युक्त्वा मन्त्रिमुख्येभ्यः सुमेधाः स्वगृहं ययौ ।
महासेनो दिनैः प्राप काशी दृष्ट्वा विमूर्च्छितः ॥ १४७ ॥
पुनरुत्थाय विलुठन् हा काशि त्राहि मामघम् ।
तवाऽपराधिनं दुष्टं देवब्राह्मणदूषणम् ॥ १४८ ॥
गुर्वाज्ञाभञ्जकम्पापं महाविषयलोलुपम् ।
पुत्राय राज्यम्विनिवेद्य कृत्तिवासेशसन्निधौ ॥ १४९ ॥
स्थितो वैराग्यबहुलः सिद्धिम्प्राप सुदुर्लभाम् ।
कलिद्वापरयोर्वादः स्पष्टोऽभूत् (द्) व्यवहारतः ॥ १५० ॥
धीरो जितेन्द्रियो यस्तु तं कलिर्न प्रबाधते ।
अजितेन्द्रियलोकस्य कलिः स्वामी भवेदिह ॥ १५१ ॥
कलौ विवेकिनः शान्ता विरक्ता जर्मबुद्धयः ।
न सन्ति तस्माद्धि कलिः पुरुषार्थविघातकः ॥ १५२ ॥

अतो बनैर्विरक्तैश्चतै भवितव्यं कलौ तलात् ।
यथा मङ्गलमप्येतत्काश्यां शङ्कर ॥ १५३ ॥

दीपक उवाच

जय देव! महाज्ञानदायक! श्रुतिग्रिह ।
जय मायामहापाशच्छेदक! ध्वान्तनाशनः ॥ १५४ ॥
स्वामिप्रसादाद्देवेश! पार्वतीवल्लभः शिवः ।
दृष्टोजनार्दन श्रीशो ब्रह्माद्यादेवसत्तमाः ॥ १५५ ॥
अहो भगवता काशी दर्शिता सर्वमुक्तिदा ।
स्वरूपञ्चमहाकाश्याः श्रावितम्पुरुषार्थदम् ॥ १५६ ॥
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि जगद्गुरो! ।
नमामि देवदेवश! त्वां सर्वज्ञं जगद्धितम् ॥ १५७ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा दीपकः सेवां गुरोः कुर्वंत्रवस्थितः ।
काश्यां शृण्वन् शुभाः काश्याः कथाः पावनपावनाः ॥ १५८ ॥
इति पृष्टं त्वया यत्तत्कले! प्रोक्तं तवाऽग्रतः ।
निर्भयस्त्वम्भुवङ्गच्छ स्वकार्यङ्कुरु सादरम् ॥ १५९ ॥

सूत उवाच

इति संश्रावितःशिष्यो ब्रह्मणा काशिसत्कथाः ।
पितामहं नमस्कृत्य भारतम्प्रविवेश ह ॥ १६० ॥
स्वस्वरूपं काशिरूपं विष्णुशङ्करयोरपि ।
धर्माधर्मस्वरूपञ्च ज्ञात्वा ब्रह्ममुखात्कलिः ॥ १६१ ॥
चचार पृथिवीमेतां द्रुहिणाज्ञाकरः सदा ॥ १६२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्वे तृतीयखण्डे काशीरहस्ये पञ्चमोऽध्यायः । ५ ।

# अथ षष्ठोऽध्यायः

## सूतर्षिसम्वादवर्णनम् कपिलयोग विषये

मुनयऊचुः

सूत ! सूत ! महाबुद्धे ! श्रुतन्त्वत्तः सनातनम् ।
ब्रह्मज्ञानं जीवपाशच्छेदनम्मुक्तिदायकम् ॥ १ ॥
परन्त्वेकन्तु पृच्छामो ब्रूहि तत्त्वं शुभानन ।
विना साख्येन योगेन विनाऽष्टाङ्गैर्महामखैः ॥ २ ॥
विना तपोभिरत्युग्रैर्नानातीर्थपरिभ्रमैः ।
विना ब्रताद्यैः शारीरैर्विना दानैर्विना जपैः ॥ ३ ॥
सिद्ध्येन्निर्वाणभोगादिः सिद्धो धर्मो महामते ! ।
येन साधनसारेण तत्पुनर्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥
सत्यादिषु युगेष्वेव समौ धर्मं सनातनः ।
यः सदा प्राणिमात्राणां सिध्येत्सिद्धिषु यः परः ॥ ५ ॥
तं धर्मं श्रोतुमिच्छामः कलौ खलु विशेषतः ।
साक्षात्कारः कृते दुःखम्ब्रह्मणः किम्पुनः कलौ ॥६॥
कलावपि जनाजीर्णं ज्ञानन्तत्फलमेव च ।
प्राप्नुयुर्मोक्षममलमित्याश्चर्यं वदस्व नः ॥७॥

सूत उवाच

श्रृण्वन्तु मुनयः सर्वे ब्रह्मज्ञानस्य कारणम् ।
कपिलेनेरितं सर्वं श्रुतिसारन्नृणामहि ॥८॥
कपिलः श्रीहरेःसाक्षात्स्वरूपज्ञः सनातनः ।
हरिरेव महासिद्धः सिद्धैः पृष्टः कदाचन ॥९॥
त्वया खलु महादेव ! महायोगेश्वरेश्वर ! ।
साधनानि बहून्यत्र प्रोक्तानि मनसः शुचौ ॥१०॥
असकृत्तानि सर्वाणि साधनानि कृतानि भो ! ।
तथापि मनसः शुद्धिर्जायते न कदाचन ॥११॥

जीवानाम्मोक्षवार्ताऽपि कथं स्याद्विषयात्मनाम् ।
अहो पापच्यमानानां नरके गर्भसङ्कटे ॥१२॥
यातना विविधाः श्रुत्वा दृष्ट्वा च सभया वयम् ।
विहाय सर्वमस्माभिर्मनसस्तुकृतश्रमः ॥१३॥
तथापि न मनःशुद्धं विषसंस्कारवासितम् ।
मनः शुद्धिम्विना ज्ञानञ्जायते न कथञ्चन ॥१४॥
ज्ञानम्विना न सिद्ध्येत जनः कल्पशतैरपि ।
तस्मान्मोक्षकथा दूरे स्थितेति प्रतिभातिनः ॥१५॥
एक एव शरण्यस्त्वं शरणागतवत्सल ! ॥१६॥

श्रीकपिल उवाच

साधु पृष्टम्महासिद्धाः सिद्धिः सत्यं सुदूरतः ।
तथापि यत्नो न त्याज्यो नरैर्मोक्षेच्छुभिः सदा ॥१७॥
विषयाकाररूपेयं माया विष्णोः सुदुर्जया ।
तच्छनैर्विषयान्सर्वानीक्षेतेश्वरमाश्रितः ॥१८॥
विषयैर्दृष्टचित्तानां न मृतिर्न हि जीवनम् ।
शोकसन्तापजनकानुपेक्षेत शनैः शनैः ॥ १९ ॥
सहसा विषयास्त्यक्षन् याति जीवः सुदैन्यताम् ॥ २० ॥
कामादयः शतशो यत्र देहे तिष्ठन्ति नित्यम्प्रभवश्चसिद्धाः ।
क तत्र वैराग्यविवेकधर्मंमोक्षेषु चिन्ता सहजेषु कृत्रिमा ॥ २१ ।
मोक्षस्य बीजम्परमस्ति चैकं प्रियः परेशो भगवान् कथञ्चित् ।
हरिः प्रियःस्याद्यदि वा हरो हि तथा यथा विषया मोक्षरूपाः ॥ २२ ॥
अकृत्रिमा प्रीतिरुदेति सर्वदा कामेषु कामारिमुरारिर्वजिताः ।
शास्त्रैर्गुरूपासनतो न लुब्धैस्तदुक्तधर्माचरणैर्नराणाम् ॥ २३ ॥

**कपिलोक्तसाङ्ख्यप्रक्रियावर्णनम्**

हरौ हरे वा परमात्मनिर्गुणे गुरौ रतिः स्याद्धि तदा कदाचित् ।
श्रुतेषु शास्त्रेष्वपि नो कदाचिद्विनिञ्चता बुद्धिरधर्मवर्तिनाम् ॥ २४ ॥
कलौ भवेद्धर्मविवर्जिते नृणां कुतः पुनः श्रवणं नास्ति येषाम् ॥ २५ ॥
सिद्धः ! शृणुत भद्रम्वः सारात्सारम्ददाम्यहम् ।
नारदाय पुरा प्रोक्तं नरनारायणेन हि ॥ २६ ॥

न हि तत्पापजीवानाम् हृदये परितिष्ठति।
तस्मान्महत्सु वक्तव्यं गुरुदेवेषु नित्यशः ॥ २७ ॥
कदाचिन्नारदः प्राप्तो नरनारायणाश्रमम्।
नारायभम्महात्मानम् पप्रच्छ जगतो हितम् ॥ २८ ॥

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि नृणामाशु शुभप्रदम्।
वद किञ्चिद्विचित्रार्थं येन शुद्धिः परा भवेत् ॥ २९ ॥
रागद्वेषैः पीड्यमानाः कामक्रोधैः सुदारुणैः।
शोकमोहैः सुदुष्पारैर्लोभासन्तोषविग्रहैः ॥ ३० ॥
अहम्ममाभिमानोत्थैर्नानाविषयपन्नगैः।
भक्ष्यमाणा महान्तोऽपि दृष्ट विषयलोलुपाः ॥ ३१ ॥
न शास्त्रं न गुरुर्देवो त सत्सङ्गो न धीरता।
गुणा ये शुद्धवर्णानामापि पण्डितमनिनाम् ॥ ३२ ॥
सर्ववर्णाश्रमाणां ये धर्मास्तेषां न पालनम्।
दृश्यते किञ्चिदपि च जीवानाम् कथमुद्धृतिः ॥ ३३ ॥
कालावयवदोषैस्तु ग्रस्यमानाः कथम्प्रजाः।
भोगमोक्षादिपात्रं स्युर्विवादबहुलाः सदा ॥ ३४ ॥
कथयस्व महाविष्णो! गुरो! गुरुतरां कथाम् ॥ ३५ ॥

नारायण उवाच

श्रृणु नारद! सर्वेषाम् मोक्षोवायं सुदुर्लभम्।
वक्ष्यामि गोप्यमपि ते त्वम्मे शिष्यो जगद्धितः ॥ ३६ ॥
वाराणासीति विख्याता नगरी सुगरीयसी।
मया हरेण हरिणा द्रुहिणेवाऽनलेन च ॥ ३७ ॥
आदित्येन गणेशेन भवान्या मुनिभिः सुरैः।
यक्षैः किम्पुरुषैर्नागैर्गन्धर्वैरपि चोरगैः ॥ ३८ ॥
सिद्धचारणगङ्गादितीर्थैर्यज्ञादिभिः सदा।
सदा सेवितेयं सदेशानैः परमानन्दकाङ्क्षिभिः ॥ ३९ ॥
मुक्तिदानाग्मपि मुने! महाप्रीतिकरी मता।
आनन्दवनमित्येव नामाऽस्याः प्रथितम्प्रियम् ॥ ४० ॥

नारायणावासमिति रुद्रावासमिति स्फुटम् ।
ब्रह्मावासमिति प्राहुर्ब्रह्मविद्याविशारदाः ॥ ४१ ॥
शृणुतत्रत्यमाहात्म्यम् किञ्चिद्वक्ष्यामि तेऽनघ ।
यत्रस्थितानाम् जन्तूनाम् साधनानि पदे पदे ॥ ४२ ॥
भवन्ति दृढ़बुद्धीनां निष्पापानाम् न संशयः ॥ ४३ ॥

**काशीमहत्ववर्णनम्**

अहो लोकः शोके पतति हि वृथा साधनशतैः
परिक्रान्तां काशी परिहरति दैवोपहतधीः ।
विना क्लेशैर्यस्यां विविधवृषसारम्वृषपति ।
लभन्ते यत्रत्याः (नत्वा) पशुपतिशिवं शास्त्रशरणाः ॥४४॥
काश्यां स्थित्वा प्रातरेवाऽत्र ढुण्ढि माम्मां विश्वेशन्दण्डपाणि रविम्वा ।
सर्वान्नत्वा काशिसंस्थास्तु नित्यं ततः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकानि ॥ ४५ ॥
काश्यां स्वदारेष्वपि नित्यवृत्तिः काश्यां स्ववित्तेष्वपि सुप्रवृत्तिः ।
काश्यां कुटुम्बेष्वपि यत्स्वबुद्धिर्देहे ह्यहं यस्य न तस्य शुद्धिः ॥ ४६ ॥
भोगेन मोक्षस्य सुखं कदाचिन्मोक्षे न भोगस्तु यतो न नित्यः ।
सुभोगमोक्षप्रदा काशिकेयं न यस्य सौख्याय सुखं न तस्य ॥ ४७ ॥
जितेन्द्रियत्वं सुतपो यत्र चोक्तं ऋतौ स्वभार्यागमनम्ब्रह्मचर्यम् ।
यथाकथञ्चिन्मम नामकीर्त्तनाद्विमुच्यते सर्वदुःखैर्मनुष्यः ॥ ४८ ॥
शिवं शिवां प्रत्यहमर्चयन्नरस्तथा गणेशान्धृतसच्छिवव्रतः ।
वर्तेत यः काशिकायां न तस्य दुखं न च विघ्नपूगः ॥ ४९ ॥
न शक्यते तिष्ययुगे तु कर्तुं तपोव्रतं योगसमाधियज्ञाः ।
तस्मात्काश्यां सम्वसेच्छास्त्रयुक्तया यथा न कामादिगणः पराभवेत् ॥ ५०

नारद उवाच

नारायण ! गुरो ! मह्यं कथयस्व महामुने ! ।
काशास्त्रयुक्तिर्भगवन्यया कामादिसञ्जयः ॥ ५१ ॥

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद ! वक्ष्यामि शास्त्रयुक्तिं सुदुर्लभाम् ।
यामाश्रित्य तरेद्दुर्गमेतद्विषयसङ्कटं ॥ ५२ ॥
रोगग्रस्ता निरोगा वै दृश्यन्ते विविधा जनाः ।
संसाररोगसुग्रताः सदेवासुरमानवाः ॥ ५३ ॥

न विना काशिकां केचिदरोगाः सम्भवन्त्युत ।! ५४ ॥

## काश्यादिमहिमवर्णनम्

सहस्रकार्याणि विहाय काश्यां काशीगुणान्संश्रृणुयाद्यथावत् ।
क्षेत्रस्वरूपम्प्रतिबुध्यते यैः श्रद्धारतिः पापनिवृत्तिरुद्भवेत् ॥ ५५ ॥
काशीकथासंश्रवणेमसम्यग्मनः शुद्धिर्जायते वै नरायणम् ।
स्थितिप्रकारम्परमम्वेत्ति सम्यक्स्थित्वा यथावत्प्रविमुच्यते भयात् ॥५६॥
काशीगुणांश्छङ्करो वेत्ति सम्यक् किञ्चित्किञ्चिदृषयो ज्ञाननिष्ठाः ।
ततोऽपि किञ्चिद्विबुधादयो ये विदुर्गणान्स्वल्पतराह्नि केचित् ॥ ५७ ॥
तेष्वेव कञ्चिद् दृढनिश्चयो भवेद्यः सम्वसेत्सर्वविषम्विहाय ।
विषम्प्रपीतं सकृदत्र मारकं गर्भप्रदा विषयाः पापरूपाः ॥ ५९ ॥
ते किम्ममानन्दवने प्रयुक्ताः सुखम्प्रयच्छन्ति सुदुर्भरा यतः ।
अतः कामः पापकर्मा वराकः कथं सुखायालमदीर्घसत्त्वः ॥ ६० ॥
क्रोधः पुनः क्रूरकर्मा कदर्य्यः सुखप्रदः कथमात्मन्यहन्ता ।
लोभोदैन्यन्नत्यजेत्क्काऽपि लोके तृष्णा भार्या सङ्गतः साधु निन्द्यः ॥६१
तस्मादेतैर्विघ्नरूपैर्नृशंसैः संसेव्यन्ते काशिसौख्यप्रदानैः ।
काश्यां यदानन्दमयं महत्सुखं क्षुद्रं कथं कामयेत्काशिवासी ॥ ६२ ॥

गङ्गां विहायाशुचिगर्तंपापी धिक्धिक्कृतः साधुकनैर्महात्मा ।
भवत्यवश्यं सुकृतैर्विहीनो मृतः स चेत्काशिकायां पिशाचः ॥ ६३ ॥
कामादीनां सेवया शास्त्रभङ्गः सच्छास्त्राणां सेवयानन्दवन्द्यः ।
तस्मान्मयोक्तं श्रवणं पुरस्तात्पुरस्कृतं साधयेन्मोक्षमार्गम् ॥ ६४ ॥
ये वसन्ति सततम्ममाऽऽलये शुद्धभावनिरतास्तपोमयाः ।
ब्रह्मरूपममलं हि काशिका चाऽश्रयेत्सुखकरं चान्यथा ॥ ६५ ॥
कोटिजन्मकृतपुण्यभारभृत् काशिकां समनुविश्व निर्मलः ।
जायते विगतभारजीवनः शान्तिमाप्य परशान्तिभाजनम् ॥६६॥

एकेन जन्मना काश्यां निर्वाणं समवाप्यते ।
अतः परं कः सुगमः उपायः साधनैर्विना ॥ ६७ ॥
दृष्टा यैर्दूरतः काशी ते पुण्याः पापशत्रवः ।
स्पष्टा यैस्तेऽपि च ततः श्रेष्ठा मोक्षैकभाजनम् ॥ ६८ ॥

काशीमाहात्म्यवर्णनम्

एकरात्रं स्थिता ये तु पुण्यसम्भारसन्ततिः ।
तेषाम्प्रवर्धते नित्यं माससम्वत्सरक्रमैः ॥ ६९ ॥
उत्तरोत्तरमायाति वृद्धिं धर्मैर्यथाकृतैः ।
मनो यत्र निषिक्तं हि रतिस्तत्र करोति हि ॥ ७० ॥
मनसाऽऽशु विचार्याशु सारं सारगभम्मतः ।
महासारतरां काशीं न त्यजेत्सारकामुकः ॥ ७१ ॥
अतो मनः काशिकायां लग्नम्मोक्षम्प्रदर्शयेत् ।
अन्यत्र लग्नं सुदृढं दुःखमूलं प्रदर्शयेत् ॥ ७२ ॥
शास्त्रयुक्तिरियम्प्रोक्ता मुमुक्षूणां सुखप्रदा ।
न शास्त्रपरदृष्टीनां ज्ञानम्भवति शाश्वतम् ॥ ७३ ॥
गुरुशास्त्रपरो मार्गः साध्य साधकपुङ्गवैः ।
अशास्त्रपरबुद्धीनां नविचारः कथञ्चनः ॥ ७४ ॥
इति सम्यक् समाख्यातं मयाऽऽशु शुभदम्मुने ।
अत्र निश्चयवान् भूयान्निश्चयः फलदायकः ॥ ७५ ॥

कपिल उवाच

इति नारायणमुखाच्छ्रुत्वा कमलजोद्भव ।
रणयन्महतीं गायन् जगाम किल काशिकाम ॥ ७६ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते काशीरहस्ये षष्ठोऽध्यायः ।

# अथ सप्तमोऽध्यायः

## काश्यां कृतानां पापानांम्मोक्षोपायः

कपिल उवाच

एवं सिद्धाः काशिकायां वसेद्यः सर्वैर्धर्मैः संयुतः सोऽतिवन्द्यः ।
तस्माद्धर्माः सततं सिद्धभूमौ संसेव्याः स्युः पातकन्नाल्पमत्र ॥ १ ॥
ये ये धर्मा मानवैः सम्प्रयुक्ताः काश्यां ते तान्मोक्षसिद्धिं नयन्ति ।
तस्मात्सिद्धाः साधयेदात्मकार्यं सद्भिः शास्त्रश्रद्धया त्यागयोगै ॥ २ ॥

काश्यां कृतानां पापानां पुण्यानाञ्च समृद्धयः ।
भवन्ति सततन्नूनं सु क्षेत्रेषूप्तेबीजवत् ॥ ३ ॥

सिद्धा ऊचुः

देवदेवारविन्दाक्ष ! सांख्ययोगप्रवर्तक ।
कथम्मुच्येत मनुजः काश्यामेव कृतैरघैः ॥ ४ ॥
मोक्षमाप्नोति च कथं कथम्बा जीवने सुखम् ।
आनन्दकानने ह्यस्मिन्कथमानन्दभाग्भवेत् ॥ ५ ॥

श्रीकपिल उवाच

इदमेव पुरा पृष्टः पार्वत्या भगवान्भवः !
पापनाशं धर्मवृद्धिमबिलम्बेन मोचनम् ॥ ६ ॥

श्रीभवान्युवाच

दीनानाथैकशरण ! देवदेव ! दयानिधे ।
पाहि लोकान्भवादस्मात्सूक्तैः पापप्रणाशकैः ॥ ७ ॥
आगत्य शीघ्रं ये प्राप्ताः काशी तीर्णाः क्षणेन ते ।
ये तु स्थित्वा सुकृतिनस्तेऽपि शीघ्रं परङ्गताः ॥ ८ ॥
पापं कृत्वा मृता ये च तेषाम्मुक्तिः कथम्भवेत् ।
कृपया वद देवेश ! प्रायश्चित्तमशेषतः ॥ ९ ॥

### तत्रप्रकरणे शिवाशिवयोः सम्वादबर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि यद्गोप्यम्मम सर्वतः ।
पुण्यवर्द्धिः पापवर्द्धिः कर्तव्यं काशिवासिभिः ॥ १० ॥

न कोऽपि दृष्टो मनुजो विना पापं शरीरभाक् ।
कुर्वन्नपि महापुण्यं पापं संस्कारतश्चरेत ॥ ११ ॥
देहः स्वकार्यङ्कुरुते इन्द्रियाणि स्वकर्मसु ।
प्रवर्तन्ते वलादेव मनः केन निवार्यते ॥ १२ ॥
प्रायश्चित्तत्रयं सूक्ष्ममनुभूतं महात्मभिः ।
ब्रह्महत्यादिपापानामन्यपापकृतान्नु किम् ॥ १३ ॥
काश्यामपि वसेज्जन्तुर्यदि पापकृदन्न हि ।
प्रायश्चित्तत्रयं कृत्वा सद्यो मुच्येत बन्धनात् ॥ १४ ॥

श्रीदेव्युवाच

आश्चर्यमेतद्भगवंस्त्वयानिगदितम्प्रभो ।
वाराणस्यां कृतैः पापैर्मुच्यते यन्नरः सकृत ॥ १५ ॥
कृपया तत्त्रयं ब्रूहि कलावपि हि निष्कृतिः ।
कलौ कलूषचित्तानां क धर्मः क परम्पदम् ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु लोकहिते देवि ! लोकानामुद्धृतिम्पराम् ।
प्रायश्चित्तत्रयम्वच्मि काश्येनः सन्दिधिक्षताम् ॥ १७ ॥
वापीकूपतड़ागादिजीर्णोद्धारकृतान्नृणाम् ।
प्रभवेन्न महत्पापं काश्यामपि कृतं हि यत् ॥ १८ ॥
आपोनारा इतिप्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनन्तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १९ ॥
तेनेश्वरेण हरिणा कृतम्पापप्रणाशनम् ।
यत्र यत्र जलं काश्यामुद्धरेत्सुकृती नरः ॥ २० ॥
तत्र तत्र मुददयुक्ताः पितरः पर्युपासते ।
काश्यां रुद्रमयाः सर्वे जन्तवः श्रुतिनोदिताः ॥ २१ ॥
ते पिबन्ति जलं यत्र तडागादौ तृषार्दिताः ।
तत्पुण्यं न मया वक्तु शक्यम्वर्षशतैरपि ॥ २२ ॥
आसीद्धर्मपथो नाम वणिक्कश्चित्सुधार्मिकः ।
कुलस्तम्भस्य वायव्ये तेन खातः प्रखानितः ॥ २३ ॥
तत्र गावो मनुष्याश्च पिबन्त्यम्भस्तृषार्दिता ।
प्रत्यहं तस्य सुकृतं वर्धते चन्द्रमा यथा ॥ २४ ॥

सूक्ष्मधर्मो मनुष्याणां दुर्लभो विषयात्मनाम् ।
कालेन महता तत्र दुर्भिक्षकरपीडिता ॥ २५ ॥
दरिद्रतामवापोच्चैर्ब्रह्मणंकृदभूत्तता ।
ब्राह्मणो न धृता काऽपि स्वधनार्थंऋणी वणिक् ॥ २६ ॥
मद्धनं देहि दुष्टेति परिक्षिप्तः पुनः ।
ब्राह्मणेन वणिक् धर्मपथो दैन्यमुपागता ॥ २७ ॥
इदानीं न एनक्किञ्चिदस्ति ब्राह्मणसत्तम ! ॥ २८ ॥

**ब्राह्मणधर्मपथयोः सम्वादवर्णनम्**

ब्राह्मण उवाच

शतत्रयपरीमाणं निष्कानां हेम देहि तत् ।
नोचेत्तडागो मन्नाम्ना प्रथितिं यात्वता परम् ॥ २९ ॥
त्वत्कारितो बहुधनैर्गम्भीरो निर्मलोदका ।
विमुक्तो भवदत्वाऽऽशु तडागं लोकसन्निधौ ॥ ३० ॥

धर्मपथ उवाच

अवश्यम्मोचयतु मामृणाच्छीघ्रम्भवान्प्रभो ।
ऋणयुक्ताम्रियन्ते चेत्पच्यन्ते नरकार्णवे ॥ ३१ ॥
जनाश्चौरजनस्यापि गृहीत्वा धनमत्र तु ।
पच्यन्ते नरके घोरे ऋणयुक्ता नराधमाः ॥ ३२ ॥
किम्पुनर्ब्राह्मस्याणुमात्रं हृत्वा मृतो ह्यियः ।
ब्राह्मणा यद्वदिष्यन्ति तत्कर्त्ताऽस्मि न संशयः ॥ ३३ ॥
स तु वार्धुषिको गत्वा मेलयित्वा द्विजान्बहून् ।
आनयामास देवेशि ! यत्र धर्मपथो वणिक् ॥ ३४ ॥
द्विजैः पृष्टौ वणिग्विप्रौ कथ्यताह्वानकारणम् ।
यदर्थम्वयमाहूतास्तच्छ्र त्वोपदिशामहे ॥ ३५ ॥

धर्मपथ उवाच

नरके परिपच्यन्ते ऋणयुक्ता नराधमा। ।
अहं ऋणी ब्राह्मणस्य हेमनिष्कशतत्रयम् ॥ ३६ ॥
गृहीतं व्यवहारार्थं दैवान्नष्टं शनैः शनैः ।
असौ विनिमयेनाऽऽशु सुवर्णस्य तडागजम् ॥ ३७ ॥

सुरूपं यद्भवत्येव विचार्येदं यथोच्यताम् ।
यथाकथञ्चिन्मुक्तः स्यान्तथा शीघ्रम्विधीयताम् ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

साधूक्तं धर्मपथ ! तेऋणभीत्या महामते ! ।
सुविचारितमस्माभिर्वक्तव्यं सुदृढं खलु ॥ ३९ ॥
अस्मानाहूय यो धृष्टो न श्रोष्यति वचो हितम् ।
शिरस्तस्य विदीर्णं स्यात्पतिष्यति न संशयः ॥ ४० ॥

ब्राह्मण उवाच

ब्राह्मणानाम्वचो ग्राह्यम्मया सर्वात्मना हितम् ।
अत्र प्रमाणम्भगवान्विश्वेशः पार्वतीपतिः ॥ ४१ ॥

धर्मपथ उवाच

यद्भूमिदेववक्तव्यं तन्मया ग्राह्यमेव हि ।
अत्र प्रमाणम्भगवान्विश्वेशः पार्वतीपतिः ॥ ४२ ॥

विप्रा ऊचुः

आनयन्तु मनुष्या ये समर्था महतीं शिलाम् ।
इति श्रुत्वा सुबलिभिर्वणिक् धर्मपथः क्षणात् ॥ ४३ ॥
आनयामास विपुलां दृष्ट्वोचुर्ब्राह्मणास्तु ताम् ।
निक्षिप्यतान्तडागेऽत्र निमग्नाऽस्तु ऋणावधि ॥ ४४ ॥
यावन्मनुष्यैः पशुभिः पक्षिभिश्चापि तज्जलम् ।
पीतन्तद्धनपर्याप्तमुन्मज्जतु ततस्त्वियम् ॥ ४५ ॥
इत्युक्त्वा सा शिला विप्रैः पातिता तज्जले शुभे ।
चक्रुः शिवकथाम्पुण्यां काशिवासिजनैर्वृताः ॥ ४६ ॥
क्षणान्तरे गौस्तृषिता सवत्सा समुपागता ।
तया पीतञ्जलन्तृप्ता साऽभवच्छृणु पार्वति ! ॥ ४७ ॥
सा शिला ऋषिमुख्यानां प्रभावात् जलमध्यतः ।
जलोपर्यभवच्छीघ्रम्पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ ४८ ॥
यथातुम्बीफलन्तुच्छं गच्छतीतस्ततस्ततः ।
तथा लघुतरा जाता पश्य धर्मस्य गौरवम् ॥ ४९ ॥
सर्वलोकास्तुतद्दृष्ट्वा शशंसुनिपुङ्गवान् ।
अपूर्वं दर्शितम्पुण्यं मुनिभिः सुमहात्मभिः ॥ ५० ॥

अहो ! न दृष्टमस्माभिः कदाचिन्महदद्भुतम् ।
पुण्यं सूक्ष्मं न जानन्ति सर्वलोकाः कथञ्चन ॥ ५१ ॥

### काश्यांधर्मकार्यसम्पादन माहात्म्यवर्णनम्

महादेव उवाच

काश्यां किञ्चिज्जलं यैस्तु सम्पादितमनामयम् ।
न तेषाम्पापलेशोऽपि काश्यामपि कृतैः प्रिये ! ॥ ५२ ॥
परन्तु सावधानैर्हि कर्तव्यः सुजलाशयः ।
अपराधो न भवति महापापकृदत्र यः ॥ ५३ ॥

श्री देव्युवाच

जलाशये कृते देव ! कारिते वा महात्मभिः ।
कोऽपराधो भवेदत्र तन्ममाचक्ष्व शङ्कर ! ॥ ५४ ॥

श्री महादेव उवाच

काश्यां तिले तिले लिङ्गं काश्यां तीर्थम्पदे पदे ।
खननं काशिभूमेस्तु दुर्घटम्भाति पार्वति ॥ ५५ ॥
जीर्णोद्धारं च ये कुर्युर्निःसन्देहा महाधियः ।
स्वयं कृतं यद् वाप्तादितदनन्तफलप्रदम् ॥ ५६ ॥
ततोऽप्यधिकधर्मादिजनकं जीर्णमुद्धृतम् ।
न तत्र लिङ्गपीडा स्यान्न तीर्थखननम्भवेत् ॥ ५७ ॥
अतो जीर्णोद्धृतिः कार्या निरवद्या महाफला ।
जीर्णोद्धारम्प्रकुर्वन्ति तेषाम्विश्वेश्वरः शिवः ॥ ५८ ॥
काश्यां कृतानाम्पापानां मूलोद्धारं करोति हि ॥ ५९ ॥
यो बुद्धिपूर्वम्प्रकरोति पापं न तस्य काश्यां मरणम्प्रसिध्यति ।
मृतोऽपि निर्वाणसुखन्न चाऽऽप्नुयाद्यत्तत्पिशाचत्वसवाप्नुयान्नरः ॥ ६० ॥

श्री देव्युवाच

पिशाचत्वस्य मर्यादां ब्रूहि पापस्य चानघ ! ।
यातनायाश्च यद्रूपं बुद्धिपूर्वकृतस्य च ॥ ६१ ॥

श्रीभगवानुवाच

भवानि ! भवभूतानां नृणान्निस्तारकारणम् ।
पृष्टं पृथक् प्रवक्ष्यामि भीतानामभयप्रदम् ॥ ६२ ॥

काश्यामागत्य सततं श्रोतव्या काशिसत्कथा ।
न विना श्रवणम्पुण्यं पापम्वा वेत्ति कश्चन ॥ ६३ ॥
विदित्वा यतते भूयो निस्ताराय पराय च ।
सर्वलोकेषु वेदेषु विचारः श्रवणाद्भवेत् ॥ ६४ ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु सर्वशास्त्रेषु पार्वति ।
काशी ब्रह्मेति विख्यातं तद्ब्रह्म प्राप्यतेऽत्र हि ॥ ६५ ॥
तस्मात्काशीगुणान्सर्वे तत्र तत्र वदन्ति हि ।
श्रुत्वाऽपि पापनिरतास्तान् हन्यात्कालभैरवः ॥ ६६ ॥
सततं निर्दयो भूत्वा यावत्पापं समाप्यते ।
महापातकसंयुक्ता स्त्रिंशदब्दसहस्रकम् ॥ ६७ ॥
प्रत्येकम्प्राप्नुवन्त्येव यातनां कालभैरवीम् ॥ ६८ ॥
क्षुद्राणि पापानि तु सङ्ग्रहेण भवन्त्यवश्यन्तु महान्ति तानि ।
यथा हिरण्यं कसयोपसञ्चितं निष्कादि वृद्धिम्भजते भवानि ! ॥ ६९ ॥
सर्वो हि लोकः कुरुते प्रवृत्तिम्प्रवृत्तिभाजाङ्खलु पातकं स्यात् ।
अतः क्रियज्जीवितमाकलय्य निवृत्तिरङ्गीक्रियते मुमुक्षुभिः ॥७०॥
वाक्पातकम्मानसिकन्तथैव प्रवृत्तिमार्गे निरतस्य वश्यम् (?) ।
भवत्यसौ यद्यपि सावधानस्तथापि संस्कारवशादुपैति ॥७१॥
अतः प्रवृत्तिम्परिहाय सेव्या वाराणसी साधुजनैः सुखार्थिभिः ।
नो चेद्यथेष्टाचरणेन यत्फलं तद्भोगकाले प्रकटीभविष्यति ॥७२॥
लौकिक्यो यातनाः कश्चित्सोढुं शक्या न पार्वती ! ।
किम्पुनः कालराजेन कृतास्तीव्राः सुदुःसहाः ॥७३॥
नित्यं कृतानां क्षुद्राणां पापानान्नित्यकर्मणा ।
नाशः सम्पाद्यते सद्भिर्गङ्गास्नानादिना नृभिः ॥७४॥

**काश्यां मन्दिर तडागानां जीर्णोद्धारे महत्पुण्यवर्णनम्**

त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्षशतानि च ।
पच्यते दुःखसंघोघेः कालराजेन सादरम् ॥७५॥
अतः श्रुत्वा तडागादि जीर्वोद्धारम्प्रकल्पयेत् ।
क्षेत्रे कृतानाम्पापानां प्रायश्चित्तम्मतम्मम ॥७६॥
असावधाना हि जना दुरात्मनः कुर्वन्ति पापानि किमत्रचित्रम् ।
पठन्ति जानन्ति वदन्ति नित्यशः सुपण्डितास्तेऽपि विषाग्निमध्यगाः ॥७७॥

भवन्ति दुःखान्यनुभूय पश्चात्तापेन पापेन च दह्यमानाः ।
पुनः पुनर्विषयासक्तचित्ताः शास्त्रं गुरुन्देवमथो न काशीम् ।।७८।।
आश्रित्य भूयो विषयेष्वेव बुद्धिं कुर्वन्ति सत्यान्न तु काशिकायाम् ।।७९।।
व्यवहारोऽपि तैस्त्यक्तः प्रसिद्धः सर्वजन्तुषु ।
मृत्तिकापरिवर्तेन हिरण्यम्प्राप्यते न हि ।।८०।।
अहो ! काश्याः कौतुकन्तु पश्य पार्वति ! सर्वदा ।
गृहीत्वा नारकन्देहं प्रददात्यमृतम्वपुः ।।८१।।
श्रुत्वाऽध्यायमिमम्पुण्यं न दुःखैरभिभूयते ।
सुखवासश्च भवति काश्यां सर्वजनप्रियः ।।८२।।
इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते काशीरहस्ये सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

## अथ अष्टमोऽध्यायः

काश्यां धर्मविरहितस्य प्रायश्चित्तवर्णनम्

श्रीदेव्युवाच

देव ! देव ! महादेव ! भक्तानामभयप्रद ! ।
काशीवासः सुगहनः पापिनां धनलोभिनाम् ॥१॥
विषयासक्तमनसां न सुखाय कदाचन ।
सुखाय सर्वलोकानां प्रवृत्तिः प्रथिता खलु ॥२॥
विषयैः परिपुष्टानां जीवानां नान्यथा भवेत् ।
प्रायश्चित्तान्तरन्देव वदस्व यदि मन्यसे ॥३॥
प्रायश्चित्तविहीनस्य यातना जायते ध्रुवम् ।
बिभेमि दीनान् मनुजान् दृष्ट्वा शास्त्रपराङ्मुखान् ॥४॥
तानप्युद्धर देवेश ! शठान् स्वेच्छापरिग्रहान् ॥५॥

श्रीमहादेव उवाच

साधु पृष्टन्त्वया देवि ! क्षेत्रपापकृतान्नृणाम् ।
निस्तारः स्याद्यथा मंक्षु प्रायश्चित्तेन येन हि ॥६॥
प्रायश्चितविहिनस्य यातना बहुदुः सदा ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥७॥
जैगीषव्यो मुनिश्रेष्ठस्तपस्वी मत्परायणः ।
तेन पृष्टोऽहमागत्य शिष्यार्थन्तद्दयालुना ॥८॥
स्तुत्वा मां वैदिकैः सूक्तैः स्मार्तैः पौराणिकैः शुभैः ।
प्रसन्नम्माम्मुनिर्ज्ञात्वा वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥९॥
किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोऽहं देव ! देव ! दयानिधे ! ।
आज्ञया प्रवदाम्यज्ञः सर्वज्ञस्य तवाग्रतः ॥१०॥
मया चोक्तो बदस्वेति त्वम्मे भक्तः प्रियश्शुचिः ।
अदेयन्तव नाऽस्त्यद्य निर्वाणाद्यपि याच्यताम् ॥११॥
यस्तु मां सर्वभावेन भजते कोऽपि मानवः ।
न तस्याऽदेयमस्तीह त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१२॥

## प्रायश्चितविषये शङ्करजैगीषव्योः सम्वादवर्णनम्

जैगीषव्य उवाच

अयम्मम दुराचारः शिष्यः पापरतः सदा ।
काश्यां वसन्नपिमदात्कृत्या कृत्यन्न वेत्ति तु ॥१३॥
शिक्षितो बहुधाऽस्माभिर्बहुधा ताडितोऽपि हि ।
परदारपरद्रव्यरतः परधनापहृत् ॥ १४ ॥
पिशुनः पापनिरतो वेश्यागृहनिवासकृत् ।
पितृमातृगुरुद्रोही विप्रमित्रध्रुगेव च ॥ १५ ॥
किम्बहूक्तेन देवेश ! पापनिर्वचनम्मया ।
न शक्यते हृदयस्य कर्त्तु यद् ब्राह्मणो ह्यसौ ॥ १६ ॥
मया निष्काशितः पापः आश्रमात्स्वात्ततोगतः ।
किञ्चित्किञ्चिच्चेष्टितं हि ज्ञात्वा श्रुत्वाऽपि शिक्षितः ॥ १७ ॥
न करोति यदा किञ्चिच्छिक्षितो निन्दितस्त्वयम् ।
तदा वाग्व्यवहारोऽपि त्यक्तः सर्वात्मना मया ॥ १८ ॥
मत्सन्निधौ विनयवान्स्वेच्छाचारो बहिः सदा ।
इति पौरमुखाच्छ्रुत्वा चेष्टितन्तस्य दुर्मतेः ॥१९॥
मत्सन्निधानाद् गच्छ त्वं नोचेत्त्छप्स्यामि दुष्कृत ! ।
बहुधा सर्वलोकेभ्यः श्रुतो (तं) दुर्विनयन्तव ॥२०॥
त्यक्तो मया यथेच्छन्त्वं गच्छ वा तिष्ठ वाऽधुना ।
इत्युक्तः स मया शिष्यो लज्जितः पापकृत्तमः ॥२१॥
गन्तुम्मतिं स्वीकृतवान् विहायाऽन्यत्र काशिकाम् ॥२२॥
काशीम्परित्यज्य गतोऽतिदूरं विन्ध्याद्रिकूटं समवाप्य जापम् ।
तपश्चचाराऽऽशु विशुद्धिकारणं वर्षत्रयं पूर्णफलादिभुक्परम् ॥२३॥
ततः प्रयातोऽति विरक्तयोगी गोदावरीम्भीमरथीन्ततोऽपि ।
तत्रापि तप्त्वा सुचिरन्धृतव्रतो न शर्म लेभे सुकृतैकसाध्यम् ॥२४॥
ततः श्रीशैलमासाद्य द्रष्टुं स्वामिनमव्ययम् ।
स्थितमग्रे विभुं स्कन्दं न ददर्श तवाऽऽत्मजम् ॥२५॥
तत्रैव वसतिञ्चक्रे तपः शुद्धिञ्चकार सः ।
काश्यां कृतानाम्पापानां शुद्धये धर्मवृद्धये ॥२६॥

एवम्बहुतिथे काले ह्यगस्त्यः कुम्भसम्भवः ।
काशीविरहदुःखेन विह्वलः समुपागतः ॥ २७ ॥
हा ! काशि ! काशि हा ! काशि काशिके काशिकेति च ।
बहुधा व्याकुलो भूत्वा पठन्स्कन्दमुपागतः ॥ २८ ॥
वारम्वारं श्रवणतः काशिनामामृतस्य हि ।
तेन दृष्टः काशिवासी ह्यगस्त्यः स्कन्द एव च ॥ २९ ॥

**काशीमाहात्म्यवर्णने स्कन्दागस्त्ययोः सम्वादवर्णनम्**

नानातपोभिरत्युग्रैर्नं मया स्कन्द ईक्षितः ।
काशीनामानलेनाऽऽशु दग्धपापो हि दृष्टवान् ॥ ३० ॥
इतिमामुक्तवान् पूर्वम्पुनः पृष्टो मया त्वयम् ।
पुनरूचे तपः शुद्धं सम्वादं काशिसम्मतम् ॥ ३१ ॥
अगस्त्यमागतं ज्ञात्वा स्कन्दः प्रीतमनाभवत् ।
आगच्छाऽऽगच्छ शीघ्रम्मां परिष्वज महामुने ! ॥ ३२ ॥
काशिकाविरहात् त्वन्तु जातो व्याकुलमानसः ।
ज्ञानिनामपि धीराणां योगिना सुतपस्विनाम् ॥ ३३ ॥
काशीविरहजन्दुःखं बाधते विदुषां सदा ।
जडानां देहगेहादिप्रीतियुक्तमनोधियाम् ॥ ३४ ॥
अन्यप्रदेशवत्काशी भाति नित्यन्दुरात्मनाम् ॥
त्वं काशीवासतत्वज्ञः शङ्कराचंनतत्त्ववित् ॥ ३४ ॥
देवैः स्वकार्यनिरतैः कर्मरूपैर्विवासितः ।
काशीम्पश्यति यः कश्चित्काश्यां वसति यश्च हि ॥ ३६ ॥
काशीं स्मरति यः कश्चित्स पूज्यो मम सर्वदा ।
इत्युक्त्वा पूजितस्तेन स्वामिना मुनिसत्तमः ॥ ३७ ॥
दत्त्वाऽऽचमनपानादि सर्वम्पप्रच्छ कुम्भजम् ॥ ॥३८ ॥

स्कन्द उवाच

वदस्वाऽगस्त्य ! शुद्धात्मन्कंकामङ्करवाम ते ।
न चास्मद्दर्शनम्प्राप्य शोचितुं त्वमिहार्हसि ॥ ३९ ॥

अगस्त्य उवाच

जय देव ! महादेवतनयानन्ददायक ! ।
बाराणसीं प्रापयस्व यदि तुष्टोऽसि षण्मुख ! ॥ ४० ॥

स्कन्द उवाच

त्वं प्राप्स्यसि महाबुद्धे ! विघ्नान्तेकाशिकांशुभम् ।
तवाऽपि कर्मगहनं काशीं त्यक्त्वाऽत्र तिष्ठसि ॥ ४१ ॥
न ज्ञायते सूक्ष्मतरं हि किञ्चित्कर्माऽस्ति लोकस्य सुदुर्विभाव्यम् ।
योगादियज्ञादितपोभिरुग्रैर्युक्तस्य ते सम्प्रति नास्ति काशी ॥ ४२ ॥
न ज्ञायते कस्य किमस्तिपुण्यं स्वल्पोऽपि काश्यां तनुभृत्सदाऽऽस्ते ।
देवादयोऽपि प्रभवन्ति नैव स्थातुं क्षणं काशिकायां क गर्वः ॥ ४३ ॥
विश्वेश ! विश्वेश ! शरण्यशम्भो ! नान्यागतिस्त्वत्पदाब्जम्विहाय ।
अनेकतापार्दितमानसानामस्माकमाकाङ्क्षितदानदक्ष ॥ ४४ ॥
त्वया कृतेयं जनतापशान्तये प्रपामृतस्पाययितुं जनानाम् ।
न जानिशीलं सुकृतन्नचाऽपि पृष्ट्वाऽमृतं यच्छसि शङ्कर ! श्रुतौ ॥ ४५ ॥
पुराणशास्त्रश्रुतिधर्मशास्त्रविद्भिर्नृभिर्गदितं दीनसाध्यम् ।
आशामात्रं साधनन्नः कृपालो ! नो वा धर्मः साख्ययुक्तन्तयो वा ॥ ४६ ॥
दीनानहङ्कारविकारहीनान् प्रपातिकाशी पतिरादरात्मा ॥ ४७ ॥
दीनानाथैकशरणं क्षेत्रं क्षेत्रज्ञसंयुतम् ।
प्राप्यते निरहङ्कारैराशाशतविवर्जितैः ॥ ४८ ॥

अगस्त्य उवाच

प्रमादाद्यदि सूक्ष्मम्वा स्थूलम्वा पातकन्नृभिः ।
कृतं काश्यां तारकारे ! कथं तस्याऽऽशु निष्कृतिः ॥ ४९ ॥

स्कन्द उवाच

अविमुक्ते कृतानान्तु पापानां कुम्भसम्भव ! ।
न दृष्टा न श्रुता वाऽपि मया शिवमुखाादपि ॥ ५० ॥
निष्कृतिः स्थूलसूक्ष्माणां शिवो वेत्ति न चाऽपरः ॥ ५१ ॥

जैगोषव्य उवाच

इति श्रुत्वा स्कन्दमुखाज्जातत्रासस्त्वयम्पुनः ।
सहसा मामथाऽऽगम्य प्रार्थयामास शङ्कर ! ॥ ५२ ॥
मयाऽपिनश्रुता दृष्टा क्षेत्रपापकृतान्नृणाम् ।
निष्कृतिःशर्व ! सर्वेश ! ब्रूहिचेदस्ति शङ्कर ! ॥ ५३ ॥

## प्रायश्चित्ती काश्यां ज्ञानेन शुद्धियाप्नोतीतिवर्णनम्

महादेव उवाच

जैगीषव्यमुने ! त्वम्मे भक्तः परमतापसः ।
श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञः काशीतत्वविदास्वर ॥ ५४ ॥
तवाग्रे कथयिष्यामि काशीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
प्रायश्चित्तं न कर्माऽस्ति किञ्चित्पापकृतान्नृणाम् ॥ ५५ ॥
अस्ति चैकं सुगोप्यंहितवाऽग्रेकथयामि तत् ।
प्रायश्चित्तन्न कर्माऽस्ति मुने ! ज्ञानम्विना कचित् ॥ ५६ ॥
ज्ञानन्तुदुर्ल्लभन्नृणां विषयासक्तचेतसाम् ।
तत् (ज) ज्ञानं काशिकायान्तु साक्षाद्भवति देहिनाम् ॥ ५७ ॥
देहाभिमानिनां सौख्यमृषीणामपि दुर्ल्लभम् ।
अत्रानन्दवने ज्ञानमाच्छादयति दुर्मतिः ॥ ५८ ॥
स्वल्पेनाच्छाद्यते ज्ञानमङ्गुल्या सूर्य्यंवत्खलु ।
तस्मात्वमिवयो धीरः स भवेत ज्ञानभाजनम् ॥ ५९ ॥
न जितेन्द्रियता लोके न वैराग्यस्वृषोऽपि न ।
विविक्तसेवा सत्सङ्गश्रवणाद्यपि दुर्लभम् ॥ ६० ॥
अन्यान्यपि सुमुक्षूणां साधनानि महान्यपि ।
भवन्ति विधिदृष्टेन न चान्यत्रादृतात्मनाम् ॥ ६१ ॥
भवन्ति काश्यां सफलानि तानि मोक्षावसानानि सुसाधनानि ।
सदा सदानन्दमये ममालये मया सहायेन सुसाधितानि ॥ ६२ ॥
काश्यां स्थितानां जन्तूनामविचारितकर्मणाम् ।
न सुखं न परा शान्तिस्तस्मात्काश्यां विचारकृत् ॥ ६३ ॥
सुखमाप्नोति परमं परां शान्तिम्प्रपश्यति ।
प्रायश्चित्तविहीनानां न शान्तिः कुत्रचिद्भवेत् ॥ ६४ ॥
किम्पुनः काशिकामध्ये पापं कृत्वा सुखं लभेत् ।
ब्रह्महत्यादिपापानां प्रायश्चित्तं हि काशिका ॥ ६५ ॥
काशिकायां कृते पापे प्रायश्चित्तं न जायते ।
प्रायश्चित्तविहीनानां यातनाऽस्तिदा नृणाम् ॥ ६६ ॥

**ज्ञानस्वरूपायाः काश्याः पञ्चकोशप्रदक्षिणाकरणेन पापशान्तिवर्णनम्**

ज्ञानस्वरूपा काशीयं पञ्चक्रोशपरीमिता ।
तस्याः प्रदक्षिणं कृत्वा नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ ६७ ॥
मम ब्रह्मयं लिङ्गमापातालात्समुत्थितम् ।
शिवलोकोपरिगतमत्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ॥ ६८ ॥
आजन्मसञ्चितैः पापैर्मुच्यते तत्प्रदक्षिणात् ।
क्षेत्रे कृतानाम्पापानाम्प्रायश्चित्तं न चेतरन् ॥ ६९ ॥

**काशीवासेन जीवन्मुक्तत्ववर्णनम्**

प्रदक्षिणद्वयङ्कृत्वा दशजन्मकृतादघात् ।
मुक्तो भवति पापात्मा सद्यो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ७० ॥
शुभकृद्यदि कुर्याद्विमोहात्पापन्न तस्य तत् ।
क्षेत्रम्प्रदक्षिणं कृत्वा भवेत्पापीह विज्वरः ॥ ७१ ॥
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा पापञ्जन्मशतार्जितम् ।
विलयं याति चैवाऽत्र न कार्या वै विचारणा ॥ ७२ ॥
यावज्जीवम्बसेतकाश्यां प्रत्यब्दं सुप्रदक्षिणम् ।
जीवन्मुक्तास्तु ते ज्ञेया निष्पापाः काशिवासिनः ॥ ७३ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्तें तृतीयखण्डं काशीरहस्ये ।
प्रायश्चित्तविनिर्णये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

# अथ नवमोऽध्यायः

## मण्डपस्य ऋषिपुत्रस्याख्यानकम्

महादेव उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासम्पुरातनम् ।
ऋषिः कुष्माण्डतनयो मण्डपः सङ्गदोषतः ॥ १ ॥
बालएव मम क्षेत्रे पापञ्चरति वेदवित् ।
पित्रा निवारितो मात्रा भ्रात्रा श्रोत्रियवंशजः ॥ २ ॥
असत्सङ्गं त्यजति नो विषयासक्तमानसः ।
परदारपरद्रोहपरद्रव्यरतः सदा ॥ ३ ॥
परापवादकुशलो वेदवादविवर्जितः ।
यथा यथा वयस्तस्य वृद्धिम्प्राप सुदुर्मतेः ॥ ४ ॥
तथा तथा पापरतः सत्सङ्गविमुखः सदा ।
मित्रैर्द्वित्रैर्नरपतेः सम्वृतो राजवेश्मनि ॥ ५ ॥
प्रविष्टो धनमादाय चौर्येण स विनिर्गतः ।
वेश्यागृहे तन्निक्षिप्य तया सह दिवानिशम् ॥ ६ ॥
रमते मण्डपो विप्रः पितृविप्रत्वनाशकः ।
कदाचिद्रममाणोऽसा तृषार्तः समपद्यत ॥७॥
मञ्चाधस्तात्ताम्रपात्रं गृहीत्वा पीतवान् सुराम् ।
जलबुद्ध्या पातकं तज्जातं तदविचारतः ॥८॥
किमेतद्धि मया पीतमिति वेश्यां स पृष्टवान् ।
तमाह सा मयानीतं सुरापात्रं सुसौख्यकृत् ॥९॥
त्वदर्थे सम्भृतम्मध्वा पुनः पिब सकृत् सकृत् ।
इति वेश्यावचः श्रुत्वा धिक् धिक् पापम्महत् कृतं ॥१०॥
वेश्यासङ्गेन मदिरा पीता ब्राह्मणसूनुना ।
मण्डपस्य ततो मित्रद्वयमासीत् सुदुःखितम् ॥११॥
वेश्यामुखात्सुरापानं तस्य श्रुत्वा जगर्हतुः ।
आदौ विप्रस्ततोऽस्माकं सङ्गी वेश्यारतस्ततः ॥१२॥

मधुपानं ततो जातं ततस्त्वं किं करिष्यसि ।
आच्छादयामः पापन्ते सुवर्णन्देहि नो बहु ॥१३॥
तथेत्युक्त्वा पुनर्वेश्यागारङ्गत्वा प्रविश्य सः ।
सुवर्णं याचयामास ताडयामास तञ्च सा ॥१४॥

वेश्योवाच

वराक मम लीलायाः स्वादञ्ज्ञात्वाऽपि मूर्खवत् ।
सुवर्णं याचसे किं त्वं लक्षमात्रं कियन्मम ॥१५॥
चुम्बने चुम्बने लक्षं वरेभ्यः प्राप्तमद्य मे ।
त्वम्मयोपेक्षितो दीनो दत्त्वा प्रार्थयसे धनम् ॥१६॥
कामशास्त्रं त्वया मूढ ! पठितन्न कदाचन ।
रतिलीलान्न जानासि मम कन्दर्प्पमोहिनीम् ॥१७॥
गच्छ गच्छ सुखेनाऽऽशु यावद्दास्यो न सन्ति मे ।
ताडयिष्यन्ति सर्वास्त्व निर्लज्जम्ब्राह्मणाधमम् ॥१८॥
वेश्यागृहात्ततस्तूर्णं क्षुधितोऽतिपिपासितः ।
पितुःसकाशगमन्मातुश्च प्रियकाम्यया ॥१९॥

**मण्डवटुश्चेष्टाकरणे दारकयोरस्य गृहागमनवर्णनम्**

ततस्तौ दारकौ प्राप्तौ मित्रत्वे परिकल्पितौ ।
वदन्तौ देहि कनकमस्मर्दशन्त्वमाशु तत् ॥२०॥
राज्ञोगृहाद्यदानीतं स्तेयेनाऽस्माभिरुत्तमम् ।
इति श्रुत्वा पिता तस्य महादुःखसमन्वितः ॥२१॥
उवाच दारकौ भीतः कौ युवां केन कर्मणा ।
कौ भवन्तौ कथं सङ्गः कृतोऽनेन दुरात्मना ॥२२॥
तद्धिरण्यं च कुत्राऽऽस्ते यदर्थं वाम्व्यवस्थितौ ॥२३॥

दारकावूचतुः

अहङ्कुविन्दस्त्वत्पुत्रो मण्डपो नापितस्त्वयम् ।
मैत्री त्रमाणां सम्भूता दैवाद्दोषत्रयात्मिका ॥२४॥
विभज्य भागाः सर्वैर्हि ग्राह्या इत्यवधिः कृतः ।
अनेन वेश्याभवने निक्षिप्तं सर्वमेव हि ॥२५॥
सा न प्रयच्छति मुने ! वेश्या वादविवादिनी ।
अतःपरं राजगृहे गम्यते वक्तुमेव हि ॥२६॥

देहि दापय चाऽस्माकं धनं शीघ्रं सुदुःखदम् ।
नोचेत्तवाऽऽत्मजः साधो ! शूलप्रोतो भविष्यति ॥२७॥
रक्ष पुत्रन्तथाऽस्मांश्च स्वात्मानमपि चाऽनघ ! ॥२८॥

कूष्माण्ड उवाच

आगच्छत मया सार्द्धं राजराजस्य सन्निधौ ।
पुत्रन्नीत्वा गमिष्यामि शास्त्यर्थंन्धर्मतो यथा ॥२९॥
राजभिः कृतदण्डास्तु शुद्ध्यन्ति मलिनो नरा ।
अशर्वेसकृतः पापा गच्छन्ति नरकस्मृताः ॥३०॥

तावूचतुः

पुत्रं समर्पय मुने ! किमर्थंन्त्वङ्गमिष्यसि ।
राज्ञो गृहे विवादार्थे न गन्तव्यं कदाचन ॥३१॥

कूष्माण्ड उवाच

त्वया सह न सम्बन्ध इत्युक्त्वा नीयतां सुतः ।
नोचेदहङ्गमिष्यामि राजवेश्म सुनिश्चितम् ॥ ३२ ॥

तावूचतुः

त्वया सह न सम्बन्धो देहि मित्रद्रुहं शठम् ।
अस्माभिरेवकर्तव्यं तिष्ठ तिष्ठेति लज्जितः ॥ ३३ ॥

कूष्माण्ड उवाच

पुत्र गच्छ ! द्विजश्रेष्ठ निन्द्य कृत्यं कृतन्त्वया ।
प्रायश्चित्तं विधायाशु राज्ञा दत्तं न चाऽन्यथा ॥ ३४ ॥
आगन्तव्यं त्वया वत्स ! याहि नो चेद्यथासुखम् ।
तावन्नाहन्तव पिता न सुतस्त्वं ममाद्यवान् ॥ ३५ ॥

श्रीमहादेव उवाच

जैगि(गी) षव्य मुनिश्रेष्ठ तेन विप्रेण मण्डपः ।
समर्पितस्तयोः पुत्रः स्नेहमुत्सृज्य दूरतः ॥ ३६ ॥
धार्मिकाणान्धनैः पुत्रैः कलत्रैः किम्प्रयोजनम् ।
धर्मसङ्ग्रहशीलाश्च यतस्ते काशिसंश्रयाः ॥ ३७ ॥
पुत्रो भ्राता पिता वाऽपि यः काश्याम्पापमाचरेत् ।
त्याज्य एव स पापात्मा भवेत्संसर्गजम्भयम् ॥ ३८ ॥

तौ तं नीत्वा दूरदेशं ताडयामासतुर्भृशम् ।
स ताड्यमानो मूर्च्छान्ताम्प्राप मृत्युसमाम्मुने ॥ ३९ ॥
मृतोऽयमितिचोत्सृज्य ययतुस्तौ विपण्णवत् ।
पश्चात्तापेन सन्तप्तावसिसङ्गमसन्निधौ ॥ ४० ॥
त्यक्त्वा विप्रसुतम्भीतौ गतौ सिद्धेश्वरालयम् ।
तत्रोषित्वा त तै रात्रिं दुःखितौ भृशम ॥ ४१ ॥
पश्चत्तापपरौ तौ तु पुनरन्वेपितुं गतौ ।
मृतो वा जीवति तु वा ज्ञात्वा देशन्त्यजाम हे ॥ ४२ ॥
यावद्विचारणपरावागतावसिसङ्गमे ।
तावत्ततो द्विजसुतो गतमूर्च्छः प्रतस्थिवान् ॥ ४३ ॥
पञ्चक्रोशात्मकस्यैव शिललिङ्गस्य तद्दिने ।
प्रदक्षिणम्प्रकुर्वन्ति शिवमाहात्म्यवेदिनः ॥ ४४ ॥

**मण्डपस्यकर्दमेशसन्निधौ रात्रिजागरणवर्णनम्**

क्षेत्रप्रदक्षिणाङ्कर्तुं सङ्गेन चलितः स च ।
तस्मिन् दिने कर्दमेशसन्निधौ यात्रिणः स्थिताः ॥ ४५ ॥
सोऽपि तत्र स्थितो विप्रो मण्डपो मण्डपोऽभवत् ।
रात्रो जागरणं तेन कृतन्नित्यं शिवाप्रतः ॥ ४६ ॥
सर्वैः प्रोत्साहितः साधु साधु साध्विति साध्विति ।
अयम्परमशैवस्य कूष्माण्डस्य तु मण्डपः ॥ ४७ ॥
पुत्रः शिवव्रतधरः साधु नृत्यति गायति ।
न तस्य चेष्टितङ्कोऽपि तन्मध्ये वेत्ति तत्त्वतः ॥ ४८ ॥
अतएवाऽऽदृतः सद्भिर्भक्तिन्दृष्ट्वा बहिर्गताम् ।
सोऽपिचारुविचित्राङ्गः सर्वेषां सुमनोहरः ॥ ४९ ॥
बभूव सद्भक्तिपरः सत्सङ्गेन द्विजोत्तमः ।
विचार्य मनसिह्येवं शिवभक्त्या सताम्प्रियः ॥ ५० ॥
जातोऽस्मि दुष्टोऽपि सदा पञ्चपातकसंयुतः ।
साधुवादः सतां ह्येषो भवति प्रत्यहम्मम ॥ ५१ ॥
धनधान्यादिलब्धिश्च भोजनाच्छादनानि च ।
अनायासेन लभ्यन्ते ऋजुमार्गेण नित्यदा ॥ ५२ ॥
शिवेभक्तिः सतान्तुष्टिर्देहपुष्टिर्निराकुला ।
येन मार्गेण भवति स मार्गः सर्वसम्मतः ॥ ५३ ॥

एवम्विचारयन् सोऽथ चण्डिकाम्प्राप मण्डपः ।
तत्र पूजा भीमचण्ड्याः कृत्वा काशिनिवासिभिः ॥ ५४ ॥
ब्राह्मणैर्भोजितः सम्यगादृत्य शिवभक्तितः ।
उपविष्टस्ततो रात्रौ देव्याः पुरत आदृतः ॥ ५५ ॥
क्षेत्रमाहात्म्यकथनं श्रवणञ्चक्रुरुत्सुकाः ।
ततो विष्णुजनाः शैवाः कीर्तनञ्चक्रुरादृताः ॥ ५६ ॥
तन्मध्ये मण्डपः शौण्डो नृत्यङ्गानञ्चकार ह ।
साधुवादेनमहताम्पुनस्तैः साधु सत्कृतः ॥ ५७ ॥
तस्याऽपि च मनोब्रह्मन् शिवे हि निममज्जत ।
अथ तृतीये दिवसे मार्गे एव स मण्डपः ॥ ५८ ॥
नृत्यन् गच्छति गायन् हि स्वयमेव शिवः शिवम् ।
पदे पदे दक्षिणतः क्षेत्रस्य मम स द्विजः ॥ ५९ ॥
ब्रह्महत्यादिपापानां प्रायश्चितं भवेद्यथा ।
महादेव ! महादेव ! वासुदेव ! शिवेति च ॥ ६० ॥
स्मरन्नृत्यभीक्ष्णंसः सर्वपापबहिष्कृतः ।
तृतीये दिवसे गत्वा तन्देहलीविनायकम् ॥ ६१ ॥
पूजयामास सोऽव्यग्रः काशीभक्तिविवृद्धये ।
मण्डपो लौल्यरहितः शिवनामपरायणः ॥ ६२ ॥
बलाद्दत्तमपि त्यक्त्वा हरिकीर्तनतत्परः ।
नाश्नाति न पिबत्यम्भो न कस्याऽपि वशे स्थितः ॥ ६३ ॥
निर्द्वन्द्वः समदृक्शान्तो बभूव गतसाध्यवसः ।
ब्राह्मणेन मया स्तैन्यं सुवर्णस्य कृतं रहः ॥ ६४ ॥
वञ्चितश्च पिता मान्यो माता साध्वी च वञ्चिता ।
पापेनोपार्जितम्वित्तं वेश्यावेश्मनि तिष्ठति ॥ ६५ ॥
मनसा विप्रहननं गसनम्मातुरेव च ।
सम्पन्नञ्च सुरापानं साक्षाद्वेश्यागृहेन किम् ॥ ६६ ॥
आहारो मैथुनन्निद्रा मिथ्याचदादयोऽपिवा ।
जाता मम वराकस्य कथम्पापपरिक्षयः ॥ ६७ ॥
अनुतापैः सुसन्तप्तो मण्डपो मण्डवर्जितः ।
क्षेत्रप्रदक्षिणङ्कुर्वन्निष्पापः समपद्यत ॥ ६८ ॥

कश्चिद्रुदति संस्मृत्य संस्मृत्य स्वाघसञ्चयम् ।
कश्चिद्धसति क्षेत्रस्य प्रदक्षिणकृदित्यहम् ॥ ६९ ॥
काशी काशीति शिवशङ्कर! केशव ।
पाहि माम्पतितन्दीनं गुरुदेवापराधिनम् ॥ ७० ॥
रामेश्वरे समागम्य स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः ।
रामेश्वरं समभ्यर्च्य सोमनाथन्तथाऽर्च्य च ॥ ७१ ॥
रामं राजीवपत्राक्षं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ।
न भुङ्क्ते न पिबत्यम्भो नृत्यगीतादितत्परः ॥ ७२ ॥
प्रार्थ्यमानोऽपि गृह्णाति न किञ्चिदपिखेदकृत् ।
ततः प्रचलिताः सर्वे यात्रिणः शिवतत्पराः ॥ ७३ ॥
मण्डपोऽपि स्मरन्काशी शिवम्विष्णुम्प्रतस्थिवान् ।
वृषध्वजं समानाद्य स्नात्वा वै कापिले जले ॥ ७४ ॥
देवंसम्पूज्य विधिवत् स्थित्वा तत्र च पूर्ववत् ।
ततः प्रभाते वरणासङ्गमे स्नानमाप्य च ॥ ७५ ॥
गताः सर्वे विश्वनाथम्प्र (न्द्र) ष्टुं श्रीपार्वतीपतिम् ।
तत्र स्थित्वा महापूजां कृत्वा सर्वे महाजनाः ॥ ७६ ॥

**मण्डपस्थविश्वेश्वरप्रसादात्पापान्मुक्तिवर्णनम्**

अन्नाऽदिवासो दानानिददुः शङ्करतुष्टये ।
मण्डपोऽपि तथा कृत्वा मोक्षमण्डपमध्यतः ॥ ७७ ॥
साष्टाङ्गम्प्रणतः प्राह सत्सदोमध्यगोऽघकृत् ।
मया पापानिसर्वाणि सुमहान्तिबहून्यपि ॥ ७८ ॥
कृतानि तत्र वदत निष्कृतिम्ममसत्तमाः ।
यथाऽहम्पापनिर्मुक्तो भवामि तु तदुच्यताम् ॥ ७९ ॥

सदस्या ऊचुः

त्वन्निष्पापोऽसि भक्तोऽसि शिवयोः केशवस्य च ।
पञ्चक्रोशात्मकं लिङ्गं सत्सङ्गाद्दक्षिणीकृतम् ॥ ८० ॥
मैत्रीवाणिज्यमूल्याद्यैः किम्पुनः श्रवणादिभिः ।
येनकेनाऽपि सुमह तस्य पापं न विद्यते ॥ ८१ ॥

मण्डपोवाच

पित्रा निष्काशितः सोऽहं कथं यास्यामि तद्गृहे ।
प्रतीतिकारणं किञ्चिदस्ति चेद्गमनं गृहे ॥ ८२ ॥

प्रेषयन्तु तदा सभ्याः शास्त्रप्रत्ययसंयुताः ।
गर्हयन्तो गृहस्था नो नोचेत्किङ्गमनेन मे ॥ ८३ ॥

सदस्या ऊचुः

आकारयस्व पितरमस्मद्वचनगौरवात् ।
प्रतीतिन्दर्शयामोऽद्य दण्डनाथस्य सन्निधौ ॥ ८४ ॥

श्रीमहादेव उवाच

मण्डपोऽथ गृहद्वारं गत्वा शिवशिवेति च ।
महादेवमहादेवेत्युत्वा तूष्णीं व्यवस्थितः ॥ ८५ ॥
कूष्माण्डः प्राह दयिताङ्को ऽतिथिर्द्वारि वर्तते ।
पश्य पश्याऽऽशु सुभगे शिववाक् शङ्करप्रियः ॥ ८६ ॥
सा भर्तुर्वचनाद् गत्वा दृष्ट्वा मन्डपमात्मजम् ।
उवाच वचनम्भीता भर्तुः पुत्रार्थमातुरा ॥ ८७ ॥
अकृत्वैव च निर्वेशं कथमागमनम्वद ॥ ८८ ॥

मण्डप उवाच

आहूयन्ति यदस्यास्त्वां पितरं च ममानघम् ।
निर्वेशवार्तास्विहुलां त एव ब्रूयुरग्रतः ॥ ८९ ॥
जननीमण्डपस्याऽथ गत्वा कूष्माण्डमब्रवीत् ।
पुत्रस्तेकृतनिर्वेशः शिवस्मरणतत्परः ॥ ९० ॥
द्वारि तिष्ठति स द्वेषो नाऽतिथिः कश्चनेतरः ।
कृतनिर्वेशमनघं श्रुत्वा पुत्रं तु स द्विजः ॥ ९१ ॥
उत्थायाऽऽगत्या सहसा ददर्श शिवरूपिणम् ।
रुद्राक्षमालिनं शान्तम्विभूतिकृतभूषणम् ॥ ९२ ॥
उवाच किं समायातः शीघ्रं धर्मेण यो महान् ।
नहि स्वल्पेन धर्मेण प्रायश्चित्तं महद्भवेत ॥ ९३ ॥

**पापमुक्तस्य मण्डपस्यवर्णनम्**

मण्डपउवाच

मया बहूनि पापानि कृतानि विविधानि च ।
न ज्ञायन्ते त्वया पित्रा किमन्यैर्दूरसंस्थितैः ॥ ९४ ॥
बलात्त्वामाह्वयन्त्येव सदस्याः शुद्धिदर्शिनः ।
यद्रोचते कुरु तथा त्वम्कतस्नेहेन मा व्रज ॥ ९५ ॥

इति श्रुत्वा मण्डपस्य वचः पत्न्या समन्वितः ।
मुक्तिम्मण्डपिकाम्पश्यत्सदस्यैः संस्थितां शुभाम् ॥ ९६ ॥
तैराहूतो द्विजवरैर्धर्माधर्मविजारकैः ।
उपवेश्य तमूचुस्ते पुत्रस्ते शुद्धिमाप्तवान् ॥९७॥

कूष्माण्डउवाच

प्रायश्चित्तेन केनाऽसौ शुद्धिम्प्राप्तो ममाऽऽत्मजः ।
प्रतीतिर्ममका वा स्यादनेन सह भुज्यते ॥ ९८ ॥

सदस्या ऊचुः

मुक्तिमण्डपिकायास्तु स्वामी विष्णुर्नचाऽपरः ।
सचेद्वदति वेदापमा तदाशङ्का न चोत्ततम् ॥ ९९ ॥
तत्पापदाभानुमुख्या वदिष्यन्ति च सत्तामाः ।
तदा मन्यस्वसुप्रीत शास्त्रदेवप्रसादतः ॥ १०० ॥
इत्युक्त्वा तं सदस्यास्ते तुष्टुवुर्विष्णुमव्ययम् ।
रविं ढुण्ढिं दण्डपाणिं भैरवञ्चैव पञ्चमम् ॥ १०१ ॥
पञ्चाऽपि तत्र सुप्रीता मुक्तिमण्डपमध्यतः ।
प्रादुर्भूता महात्मानो लोकप्रत्ययकारकाः ॥ १०२ ॥

विष्णुरुवाच

अयं शुद्धो दुराचारो मण्डपः साधुसङ्गमः ।
क्षेत्रप्रदक्षिणं कृत्वा कीर्तयित्वा जगद्गुरुम् ॥ १०३ ॥
माहात्म्यश्रवणञ्जातं क्षेत्रस्याऽशुभनाशनम् ।
तस्माद्गच्छत्वयं स्वीयं गृहम्पित्रा समन्वितः ॥ १०४ ॥

ढुण्ढिरुउवाच

काशीति नामजपतां शिवनामतुल्यं विघ्नादिपापनिचयो विलयम्प्रयाति ॥ १०५ ॥
किन्तत्कथाश्रवणकीर्तनवासदानैः सम्यक् प्रदक्षिणवतामशुभस्यनाशः ॥ १०६ ॥

दण्डपाणिरुवाच

काश्याम्पापं ये प्रकुर्वन्ति पापास्तेषां दुःखञ्जायते निश्चयेन ।
शम्भोर्लिङ्गं सच्चिदानन्दरूपं पञ्चक्रोशं तत्परिक्रम्य शुद्धाः ॥ १०७ ॥

कालभैरवउवाच

कार्यम्ममैतत्खलु पापिनां सदा करोमि दण्डम्बहुधाऽवश्यमेव ।
प्रदक्षिणीकृत्य समागतस्त्वशं काशीश्विशुद्धो न विचार्यमस्ति तत् ॥ १०८ ॥

श्रृण्वन्तु सर्वे वक्ष्यामि काशीमाहात्म्यमद्भुतम् ।
न चाऽत्र विस्मयः कार्यः काशीम्प्रति कदाचन ॥ १०९ ॥

आसीत्त्रेतायुगेविप्रः शाण्डिल्यः समदर्शनः ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो विनष्टाशेषसंशयः ॥ ११० ॥

तस्याभवद्विशालाक्षी नाम्ना चैवाऽतिसुन्दरी ।
पित्रा दत्ता सुमन्त्रेण विधिना वह्निसन्निधौ ॥ १११ ॥

अवन्तीवासिने सा हि पितृगृहे स्थिताऽभवत् ।
सम्प्राप्ता यौवनं काले नायातस्तत्पतिः पुनः ॥ ११२ ॥

**पश्चातापपूर्वकप्रायश्चितवर्णने विशलाक्ष्या आरकावर्णनम्**

पुश्चलीसंगदोषेण जाता सा स्वैरिणी परा ।
काश्याञ्चकार बहुधा पापन्तारुण्यमास्थिता ॥ ११३ ॥

रात्रिन्दिनन्तथा सर्वे युवानः सुवशीकृताः ।
निर्धनाश्चकृताः सर्वे रूपसौभाग्यसम्पदा ॥ ११४ ॥

देशान्तरगताश्चान्ये तद्गुणाकृष्टचेतनाः ।
एवं सा पापनिरता चक्रे पापमहर्निशम् ॥ ११५ ॥

मार्गशीर्षे कदाप्यासीद्यात्रा काश्या द्विजोत्तमाः ।
पञ्चक्रोशाश्रितापुण्या दुरितार्णवतारिणी ॥ ११६ ॥

यात्रिणो वीक्ष्य सा हृष्टा हरिष्यामि धनम्बहु ।
नृत्यस्व्याजेन गानेन सर्वेषां काशिवासिनाम् ॥ ११७ ॥

इति निश्चित्य सा पापा गता तैः काशिवासिभिः ।
दुर्गाकुण्डे स्थिताः सर्वे यात्रिणस्तद्दिने गताः ॥ ११८ ॥

साऽपि तत्र विशालाक्षी चक्रेवासंशुभोदया ।
रात्रौ जागरणं चक्रे धनलोभेन नर्त्तनम् ॥ ११९ ॥

ननर्त सा विशेषेण जगौ साऽतिमनोहरम् ।
कृता विमनसः सर्वे तया गानाच्च नर्तनात् ॥ १२० ॥

सम्प्राप्तञ्च धनंभूरि तया यात्रार्थिनान्नृणाम् ।
एवं द्वितीये दिवसे कर्दमेश्वरसन्निधौ ॥ १२१ ॥

तृतीये देहलीशे च चक्रे सा वरवर्णिनी ।
रामेश्वरे चतुर्थे तु स्नात्वा सा वरुणाजले ॥ १२२ ॥

शुश्राव सा वाच्यमानम्पुराणन्देवसन्निधौ ।
काशीमाहात्म्यसंयुक्तं श्रृण्वतां सर्वयात्रिणाम् ॥ १२३ ॥

काशीकृतानाम्पापानां यातनाम्भैरवीम्पराम् ।
शृण्वन्त्या भाग्ययोगेन पश्चात्तापो महान्भूत् ॥ १२४ ॥
गर्हयामास चाऽऽत्मानं मूर्च्छिता पतिता भुवी ।
कष्टा धैर्यं समालम्व्य तीव्रवैराग्यमागता ॥ १२५ ॥
ददौ तद्वसु विप्रेभ्यः सर्वाण्याभरणानि च ।
पुनर्नैवं करिष्यामीत्येवं सञ्जातनिश्चया ॥ १२६ ॥
पप्रच्छ विनयोपेता ब्राह्मणान् सा महायशाः ॥ १२७ ॥

विशालाक्ष्युवाच

ब्रूत विप्राः ! सुमन्दाया निष्कृतिर्यदि विद्यते ।
मादृश्याः पापशीलायाः कृपया दीनवत्सलाः ॥ १२८ ॥

विप्राऊचुः

धन्याऽसि त्वम्विशालाक्षि ! पापेभ्यो नाऽस्ति से भयम् ।
कृता प्रदक्षिणा काश्या वैराग्यञ्च समागतम् ॥ १२९ ॥
दत्तन्त्वया धनं सर्वं निंवृत्ता पापधीस्तथा ।
कृतार्थाऽसि महाभागे ! कुरु क्षेत्रप्रदक्षिणाम् ॥ १३० ॥
अस्माभिरेव सहिता ततः शुद्धिमवाप्स्यसि ।
पुनः पापपरा माभूरित्यूचुस्ते तपोधनाः ॥ १३१ ॥
साऽपि श्रुत्वा वचस्तेषा भक्त्या नत्वा ततो द्विजान् ।
चक्रे रात्रौ प्रणयिनी विष्णोर्नर्तनमद्भुतम् ॥ १३२ ॥
पञ्चमे दिवसे सर्वे यात्रिणो वृषभध्वजे ।
स्थिता साऽपि महाभागा निवृत्ता सर्वपापतः ॥ १३३ ॥
ततः प्राप्ताः क्षणेनैव वरणासङ्गमञ्जनाः ।
तत्रस्नात्वा विधानेन नत्वा केशवमादरात् ॥ १३४ ॥
मुक्तिमण्डपिकाम्प्राप्ताः साऽपि तैः सममेव हि ।
तत्र पूजां सुमहतीं कृत्वा विश्वेश्वरस्य सा ॥ १३५ ॥
श्रूत्वा यथाविधानेन आजगाम निजालयम् ।
आदृता सा जनैः सर्वैः पित्रा साऽपि महात्मना ॥ १३६ ॥
तथाऽयमपि भो विप्राः ! विशुद्धो मण्डपो द्विजः ।
इति श्रूत्वा वचस्तस्य भैरवस्य महात्मनः ॥ १३७ ॥

सर्वेविगतसन्देहा बभूवुर्ये सभासदः ॥ १३८ ॥

रविरुवाच

सत्सङ्गतःक्षेत्रप्रदक्षिणं कृतं काशोकथाश्र(ा?)वणकीर्तनादि यत् ।
शुभप्रदम्पापरं सुवासदं कृतञ्च शुद्धो मण्डपः सत्यमेव ॥ १३९ ॥

**काशीक्षेत्रप्रदक्षिणामहत्ववर्णनम्**

श्रीमहादेव उवाच

सभासदैर्देववरैरुक्तौ कुष्माण्डमण्डपौ ।
प्रदक्षिणीकृत्य तु तान् नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ १४० ॥
निष्पापौ हर्षसम्पन्नौ ययतुस्तौ स्वमालयम् ।
प्रदक्षिणाफलं ब्रह्मन् ! पञ्चक्रोशात्मकस्य च ॥ १४१ ॥
लिङ्गस्य दक्षिणा कार्या त्वया शिष्येण चाघहृत् ।
इति श्रुत्वा प्रसन्नात्मा जैगीषव्यो महामुनिः ॥ १४२ ॥
देवम्प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
जगाम पञ्चक्रोशस्य यात्रार्थं शिष्यसंयुतः ॥ १४३ ॥
पञ्चभिर्दिवसैः कृत्वा यात्रामत्राऽऽगतो मुनिः ।
उपदिष्टो विधिः सम्यक् यात्रायाः पापनाशनः ॥ १४४ ॥
महापुण्यकृदेवाऽपि निर्विघ्नम्फलदायकः ।
मुनिरागत्य विश्वेशं भवान्या सहितन्तदा ॥ १४५ ॥
पूजयामास विधिवदुपचारैः सुविस्तरैः ।
शिष्यो गुरुप्रसादेन निष्पापो (:?)पुण्यवान्सुधीः ॥ १४६ ॥
जातः स्कन्दप्रसादेन श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् ॥ १४७ ॥

श्रीमहादेवउवाच

एतत्तेऽभिहितन्देवि ! काश्यां यत्पातकंकृतम् ।
तस्य प्रणाशनं शुद्धं प्रायश्चित्तं सुदुर्लभम् ॥ १४८ ॥
श्रुत्वाऽध्यायमिमंपुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
नरःशुद्धिमवाप्नोति काशीवासञ्च गर्भहम् ॥ १४९ ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्येपञ्चक्रोशयात्रामाहात्म्यवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## अथैकादशोऽध्याय

### पञ्चक्रोशीयात्रानियमवर्णनम्

देव्युवाच

क्षेत्रप्रदक्षिणे देव ! नियमाःके भवन्ति तान् ।
वदस्व तारिताशेष विश्वनाथ ! कृपालय ! ॥१॥

महादेव उवाच

प्रतिग्रहं पराञ्च परदाराभिभाषणम् ।
परस्वग्रहणं स्नेहादसद्वार्ताञ्च वर्जयेत् ॥२॥
असताम्पापिनां सङ्गं न कुर्यात्प्रहितो नरः ।
असत्समागमात्सर्वं निष्फलञ्जायते नृणाम् ॥३॥
मम द्रोहपरैस्साकं न व्रजेद्विष्णुनिन्दकैः ।
परापवादन्नो कुर्यात्परद्रोहम्विवर्जयेत् ॥४॥
गुरुनिन्दां शास्त्रनिन्दां शिवधर्ममहात्मनाम् ।
तीर्थलिङ्गतपोनिन्दां न कुर्यात्तु प्रदक्षिणे ॥५॥
अन्यदा तु कृतम्पापं नश्येत् क्षेत्रप्रदक्षिणात् ।
क्षेत्र प्रदक्षिणामध्ये कृतं केन प्रणाश्यते ॥६॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैवाऽन्त्यजातिभिः ।
काङ्क्षिभिः परमन्तत्त्वं कर्त्तव्या क्षेत्रदक्षिणा ॥७॥
किञ्चिद्दानद्दानंप्रत्यहं ब्राह्मणेभ्यो देयं दीनानाथम्पङ्ग्वन्धकेषु ।
भूमौ शय्यातैलमासादिदुष्टं सर्वम्वर्ज्यं क्षेत्रयात्रादिनेषु ॥८॥
मुक्तिमण्डपिकायाञ्च सम्विश्यवरवर्णिनि ! ।
प्रतिज्ञाम्महती कृत्वा पूजनन्तत्र तत्रह ॥ ९ ॥
काश्याम्प्रजातबाक्कायमनोजनितमुक्तये ।
ज्ञाताज्ञातविमुक्त्यर्थम्पातकेभ्यो हिताय च ॥ १० ॥
पञ्चक्रोशात्मकं लिङ्ग ज्योतो रूपं सनातनम् ।
भवानीशङ्कराभ्याञ्च लक्ष्मीश्रीशीवराजितम् ॥ ११ ॥

ढुण्ढिराजादिगणपैः षट्पञ्चाशद्भिरावृम् ।
द्वादशादित्यसहितं नृसिंहैः केशवैर्युतम् ॥ १२ ॥
रामकृष्णत्रययुतङ्कूर्ममत्स्यादिभिस्तथा ।
अवतारैरनेकैश्च युतम्विष्णोः शिवस्य च ॥ १३ ॥
गौर्यादिशक्तिभिर्युक्तं क्षेत्रङ्कुर्याम्प्रदक्षिणम् ।
बद्धाञ्जलिः प्रार्थयित्वा महादेवम्महेश्वरीम् ॥ १४ ॥

**पंचक्रोशीक्षेत्रप्रदक्षिणाक्रमवर्णनम्**

पञ्चक्रोशस्य यात्राम्वै करिष्ये विधिपूर्वकम् ।
प्रीत्यर्थन्तव देवेश ! सर्वाघौघप्रशान्तये ॥ १५ ॥
इति सङ्कल्प्य मौनेन प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
ढुण्ढिराज ! गणेशान ! महाविघ्नौघनाशन ! ॥ १६ ॥
पञ्चक्रोशस्य यात्रार्थन्देह्याज्ञाङ्कृपया विभो ! ।
विश्वंशन्त्रिःपरिक्रम्य दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ १७ ॥
मोदम्प्रमोदंसुमुखन्दुर्मुखङ्गणनायकम् ।
प्रणम्य पूजयित्वाऽऽदौदण्डपाणिन्ततोऽर्चयेत् ॥ १८ ॥
कालराजञ्च पुरतो विश्वेशस्यजगद्गुरोः ।
पूजयित्वाततोगच्छेन्मणिकर्णीम्विधानतः ॥ १९ ॥
तत्र स्नात्वा महादेवम्मणिकर्णीशयर्चयेत् ।
विनायकं सिद्धदञ्च पुनरागत्य पूजयेत् ॥ २० ॥
मणिकर्णीतटच्छन्नं गङ्गाकेशवमच्युत ।
ललिताञ्च ततः पूज्य जरासन्धेश्वरम्विभुम् ॥ २१ ॥
सोमनाथं ततः पूज्य दालभेश्वरमेव च ।
शूलटङ्केश्वरन्देवमादिआदिवाराहमेवच ॥ २२ ॥
दशाश्वमेधलिङ्गं बन्दन्तत्रैव पूजयेत् ।
सर्वेश्वरञ्च केदारन्ततो हनुमदीश्वरम् ॥ २३ ॥
सङ्गमेशन्तत पूज्य लोलार्कम्पूजयेत्ततः ।
अर्कसंज्ञङ्गणाध्यक्षमसेस्तीरम्पुनर्व्रजेत् ॥ २४ ॥
क्षेत्रम्प्रदक्षिणीकुर्वंस्तिलमात्रन्न सन्त्यजेत् ।
दुर्गाकुण्डे ततः स्नात्वा यजेद्दुर्गविनायकम् ॥ २५ ॥
दुर्गासम्पूज्य विधिवद्वसेत्तत्र सुखाप्तये ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र मधुपायसलड्डुकैः ॥ २६ ॥

रात्रौ जागरणन्तत्र पुराणश्रवणादिभिः ।
कुर्याच्च कीर्तनम्भक्त्या परोपकरणानि च ॥ २७ ॥
जय दुर्गे महादेवि ! जय काशिनिवासिनि ! ।
क्षेत्रविघ्नहरे ! देवि ! पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥ २८ ॥
इति दुर्गाम्प्रार्थयित्वा विष्वक्सेनेश्वरन्ततः ।
पूजयित्वा कर्द्दमेशम्पञ्चव्रीहितिलैर्नमेत् ॥ २९ ॥
आदौ कर्दमतीर्थेतु स्नानङ्कूपावलोकनम् ।
सोभनाथम्विरूपाक्षं नीलकण्ठन्ततोऽर्चयेत् ॥ ३० ॥
तत्रवासम्विधायाग्नाऽग्नौ किञ्चिद्धोमं द्विजार्चनम् ।
श्राद्धादिकर्मकार्याणि कृत्वा मुच्येदृणत्रयात् ॥ ३१ ॥

### काशीक्षेत्रेपंचक्रोशस्यदेवानाम्वर्णनम्

कर्द्दमेश ! महादेव ! काशिवासिजनप्रिय ! ।
त्वत्पूजनान्महादेव ! पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥ ३२ ॥
प्रातः स्नात्वा कर्दमेशम्पूजयित्वा च स(द्)द्विजान् ।
नागनाथञ्च चामुण्डाम्मोक्षेशङ्करुणेश्वरम् ॥ ३३ ॥
वीरभद्रन्ततो दुर्गां विकटाख्याम्प्रपूजयेत् ।
उन्मत्तभैरवन्नीलं कालकूटन्ततोऽर्चयेत् ॥ ३४ ॥
दुर्गाञ्च विमलान्नत्वा महादेवन्ततो व्रजेत् ।
नन्दिकेशम्भृङ्गिरिटिं तत्रैव च गणप्रियम् ॥ ३५ ॥
विरूपाक्षञ्च यज्ञेशम्विमलेश्वरमेव च ।
मोक्षदं ज्ञानदञ्चैवामृतेशन्तत्र पूजयेत् ॥ ३६ ॥
गन्धर्वसागरंतीर्त्वा भीमचण्डीन्ततो व्रजेत् ।
तत्र स्नात्वा भीमचण्डीम्पयसा स्नापयेत्सुधीः ॥ ३७ ॥
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य ब्राह्मणान्परितोषयेत् ।
तत्र वासम्प्रयत्नेन कुर्याच्चण्डविनायकम् ॥ ३८ ॥
रविरक्ताक्षगन्धर्वन्नरकार्णवतारकम् ।
शिवं सम्पूज्य यत्नेन रात्रौ पूर्ववदाचरेत् ॥ ३९ ॥
प्रातरुत्थाय सुस्नातः प्रार्थयेद्भीमचण्डिकाम् ।
भीमचण्डि ! प्रचण्डानि मम विघ्नानि नाशय ॥ ४० ॥

नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि पुनर्दर्शनमस्तु ते ।
ततो गच्छेदेकपादं गणङ्गत्वा सतण्डुलान् ॥ ४१ ॥
तिलांश्च विकिरेत्तत्र धनधान्यादिसम्पदे ।
ततो गच्छेन्महाभीमं भैरवम्भैरवीं शुभाम् ॥ ४२ ॥
भूतनाथञ्च सोमेशं पूजयेत्सिन्धुरोधसि ।
कालनाथङ्कपर्दीशम् कामेशञ्च गणेश्वरम् ॥ ४३ ॥
बीरभद्रञ्चारुमुखं गणनाथञ्च पूजयेत् ।
ततो गच्छेद्देहलीशम्विघ्नपूगनिबारणम् ॥ ४४ ॥
मोदकैः पृथुकैर्लाजैस्सक्तुभिश्चेक्षुपर्वभिः ।
पूजयेच्छ्रद्धयादेवन्तन्देहलीविनायकम् ॥ ४५ ॥
तत्पार्श्वे षोडशपुनर्विघ्ननाथान् समर्चयेत् ।
उद्दण्डगणपम्पूज्य उत्कलेश्वरमेव च ॥ ४६ ॥
रुद्राण्यास्तुतपो भूमिं दृष्ट्वा रामेश्वरम्व्रजेत् ।
वरणायान्ततः स्नात्वा तर्पणादि विधाय च ॥ ४७ ॥
रामेश्वरं श्वेततिलैर्बिल्वपत्रादिभिर्यजेत् ।
सोमनाथञ्च तत्रैव पूजयेदिन्द्रदिग्गतम् ॥ ४८ ॥
भरतेशं लक्ष्मणेशं शत्रुघ्नेश्वरमेव च ।
द्यावा भूमीश्वरं तत्र पूजयेन्नहुषेश्वरम् ॥ ४९ ॥
तत्र बासम्प्रकल्प्याऽथ पूर्ववज्जागरादिकम् ।
कृत्वा स्नात्वाऽपि रामेशम्प्रार्थयेत्काशिवासदम् ॥ ५० ॥
श्रीरामेश्वर ! रामेण पूजितस्त्वं सनातन ! ।
आज्ञान्देहि महादेव ! पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥ ५१ ॥
लिङ्गानि सुबहून्यादौ वरणा पारगान्यथ ।
पूजयित्वा ततो गच्छेद्देवसङ्गनिषेवितम् ॥ ५२ ॥
देवसङ्गेश्वरे किञ्चिद्दत्त्वा स्थित्वा ततो व्रजेत् ।
पाशपाणिं गणेशञ्च क्षेत्रमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ५३ ॥
पूजयित्वा वहिश्चैव पृथ्वीश्वरमथो यजेत् ।
एकोऽश्वमेधः पृथुना कृतः क्षेत्राद्वहिःपुरा ॥ ५४ ॥

### पंचक्रोश्यांदेवयात्रावर्णनम्

स्वर्गभूमिस्तु सा ज्ञेया मोक्षभूमिस्तु मध्यतः ।
काश्याश्चतुर्द्दिशं देवि ! योजनं स्वर्गभूमिका ॥ ५५ ॥

मृतास्तत्र तु गच्छिन्ति स्वर्गं सुकृतिनाम्पदम् ।
ततः सुयूपं हि सरः स्पृष्ट्वा गच्छेच्छनैः शनैः ॥ ५६ ॥
महत्क्षेत्रङ्कापिलन्तु यत्र श्रीवृषभध्वजः ।
तत्र स्नात्वा विधानेन तर्प्पयित्वा पितॄनथ ॥ ५७ ॥
श्राद्धम्विधाय सुश्रद्धः पूजयेद् वृषभध्वजम् ।
निवसेत्तन्तु दिवसं श्रवणादि प्रकल्पयेत् ॥ ५८ ॥
वृषभध्वज ! देवेश । पितॄणाम्मुक्तिदायक ! ।
आज्ञान्देहि महादेव ! पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥ ५९ ॥
प्रदक्षिणीकृत्य ततो गच्छेज्ज्वालानृसिंहकम् ।
एवम्प्रदक्षिणीकृत्य सरः कापिलमुत्तमम् ॥ ६० ॥
चरणाञ्च ततस्तीर्त्वा स्नात्वा वै सङ्गमे शुभे ।
आदिकेशवमभ्यर्च्यं सङ्गमेश्वरमेव च ॥ ६१ ॥
बिनायकङ्खर्वसव्ज्ञम्पूजयित्वा ततो व्रजेत् ।
क्रोडीकृत्यवानशुद्धान्विकिरन्विष्णुमुच्चरन् ॥ ६२ ॥
प्रह्लादेश्वरसभ्यर्च्यं त्रिलोचनमतः परम् ।
विन्दुमाधवमध्यर्च्यं हृदे पञ्चनदे शुभे ॥ ६३ ॥
गभस्तीशं मङ्गलाञ्च गौरी दृष्ट्वा ततो व्रजेत् ।
वशिष्ठवामदेवौ च पर्वतेश्वरमेव च ॥ ६४ ॥
महेश्वरं समभ्यर्च्यं ततः सिद्धि विनायकम् ।
सप्तावरणगान्दिव्यान्पूजयेत् गणनायकान् ॥ ६५ ॥
मणिकर्ण्यान्ततः स्नात्वा गच्छेद्विश्वेश्वरं यती ।
नमस्कृत्य महेशानम्प्रविशेद्देवसन्निधौ ॥ ६६ ॥
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः ।
मुक्तिमण्डपभागत्य कृतार्थस्तत्र सम्विशेत् ॥ ६७ ॥
विष्णुञ्च दण्डपाणि च ढुण्ढिम्भैरवमेव च ।
आदित्यम्पञ्चगणपान्पूजयेत्पुनरेव च ॥ ६८ ॥
प्रदक्षिणीकृतान्देवान्स्मरेत्तत्र क्रमात्सुधीः ।
जय विश्वेश ! विश्वात्मन्काशीनाथ ! जगद्गुरो ! ॥६९॥
त्वत्प्रसादान्महादेव ! कृता क्षेत्रप्रदक्षिणा ।
अनेकजन्मपापानि कृतानि मम शङ्कर ! ॥ ७० ॥

गतानि पञ्चक्रोशात्मलिङ्गस्याऽस्यप्रदक्षिणात् ।
त्वद्भक्तिकाशीवासाभ्यां रहितः पापकर्मणा ॥७१॥
सत्सङ्गश्रवणाद्यैश्च कालो गच्छतु नः सदा ।
हर ! शंभो महादेव ! सर्वज्ञ ! सुखदायक ! ॥७२॥
प्रायश्चित्तं सुनिर्वृत्तं पापानान्त्वत्प्रसादतः ।
पुनः पापमतिर्मास्तु धर्मबुद्धिः सदाऽस्तु मे ॥७३॥

## पञ्चक्रोशीस्थितदेवानां वर्णनम्

इति जप्त्वा यथा शक्त्या दत्त्वा दानं द्विजन्मनाम् ।
बद्ध्वा करयुगम्मन्त्री मन्त्रमेतदुदीरयेत् ॥७४॥
पञ्चक्रोशस्य यात्रेयं यथा शक्त्या मया कृता ।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादादुमापते ! ॥७५॥
इति प्रार्थ्यं महादेवं गच्छेद्गेहं स्वकं स्वकम् ।
न्यूनातिरिक्तदोषाणाम्परिहाराय दक्षिणाम् ॥७६॥
सङ्कल्प्य गत्वा च गृहं ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।
तत आगत्य च गृहं कुटुम्बैः सह भोजनम् ॥७७॥
कृतात्मानन्ततो ध्यायेत् कृतकृत्यो भवेत्ततः ।
एक रात्रन्तु मध्येयः प्रवसेच्छुचिमानसः ॥७८॥
वरणायास्तटे रम्ये स याति परमाङ्गतिम् ।
द्विरात्रमध्येवसति यः कुर्याद्धर्मतत्परः ॥७९॥
प्रथमं चण्डिकाक्षेत्रे द्वितीयम्वरणातटे ।
दिवसन्तु वसेद्धीमांस्ततो विश्वेश्वरम्व्रजेत् ॥८०॥
यस्तुत्रिरात्रमुषितो मध्ये भवति पार्वति ! ।
दुर्गालये भीमचण्ड्यां रामेशे वासमृच्छति ॥८१॥
वसति यस्तु कुरुते मध्ये दिनचतुष्टयम् ।
प्रथमाम्वसतिङ्कुर्यात्कर्दमेश्वरेसन्निधौ ॥८२॥
द्वितीयाम्भीमचण्ड्यान्तु रामेशे तु तृतीयकाम् ।
चतुर्थीङ्कापिले तीर्थे वसती(ति)म्परिकल्पयेत् ॥८३॥
राजवृद्धकुमाराणां यथेष्टम्वासइष्यते ।
यथाकथञ्चिद्देवेशि पञ्चकोशप्रदक्षिणाम् ॥८४॥

कुर्वदिव न मासादि चिन्तयेद्धर्मकोविदः ।
स एव शुभदःकालो यस्मिञ्छ्रद्धोदयो भवेत् ॥८५॥
श्रद्धा हि दुर्लभा लोके कलौ खलु विशेषतः ।
श्रद्धैव तीर्थन्देवश्च श्रद्धा स्वर्गापवर्गकौ ॥८६॥
श्रद्धया यत्कृतंसर्वमनन्तफलदम्भवेत् ।
सत्ये श्रद्धा गुणवती नासत्ये सा फलप्रदा ॥८७॥
काश्यां तिष्ठति यो नित्यं स्नाति भागीरथीजले ।
कुर्यात्साम्वसरीं यात्रां पञ्चक्रोशस्यसुन्दरि ! ॥८८॥
स ब्रह्मभूतो निवसेन्ममाऽनुग्रहतः सुखी ॥८९॥

इकि श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये पञ्चक्रोशयात्रावर्णने दशमोऽध्यायः ।९।

# अथ दशमोऽध्यायः

## पञ्चक्रोशीमुद्दिश्य श्रीदेवीप्रश्नम्प्रति शिवोत्तरवर्णनम्

श्रीदेव्युवाच

देव ! देव महादेव ! वेदविद्याविशारद ! ।
यथा प्रदक्षिणाकार्या मनुजैर्विधिपूर्वकम् ॥ १ ॥
स्थानम्वासस्य वद नो भक्ष्यं चाऽभक्ष्यमेव च ।
पूजां सीम्निस्थितानाञ्च देवानां दानमेव च ॥ २ ॥
यथा सम्पूर्णतामेति यात्राक्षेत्रस्य सत्तम ! ॥ ३ ॥

शिवउवाच

शृणुदेवि ! महाभागे ! सबलोकोपकारकम् ।
तद्ब्रवीमि महेशानि ! यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ ४ ॥
पञ्चक्रोशस्य यात्राया विधिः सम्यगुदीर्यते ।
श्रुत्वा मनुष्यो येनाऽऽशु निष्पापः पुण्यवान् भवेत् ॥ ५ ॥
आश्विनादिषु मासेषु त्रिषु पार्वति ! सर्वदा ।
प्रदक्षिणा प्रकर्तव्या क्षेत्रस्याऽपापकाङ्क्षिभिः ॥ ६ ॥
माघादिचतुरो मासाः प्रोक्ता यात्राविधौ नृणाम् ।
पूर्वस्मिन्दिवसे ढुण्ढिम्पूजयित्वा हविष्यभुक् ॥ ७ ॥
प्रातरुत्तरवाहिन्यां स्नात्वा विश्वेशमर्चयेत् ।
पुनर्यात्रार्थमपि च शिवयोः पूजनम्भवेत् ॥ ८ ॥
माषान्नञ्च मसूराश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा ।
ताम्बूलम्मैथुनञ्चैव भोगानन्याञ्च वर्जयेत् ॥९॥
स्नानद्वयम्प्रकुर्वीत नित्यश्राद्धञ्च सुन्दरि ! ।
यदत्र किञ्चित्क्रियते कोटिकोटिगुणम्भवेत् ॥१०॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ मस्करी ।
क्षेत्रे वसन्बहिर्वाऽपि कुर्यादेव प्रदक्षिणाम् ॥११॥

ब्रह्महत्यादिपापानां प्रायश्चित्तन्नचाऽपरम् ।
बहिष्कृतानाम्पापानां मध्ये वाऽपि सुरेश्वरि ॥१२॥
प्रायश्चित्तान्तरम्पुंसो न दृष्टं न मया श्रुतम् ।
सन्ति देवाश्च बहवः स्वर्गभूमौ बहिः सदा ॥१३॥
मदाज्ञान्नलभन्त्येव वासार्थं दैन्यमागताः ।
बहिः स्थिताः प्रकुर्वन्ति दक्षिणं क्षेत्रलब्धये ॥१४॥
ममानुग्रहकामैश्च पञ्चक्रोशात्मकम्प्रिये ! ।
लिङ्गम्प्रदक्षिणीकृत्य द्रष्टव्योऽहं कृपानिधिः ॥१५॥
यस्मिन्क्षेत्रे महादेवि ! पुण्यम्पुण्यतरन्तु वा ।
अनन्तकोटिगुणितं भवेत्सर्वं न संशयः ॥१६॥
अन्तर्गेहे कृतम्पापं केवलं यातनागृहम् ।
अन्यक्षेत्रे कृतम्पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति ॥१७॥
पुण्यक्षेत्रे कृतम्पापं वाराणस्यां विनश्यति ।
वाराणास्यां कृतम्पापमन्तर्गेहे विनश्यति ॥१८॥
अन्तर्गेहे कृतम्पापं वज्रलेपो भविष्यति ।
वज्रलेपच्छिदे ह्येतत्पञ्चकोशप्रदक्षिणम् ॥१९॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्यात्क्षेत्रप्रदक्षिणाम् ।
वाराणसीन्तु सम्प्राप्य प्रमादाद्यो बहिर्गतः ॥२०॥
दैवात्स पुनरागत्य दक्षिणेन प्रशुध्यति ।
अविमुक्तं महाक्षेत्रं सर्वदा जननी यथा ॥२१॥
पुत्रस्य जननी लोके सर्वदा हितकारिणी ।
हितकृत्सर्वजन्तूनां काशीहाऽमुत्र सिद्धिदा ॥२२॥

श्रीदेव्युवाच

भगवन्सर्वभूतेषु कृपापूरितविग्रह ! ।
कृताच्र्यानाम्वद विभो ! क्षेत्रसंन्यासिनामपि ॥ २३ ॥
प्रदक्षिणक्रमं क्षेत्राद्बहिर्वा मध्यतोऽपिवा ।
नियमस्य न भङ्गः स्याद्यथा पापञ्च नश्यति ॥ २४ ॥
देहिनाम्पापसम्बन्धः सर्वदा जायते क्रमात् ।
तत्काशिवासिनां नश्येत् क्षेत्रसंन्यासिनान्तथा ॥ २५ ॥

पञ्चक्रोशस्य यात्रायां शक्तिर्येषां न विद्यते ।
तेषाम्पापं कथं नश्येत् क्षेत्रपापकृतां सताम् ॥ २६ ॥

श्रीभगवानुवाच

सम्यक् पृष्टन्त्वया देवि ! महाहङ्कारनाशनम् ।
प्रायश्चित्तं न्यासिनां हि क्षेत्राघौघविनाशनम् ॥ २७ ॥
विधिस्तु पूर्वमेवोक्तो नियमादियुतस्तव ।
प्रदक्षिणक्रमस्तेषामवधारय सुव्रते ॥ २८ ॥

**क्षेत्रसन्यासिनाकृतेप्रदक्षिणाक्रमवर्णनम्**

स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य विश्वेशम्बिम्बया सह ।
मोदादिपञ्चकण्ढुण्ढि दण्डपाणिञ्च भैरवम् ॥ २९ ॥
पूर्ववत्तीरगान्पूज्य दुर्गां सम्पूज्य यत्नतः ।
बहिरावरणन्त्यक्त्वा गणेशानान्तु सप्तकम् ॥ ३० ॥
मध्ये प्रदक्षिणङ्कुर्यादसिवरणयोः कृती ।
सम्मुखीभूय विधिवत्पूजयेच्चाऽग्रतःस्थितान् ॥ ३१ ॥
देवा देव्यश्च फलदाः क्षेत्रपालाः प्रयत्नतः ।
एकरात्रं द्विरात्रम्वा वसेन्मध्ये त्रिरात्रकम् ॥ ३२ ॥
यत्र श्रद्धा सुमहती वसेत्तत्र न संशयः ।
प्रत्यहं दण्डपाणेस्तु पूजा कार्या प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥
दण्डपाणेः पूजनेन सिद्धा भवति नान्यथा ।
दण्डपाणे ! यक्षपते ! क्षेत्रसंन्यासिवल्लभः ! ॥ ३४ ॥
पञ्चक्रोशस्य यात्रेयं सिद्धा मे त्वत्प्रसादतः ।
आगत्य विश्वनाथस्य पूजा कार्या च पूर्ववत् ॥ ३५ ॥

देव्युवाच

प्रत्यहं दण्डपाणेस्तु पूजा प्रोक्ता विशेषतः ।
किमेतद्वद देवेश ! यात्रामुद्दिश्य शङ्कर ! ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच

काशीम्प्राप्य बहिर्नैव गच्छेत्सर्वात्मना क्वचित् ।
मन्मुखात्सम्यगाश्रुत्य क्षेत्रसन्न्यासकृत्तमः ॥ ३७ ॥
दण्डपाणिः समभवत्तदारभ्य वरानने ! ।
कालान्तरे तदा देवि ! ऋषिभिर्नारदादिभिः ॥ ३८ ॥

## क्षेत्रप्रदक्षिणाक्रमवर्णनम्

पृष्टोऽहं क्षेत्रजनितपापनाशनमद्भुतम् ।
तदा सुदुर्लभन्देवि ! प्रायश्चित्तम्मया महत् ॥ ३९ ॥
उपदिष्टम्मल्लिङ्गं प्रदक्षिणमशेषतः ।
तच्छ्रुत्वा पृष्टवान् दण्डपाणिः क्षेत्रपरायणः ॥ ४० ॥
तदामयोपदिष्टोऽसौ महापाशुपतः कृती ।
क्षेत्रयात्रा द्वितीया मे मयोक्ता दण्डपाणये ॥ ४१ ॥
ततो दण्डपतेःपूजा कर्तव्या पूर्तिकारिणी ।
पञ्चक्रोशात्मकस्यैव लिङ्गस्य परमात्मनः ॥ ४२ ॥
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥

देव्युवाच

ज्ञात्वाऽपि श्रद्धया देव ! न कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ॥ ४३ ॥
तत्केन हेतुना मर्त्या उपक्षन्ते महाफलम् ॥

श्रीभगवानुवाच

श्रद्धापुण्यवतां देवि ! न पाण्डित्यादिभिस्सदा ॥ ४४ ॥
यस्माद्धर्मे प्रयततां सिध्येत्सर्वन्न चाऽन्यतः ॥ ४५ ॥
यत्र यत्र परिरज्यते जनस्तत्र तत्र सुखमेधते पुनः ।
साधनानि विदधाति'तत्परो येन तत्फलमवाप्नुयान्नरः ॥ ४६ ॥
लौकिके परमवैदिकेऽथ वा पामरः परमतत्त्ववित्तथा ।
मोदकः परममोदको यथा दीयते कपटभार्यया यथा ॥ ४७ ॥
मोहितो नहि विचारयत्ययं जीवनम्मरणमप्यहोऽवशी ।
एकमेकं कालकूटमिन्द्रियन्नाशकृत्पुनः ॥ ४८ ॥
तदेवशोधितं यद्वद्विपमप्यंमृतम्भवेत् ॥ ४९ ॥
जगत्तृणीकृत्य स कालमृत्युं स्वात्मानमामोज्य शिवेन योगैः ।
अविघ्नमेवं समलम्विसृज्य शरीरसंज्ञम्मलखण्डभाण्डम् ॥ ५० ॥
मुक्तो भवेदेष नचाऽन्यथैव मर्त्यः प्रसादादपि ते विरक्तः ।
कः कर्तुमेवम्प्रभवत्यविघ्नं कलौ मनुष्यो बहुदोषयुक्तः ॥ ५१ ॥
तथापि मुक्तो भविता यदि त्वां भजत्यभीक्ष्णं सकलैश्चभावैः ।
पूर्वोदितो दुर्मतिदर्शकोऽयं विमोहनार्थैरखिलैश्च शास्त्रैः ॥ ५२ ॥

वीभत्सिते दुर्विपहे कदाचिद्यो वाऽनुरागो भविता नरस्य ।
स चेद्भविष्यत्परमात्मनीशे को नाममुक्तो न भवेद्भवाब्धेः ॥ ५३ ॥
अविमुक्तम्ममक्षेत्रमविमुक्तं । सदा शिवम् ।
अविमुक्तजनं शान्तं सेवन्ते ये धृतव्रताः ॥ ५४ ॥
विमुक्ताः परमानन्दे पदे स्थितिमुपागताः ।
अनेकजन्मसुमहत्साधनैर्ज्ञानमुत्तमम् ॥ ५५ ॥
प्राप्नुवन्ति तदैकेन जन्मना साधुवासिनः ।
अष्टाङ्गादिभिरन्यैश्च तपोमोक्षादिभिः सदा ॥ ५६ ॥
सावितैः पाक्षिकीसिद्धिरविमुक्ते निरर्गला ।
अविमुक्तात्परो योगो ज्ञानन्दानं जपस्तपः ॥ ५७ ॥

**क्षेत्रसन्यासकृतां प्रदक्षिणाक्रमवर्णनम्**

क्षेत्रन्यासं दृढङ्कृत्वा वसेद्धर्मपरः सदा ।
क्षेत्रन्यासपराणान्त्वमहमप्यनुकामजैः ॥ ५८ ॥
भोगैः सहायतां यातो दिशावः परमाङ्गतिम् ।
यथा पतिव्रता भार्या भर्तारमनुगच्छति ॥ ५९ ॥
तथा साहसमालम्ब्य काशीमनुगतो भवेत् ।
गुरुद्रोहरतो यस्तु विप्रद्रोहपरस्तथा ॥ ६० ॥
न तस्य काशी सिध्येत बहुभिः साधनैर्युतः ।
क्षेत्रसन्न्यासिनामेवं क्रमः प्रोक्तो मयानघे ॥ ६१ ॥
प्रदक्षिणाया माहात्म्यं महापापहरं शुभम् ॥ ६२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये क्षेत्रसंन्यासिनाम्प्रदक्षिणामाहात्म्यवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

●

# अथ द्वादशोऽध्यायः

## अशक्तानांकृते स्वल्पायाससाध्यप्रायश्चित्तवर्णनम्

देव्युवाच

देव! देव! महादेव! सन्देहो नाशितस्त्वया।
किञ्चित्प्रष्टव्यमस्तीह प्रायश्चित्तविनिर्णये॥ १॥
पङ्गवः शक्तिरहिता रोगग्रस्ता धनैर्युताः।
काश्याम्पापकृतः पश्चात् प्रायश्चित्ताद्यभीप्सवः॥ २॥
कथन्तेषामथो शुद्धिर्धनिनां काशिवासिनाम्।
सुकुमारशरीराणां राज्ञा स्त्रीसमवायिनाम्॥ ३॥
वद तेषां यथा शुद्धि यातनाविनिकृन्तनीम्॥ ४॥

महादेवउवाच

श्रुणु देवि! रहस्यम्मे धर्मः सूक्ष्मो भवेत्सदा।
न जानन्ति स्थूलधियो विषयाशक्तमानसाः॥ ५॥
स्वल्पद्रव्येण च महान्महताऽप्यणुमात्रकः।
देशङ्कालं तथा पात्रं वित्तं श्रद्धादिकम्महत्॥ ६॥
करोति सुविचार्याऽऽशु येन काशी प्रसीदति।
मम क्षेत्रे तु धनिनः पापिष्ठाः शुद्धिकाङ्क्षिणः॥ ७॥
देवालयस्तैः कर्त्तव्यो महापातकनाशनः।
महापुण्यप्रदश्चैव महासुखकरस्तथा॥ ८॥
यत्र तिष्ठति निर्विघ्नं शिवलिङ्गम्वरानने!।
तत्र देवालयः कार्यः पूजा भवति यत्र च॥ ९॥

## सप्रासादशिवलिङ्गस्थापनमहत्ववर्णनम्

शिवलिङ्गस्थापकानां शिवप्रासादकारिणाम्।
यान्ति नाशम्विना क्लेशैः पातकानि महान्त्यपि॥ १०॥
शिवलिङ्गप्रतिष्ठां यः कुर्यात्पापशतान्वितः।
पातकानि विनश्यन्ति तस्य सोऽश्रोऽप्यदूरतः॥ ११॥

काश्याङ्कृतानां पापानामेकम्पापप्रमोचनम् ।
विष्णुर्मूर्त्तिप्रतिष्ठा च कार्या मोक्षप्रदायिनी ॥ १२ ॥
ब्राह्मणश्च तथा स्थाप्यो गृहोपस्करदानतः ।
कुटुम्बी विष्णुभक्तश्चाऽप्यग्निसेवापरायणः ॥ १३ ॥
कलौ देवालयस्याऽपि रक्षा देवि ! सुदुर्लभा ।
लिङ्गरक्षा तथा शम्भोर्नित्यपूजाऽपि नो भवेत् ॥ १४ ॥

देव्युवाच

क्षेत्रपापकृताम्पापं नश्यत्येव न संशयः ।
अन्यत्राऽपि कृतम्पापं नश्यत्येव न संशयः ॥ १५ ॥
अन्यान्यपि च पापानि नश्यन्ति नहि संशयः ।
प्रासादकरणाल्लिङ्गस्थापनात्पूजनात्प्रभोः ॥ १६ ॥
पापनाशः कियानर्थो निर्वाणमपि जायते ।
परं सविघ्नता तत्र त्वयोक्ता विघ्ननाशनः ॥ १७ ॥
ततोऽपि किञ्चित्सुमहदस्ति चेद्वद शङ्कर ! ॥ १८ ॥

महादेवउवाच

शृणु देवि ! रहस्यम्मे कृपणेषु न तद्वदेत् ।
अश्रद्धे दूषितमतौ पापाभीरौ न नास्तिके ॥ १९ ॥
श्रद्धालवे वदान्याय पापत्रस्ताय साधवे ।
ब्रूयाद्रहस्यम्परमं यथा धर्मः सुसिध्यति ॥ २० ॥
वाराणस्याङ्गृहं कृत्वा ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।
सिद्धाय वेदविदुषे शिवविष्णुप्रियाय च ॥ २१ ॥
विवेकिने महाविद्यायुक्ताय प्रियवादिने ।
दातव्यमेव सुगृहं कारयित्वा विशेषतः ॥ २२ ॥
काश्याङ्कृतानाम्पापानां कायवाङ्मनसांखलु ।
नाशः परोऽयं सन्दिष्टः शुभकृद्यदि लभ्यते ॥ २३ ॥
गृहदानाद्भवेन्मुक्तो वंशवृद्धिस्तथाऽक्षया ।
अर्थकामादिकं सर्वमाप्नोति गृहदानतः ॥ २४ ॥
व्ययीकृत्वा धनङ्किंचिदत्र कृत्वा भुवंशुभाम् ।
गृहमुत्थाप्य यो दद्यात्स याति परमम्पदम् ॥ २५ ॥

माम्विना कः प्रयच्छेत काश्याम्भूमिं द्विजाय हि ।
तस्मान्मदंशः स प्रोक्तो गृहदाता न संशयः ॥ २६ ॥
उपपातकलक्षाणि महापापशतानि च ।
विलयं यान्ति सर्वाणि क्षेत्रमध्यकृतान्यपि ॥ २७ ॥
दानन्तस्मादिदं श्रुत्वा मनसि ह्यवधार्य च ।
द्विजायाऽऽर्त्ताय सन्दद्याद्विक्रीयाऽऽत्मानमप्यहो ॥ २८ ॥
अत्र ते वर्णयिष्यामि कथाम्परमदुर्लभाम् ।
त्रिलोचनसमीपे तु क्षत्रियः सूर्यवंशजः ॥ २९ ॥
महातेजेतिविख्यातो व्यापारनिरतः सदा ।
हिरण्यम्बहुलन्तस्य जातङ्कार्पण्यनीरघेः ॥ ३० ॥
क्रयविक्रयदोषेण कार्पण्यम्वृद्धिमाययौ ।
यथाकथञ्चिद्दम्भेन पापेन धनतत्परः ॥ ३१ ॥
तस्य भार्या मृता दैवाद्गृहदासीरतोऽभवत् ।
स्वाधीनं साधनङ्कृत्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ॥ ३२ ॥
कुटुम्बेन परित्यक्तस्तथा सद्भिरपि प्रभुः ।
वणिग्वृत्त्युपजीवी स साध्वसाधुविगर्हितः ॥ ३३ ॥
अन्यान्यपि च पापानि मध्ये मध्ये करोति च ।
एकदा वल्लभा तस्य दासी धर्मकथापरा ॥ ३४ ॥
जाता धर्मव्यसनिनी पुत्रादिपरिवर्जिया ।
पतिम्विज्ञापयामास पुत्रार्थं यत्रवान्भव ॥ ३५ ॥
न शृणोति स पापात्मा धनव्ययभियाऽसकृत् ।
प्रार्थितोऽपि तथा दास्या सुधर्मयुतया तया ॥ ३६ ॥

**तत्रविषये महातेजाक्षत्रियोपाख्यानवर्णनम्**

एकादा मानिनी भूत्वा सुप्ता दुःखितमानसा ।
किमनेन वराकेण सदा धनरतेन च ॥ ३७ ॥
विश्वेशवासभूमौ हि सदा धनमनास्त्वयम् ।
न पुत्रो नच कन्याऽस्य पौत्रा दौहित्रकादयः ॥ ३८ ॥
कथम्भवन्ति वितता वंशवल्ल्यः फलान्विताः ।
एवं विचारयेद्यावत्सा दासी धर्मतत्परा ॥ ३९ ॥

कथं धर्मंपरोऽयंस्यात्तावल्लोका विचुक्रुशुः ।
अहो कदर्यः पापात्मा गच्छत्ययममर्षितः ॥ ४० ॥
इति लोकमुखाच्छ्रुत्वा सुप्ता सा तु ततः शुचा !
श्रुत्वा श्रुत्वा ब्राह्मणेभ्यो ज्ञातन्धर्मस्य कारणम् ॥ ४१ ॥
दानमेव परं श्रेयः काश्यान्तत्तु विशेषतः ।
इति भूमौ पतिम्वा सा चिन्तयन्ती सुदुःखिता ॥ ४२ ॥
आगतो धनदृक्स्वामी दृष्ट्वा गेहममार्जितम् ।
अलिप्तमग्निना शून्यं व्यवहारसुवर्जितम् ॥ ४३ ॥
व्यग्रोऽवदत्कथं सुप्ता न भोक्तव्यम्मयाऽधुना ।
त्वयाऽपि सुखदायिन्या भुज्यते सुप्यते सुखम् ॥ ४४ ॥

दास्युवाच

गृहकार्यङ्कारयतु नहि शक्ता रुजार्दिता ।
न भोक्तव्यम्मया किञ्चित् भोजने धनसङ्क्षयः ॥ ४५ ॥

महातेजाउवाच

भुज्यते प्रत्यहङ्किन्न कथमद्य धनक्षयः ।
भविष्यति वरारोहे ! धनक्षयकथां श्रृणु ॥ ४६ ॥
धृतं न भुज्यतेऽस्माभिर्नं मिष्ठान्नं न शर्करा ।
न पायसं न तैलादि पक्वं नश्यति किं धनम् ॥ ४७ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य दुःखिता घूर्णताङ्गता ।
उत्थाय चाऽऽह धिग्धिक् त्वां पापं सद्भिर्विगर्हितम् ॥ ४८ ॥
विषम्पीत्वा जलेवार्ऽपि त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः ।
असत्सङ्गसमुद्भूतं कथम्पापमहन्तरे ॥ ४९ ॥
अहन्दासी यथा वेश्या बहुभि' किं न मर्दिता ।
ज्ञात्वा माङ्गच्छसे पाप ! कथन्त्वत्तोऽधमःपरः ॥ ५० ॥
त्वं क्षत्रियः कुलीनश्च मत्सङ्गात्सद्भिर्गर्हितः ।
अतः परमहम्पाप ! त्वत्सङ्गान्नरके पतेः ॥ ५१ ॥
न स्वधर्मेषु निरतो न दानव्रततत्परः ।
क्षत्रियाणाम्परय गृहे ब्राह्मणा भुञ्जतेऽनिशम् ॥ ५२ ॥
न ते पुत्रा न ते पौत्रा दौहित्रा भ्रातरोऽथवा ।
धनङ्कस्योपकाराय सञ्चितं धर्मवर्जितम् ॥ ५३ ॥

महातेजाउवाच

त्वन्नजानासि धनजं सुखं सौ भाग्यगर्विता ।
मूषका अपि सञ्चित्वा भुञ्जते सुखमुत्तमम् ॥ ५४ ॥
धनव्ययकरा ये तु शत्रवस्ते मता मम ।
कैश्चित्सङ्गं न कुर्याद्धि तैर्जनैर्व्ययतत्परैः ॥ ५५ ॥
धनव्ययकृतो मूर्खाः सीदन्ति धनशापतः ।
अतो मया त्वं भार्यात्वें रक्षिता न कुलाङ्गना ॥ ५६ ॥
तस्याःपुत्रादयो द्रव्यं व्ययं नेष्यन्ति मामकम् ।
त्वं दासी मम वित्तस्य रक्षणं स्याद्यथा कुरु ॥ ५७ ॥
त्वत्प्रसादान्न बहुशः कुटुम्बम्परिपृच्छति ।
न पुत्रा व्ययकर्तारो न भार्या धननाशिनी ॥ ५८ ॥
निस्तीर्णोऽस्मि त्वया भद्रे धनरक्षाऽपि जायते ।
अतः परन्त्वमुत्तिष्ठ माषान्नम्परिभज्य च ॥ ५९ ॥
देहि मुष्टिद्वयन्तावद्यावदन्नं शनैर्भवेत् ।
इति श्रुत्वा तु सा दासी धर्मश्रवणतत्परा ॥ ६० ॥
तूष्णीमास सुदुःखार्ता न च किञ्चिदुवाच ह ॥ ६१ ॥

**महातेजसः दास्या सहसंवादवर्णनम्**

महातेजाउवाच

प्रिये ! कथम्मानवती जाताऽसि प्रियवादिनी ।
कथयिष्यसि यद्यत्त्वं तत्तकुर्याम् न संशयः ॥ ६२ ॥

दास्युवाच

मया चेत्तव कृत्य स्यान्कदुक्तङ्कुरु नायक !।
यत्र धर्मकथा विष्णोः शिवस्य च परा भवेत् ॥ ६३ ॥
तत्र तत्र त्वया भद्रा श्रोतव्या प्रत्यहं सदा ।
तदा त्वदुक्तं न मया लङ्घनीयङ्कदाचन ॥ ६४ ॥
श्रुत्वा कथां यतस्वाऽऽशु स्वव्यापारार्थमादरात् ॥ ६५ ॥

महातेजाउवाच

अवश्यमेव श्रोतव्या कथा धर्ममयी मया ।
विरुद्धमेकमेवाऽस्ति दातव्यं किञ्चिदेव हि ॥ ६६ ॥

तव भ्रान्तिः कुतो जाता श्रवणे धनहानिदे ।
गम्यते न मया क्वाऽपि धनव्ययभिया प्रिये ॥ ६७ ॥
तव स्नेहादगमिष्यामि सहसा सुखदायिनि ! ।
इति श्रुत्वा तया प्रोक्तो गच्छ धर्मकथां शृणु ॥ ६८ ॥
तावद्भोजनसामग्रीं करोमि मधुरान्तव ।
इत्यादिष्टस्तया दास्या गतः श्रोतुं कथां हरेः ॥ ६९ ॥
त्रिलोचनसमीपे तु यत्र सन्मडली शुभा ।
तत्र गत्वा महातेजा ह्यपविष्टः सुदूरतः ॥ ७० ॥
अद्य किं देवयात्रार्थं श्रवणार्थं समागतः ।
महातेजो महातेजो महातेजः समागतः ॥ ७१ ॥
इत्युच्चैर्व्याहृतं लोकैः सोपहासं महात्मभिः ।
ततो धर्मकथा स्पष्टा पुण्यदा पापनाशिनी ॥ ७२ ॥
प्रवृत्ता सर्वलोकानामानन्दरसगर्भिणी ।

काश्याम्वसेद्धर्मपरो महात्मा न वित्त कामादिपरः कदाचित् ।
वित्तं पुरादैवकृतन्तु यावत्तावद्भवत्येव न चाऽत्र वादः ॥ ७३ ॥
धर्मोहिमूलम्भवति प्रसिद्धं पुरातनोऽन्यो विभवो विनश्वरः ।
ये धर्मकामास्त इमे सौख्यपूर्णा ये चार्थकामास्त इमे दुःखपूर्णाः ॥ ७४ ॥
अर्थार्थिनः कामसुखेऽपि निस्पृहाः कुतः पुनर्द्धर्मसुखम्परञ्च ।
धनव्ययाद्बिभ्यति पापसञ्चका धनव्ययो धनिनाम्मृत्युहेतुः ॥ ७५ ॥
अहर्निशं धनतृष्णा विहाय योगक्षेमी यावता कल्पयेत ।
ततोऽधिकम्पापसमूहवृद्धये भवत्यजस्रं धनिनां तद्धनं हि ॥ ७६ ॥
अहर्निशं धर्मपरो लभेत सुखं स्वर्गमपवर्गम्विरागम् ।
स्तुतो महद्भिः कुरुते धर्मपुञ्जं मत्वा पुरः स्वात्महितं सदैवतम् ॥ ७७ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तेषाम्महताम्भावितात्मनां ।
कथान्ते च महातेजा गतः शून्यं निजालयम् ॥ ७८ ॥
तस्मिन्दिने तया दास्या न कृता पक्तिरन्नजा ।
तस्य सत्त्वपरीक्षार्थं श्रुत्वा धर्मकथा न वा ॥ ७९ ॥
तावत्स आगतो गेहं स्नानार्थं पृष्टवाञ्जलम् ।
उष्णोदकेन स स्वामी स्नापितः सतया पुनः ॥ ८० ॥

भुङ्क्ष्वेति प्रार्थितः सिद्धमन्नं सम्पादितम्मया ।
स तूष्णीमास सङ्कोचान्न तां किमपि चोक्तवान् ॥ ८१ ॥

**महातेजसः क्षत्रियस्याऽऽख्यानवर्णनम्**

सिद्धमन्नं कथन्स्वामिन्भुज्यते न त्वयाऽधुना ।
ततो धनादिचर्चा ते कर्तव्या वर्तते बहु ॥ ८२ ॥

महातेजाउवाच

अपराधम्मम नचेद् गृहासि स्वामीवल्लभे ! ।
स्वहस्तेन मया कार्या पङ्क्तिः शुद्धा वदाऽऽशुतत् ॥ ८३ ॥

दास्युवाच

किमानेयं मया स्वामिन्पाकार्थे वद तत्तथा ।
माषचूर्णादि यत्किञ्चिदुच्यतां शीघ्रमस्तिमे ॥ ८४ ॥

स्वाम्युवाच

हविष्यं स्वादु यत्किञ्चिद्भूवेद्वेश्मनिहृत्प्रियम् ।
तदानय महाभागे येन तृप्यन्ति सुद्विजाः ॥ ८५ ॥

तया हृदि बिचार्यैव न चोक्तं किमपि प्रियम् ।
आनीय कारिता पंक्तिस्तया धर्मदृशा यथा ॥ ८६ ॥

भुङ्क्ष्वेति स तयोक्तस्ताम्प्राह स्वामी सुदासिकाम् ॥ ८७ ॥

कथम्विनाऽतिथिम्भुक्षे तस्मादानय कञ्चन ।
सा गता तु बहिर्द्वारम्पश्यन्ती भिक्षुकान्बहून् ॥ ८८ ॥

आहूयमाना नाऽऽयान्ति भिक्षुकाः पात्रपाणयः ।
वदन्ति महतामन्नं त्यक्त्वा दासीपतेः कथम् ॥ ८९ ॥

भुज्यते चाऽन्नमस्माभिः काश्यामवार्धुषिकस्य च ।
कृपणान्नं तु यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते तस्य किल्बिषम् ॥ ९० ॥

इति श्रुत्वा भिक्षुमुखात्तया सर्वं निवेदितम् ।
स्वामिने स्वाम्यपि तदा लज्जितो दुःखितो ह्यभूत् ॥ ९१ ॥

भोक्तुम्प्रवृत्तः स तदा मार्जारानाह्वयत्यहो ! ।
तेऽपि नाऽऽयान्त्यनभ्यासात्ताडयिष्यति नः पुनः ॥ ९२ ॥

मार्जाराणां शुनाम्वृत्तिर्नीयते न कदाचन ।
काकादयश्छलेनाऽत्र ताडिता बहुधा तदा ॥ ९३ ॥

भुक्तं सदन्नं स्वयमेव तेन दास्यै च दत्तम्परिशेषितं ।
व्यापारचर्चां च ततः स कृत्वा चिन्तापरोऽभून्निशि धर्महीनः ॥ ९४ ॥

दास्युवाच

कथमानन्दहीनस्त्वं स्वामिन्वद महामते ! ।
धनेन धनिनान्दुःखं निवर्तेत नचाऽन्यथा ॥ ९५ ॥

सूतउवाच

तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा महातेजा महामतिः ।
न किञ्चनोवाच तदा दासीं धर्मपरायणाम् ॥ ९६ ॥
प्रातरुत्थाय गङ्गायां स स्नातुमादृतः सुधीः ।
पुनर्धर्मकथां श्रोतुं गतो देवालयम्महत् ॥ ९७ ॥
महद्भिरादृतः सोऽपि शृण्वित्युक्तः कथाः शुभाः ।
चकार श्रवणस्विष्णुकथानामादृतोऽधिकम् ॥ ९८ ॥
तत्र कश्चिद्द्विजः सान्तः शिवविष्णपरायणः ।
कथा सूविविधाश्चक्रे नाम्ना शान्तव्रतो मतः ॥ ९९ ॥

शान्तव्रतउवाच

जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पुण्यं समुपार्जितम् ।
तेन पुण्यकदम्बेन दर्शनं याति काशिका ॥१००॥
काशीदर्शनमात्रेण निष्पापो जायते जनः ।
पुण्यभारम्पापनाशं कृत्वा विशति काशिकाम् ॥१०१॥
तेन पुण्यचयेनाऽत्र जायते शुद्धमानसः ।
मनश्शुद्ध्या मुक्त एव भवत्येव न संशयः ॥१०२॥

**कथाश्रवणप्रसङ्गे काशीविश्वनाथक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्**

अत्राऽपिचेत्पापसमूहकारी भवत्यजस्रं हि धनान्धबुद्धिम् ।
त्रिलोचनस्तस्य भवत्यवश्यं शास्ता यदाऽत्रैव मृतो भवेत्सः ॥१०३॥
मात्रा पित्रा वाऽपि देवैर्मुनीशैः कर्तुं शक्यं काशिका यत्करोति ।
नो शक्यन्तन्मेऽत्र तीर्थादिभिर्वा ह्यन्यैर्भूपैः किम्वराकैश्च लोकैः ॥१०४॥
प्रवेशमात्रेण नरः कृतार्थः स्थित्वा पुनः पापरतो यदा स्यात् ।
तदा न तस्याऽस्ति शरीरमात्रे मृते विमुक्तिर्ननु यातनान्ते ॥१०५॥
अहर्निशम्वित्तचिन्तातुराणां कलत्रपुत्राप्तगृहादिभाजम् ।
विज्जृम्भते नो परमं काशिसौख्यं यदर्थमास्ते सहरिर्गिरीशः ॥१०६॥
श्रुता स्मृता गदिता बन्धमोक्षं करोति यत्काजिका काशरूपा ।
न काशिका शङ्करचिन्तकानां भवन्ति पापानि मुनीश्वराणाम् ॥१०७॥

प्रवृत्तिभाजाङ्खलु पापराशिः सन्धीयते किं खलु चित्रमत्र ।
यतोऽनृतन्द्वेषहिंसादिसर्वं भवत्यवश्यम्प्रकृतिर्यथा सा ॥ १०८ ॥
द्वेषो मानस्तथा दम्भो रागो लोभः सदारुणः ।
प्रवृत्तिभाजां सततं भवन्त्येते न संशयः ॥ १०९ ॥
क्व काशिकायां सुखदा प्रवृत्तिः क्व पापराशौ विषये प्रवृत्तिः ।
क्व विश्वनाथानुगतिः परप्रदा क्व दीनमर्त्योपसृतिः सुदुःसहा ॥ ११० ॥
इति द्वितीयेऽह्नि कथां सबाहुजः श्रुत्वा श्रुतिज्ञानरहस्यनिष्ठान् ।
गत्वा गृहं स पितुर्देवशालां प्रविश्य चोत्थाय सुदेववृन्दम् ॥ १११ ॥
निक्षिप्तमासीत्स्वयमेव यत्र नीत्वा तु गङ्गां विममर्द सम्यक् ।
स्नात्वा पुनर्देवगणान्गृहीत्वा चागत्य गेहम्विनिधाय सम्यक् ॥ ११२ ॥
दासी समाभाष्य जगाम देवं श्रीविश्वनाथं जगतामधीशम् ।
विधाय पूजाम्पुनरागतो गृहं चाऽऽलोकयामास जनं सुभिक्षुकम् ॥ ११३ ॥
नाऽऽयाति कश्चित्पतितोऽयमित्यतो धनार्थजीवो न वृषार्थजीवनः ॥ ११४ ॥
तस्य दत्तं न गृह्णाति काश्याङ्कश्चिदथाऽन्त्यजः ।
किम्पुनर्ब्राह्मणादिर्हि धर्मरक्षाकरः शुचिः ॥ ११५ ॥
अथ देवान् क्षालयित्वा चन्दनादि निवेद्य च ।
दास्या सम्भृतसम्भारः पक्तुं समुपचक्रमे ॥ ११६ ॥
पक्त्वा द्वितीयेऽप्यहनि भुक्तवानन्नमुत्तमम् ।
शिष्टन्दास्यै निवेद्याऽथ दासीमाह सबाहुजः ॥ ११७ ॥
दासिके ! त्वत्प्रसादेन प्राप्ता काचिच्छुभा मतिः ।
त्वत्समो न हितः कश्चित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ११८ ॥
आगच्छ भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वं ददस्व परिधत्स्व च ॥ ११९ ॥

दास्युवाच

हितम्मया कृतं किन्ते सन्तो हि हितकारकाः ।
सतां सङ्गाद्धर्मकथा भवन्ति हितकारकाः ॥ १२० ॥
सत्सङ्गमासाद्य तुकाः कथाः कर्णपथङ्गता ।
तव स्वामिन् ! कथय मे ममाऽपि सुखदोभव ॥ १२१ ॥

महातेजाउवाच

अद्य तिष्ठ न प्रष्टव्यं त्वया किञ्चिच्छुभानने ! ।
श्वः सर्वङ्कथयिष्यामि यद्वृत्तं हृदये मम ॥ १२२ ॥

इति श्रुत्वा तु सा तूष्णीमास सेवापरायणा ।
अहर्निशम्महातेजाः कथार्थम्प्रविचारयत् ॥ १२३ ॥
पश्चात्तापपरश्चासीज्जीविते मरणे तथा !
जय शङ्कर ! विश्वेश ! जय दीनपरायण ॥ १२४ ॥
मामुद्धर जगन्नाथ ! पतितं धनलोलुपम् ।
प्रतिक्षणं शिवशिवशिवेति प्रवदत्यसौ ॥ १२५ ॥
रात्रौ निद्रा विशति तं न कथञ्चिदपि क्षणम् !
प्रातरुत्थाय स पुनः स्नात्वा विश्वेशमर्च्य च ॥ १२६ ॥
सत्सभाम्प्राप्य स धनी बाहुजः परया मुदा ।
सद्भिरप्यादृतः सोऽथ कथां शंसद्भिरुत्तमैः ॥ १२७ ॥
अहो महत्त्वं हि सतां कथया श्रवणेन च ।
महातेजा महापापो जातः श्रवणतत्परः ॥ १२८ ॥
बभूव शङ्करपरो विष्णुकाशीमहत्परः ।
उपविष्टः कथां श्रोतुमेकाग्रः स विगर्हितः ॥ १२९ ॥
ततः प्रवृत्ता महती कथा मलविनाशिनी ।
महापुण्यप्रदा तत्र भोगमोक्षैकशेषधिः ॥ १३० ॥
शान्तव्रतस्ततः शम्भुं नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
कथयामास सुकथां काशिवासिजनप्रियाम् ॥ १३१ ॥

**काशीक्षेत्रे साकृतसम्वादनमहिमवर्णनम्**

शान्तव्रतउवाच

देवाश्च ऋषयः काश्यां राजानश्चक्रवर्तिनः ।
यत्राऽऽगत्य जितप्राणा भवन्ति न बहिर्मुखाः ॥ १३२ ॥
शृण्वन्तु लोका मधुरम्मदुक्तं जगद्धितम्पथ्यमपारसौख्यदम् ।
विश्वेशपुर्याम्वसतिन्तु लब्ध्वा यथास्थितिर्धर्मपराऽत्र कार्या ॥ १३३ ॥
काशीमहोत्सवमवाप्य महाजनोऽयं सम्प्रार्थयत्यखिलसाधनसिद्धरूपम् ।
विश्वेश्वरं सकललोकगुरुं सदाप्तं द्रष्टुं शुभाशुभविनाशमुमासहायम् ॥ १३४ ॥
काश्यां येषां नाम गृह्णन्ति लोका बीजन्तेषां जायते मोक्षमार्गे ।
काशीं ये वै संस्मरन्त्यन्यदेशे तानप्यात्मा शङ्करस्तारयेच्च ॥ १३५ ॥
काश्यां ये वै शीघ्रमायुर्व्ययेन सिद्धम्प्राप्तास्ते तु तीर्णा भवाब्धेः ।
देशः कालो लोकयानिस्तथाऽत्र पक्षे पक्षे क्षीयते सङ्गदोषात् ॥ १३६ ॥

कलौ पूर्वावस्था न भवति परा भारत ! नृणाम् ।
यथा सत्ये सम्यक् प्रतिदिनमपारः शुभचयः ॥१३७॥
अतः काश्यां शुद्धैर्जितविविधलौल्यैर्गुरुरतैः ।
प्रवस्तव्यं नित्यं हरिहरकथास्वादनपरैः ॥१३८॥
यत्र यत्र निवसन्ति साधवो माधवैकशरणाः शिवाज्ञया ।
मानयन्ति सुकृतं न पातकम्पातकाद्भयमुमापतेर्भवेत् ॥१३९॥
शरीरसंस्कारकृतो महाजना बहिस्तथाऽन्त शिवदर्शनार्थम् ।
असंस्कृतम्पश्यति नो हरः स्वयं ह्यसंस्कृता नो भगवन्तमीश्वरम् ॥१४०॥
पश्यन्त्युमावल्लभमादिपूरुषं पतिव्रतावन्नियतैकमानसाः ।
स किम्महात्मा व्यभिचारिणां नृणां सुदर्शनम्पाति रतिप्रियः सदा ॥१४१॥
काशीस्थलोको न यमाद्बिभेति न दुःखसङ्गान्न च गर्भवासात् ।
बिभेति चैवम्महतो भयात्परं यन्मानुषत्वं शिवविष्णुहीनम् ॥१४२॥
गङ्गास्नानम्विश्वनाथानुवृत्तिस्तत्तत्तीर्थस्नानदेवार्चनञ्च ।
दानं शक्त्या सत्कथासत्प्रसङ्गः पापात्त्रासः कीर्तनं शम्भुनाम्नाम् ॥१४३॥
कुर्यादेवं क्षेत्रमध्ये स्थितो वा नोचेत्तीव्रा यातना भैरवी स्यात् ।
एतच्छ्रुत्वा क्षत्रियो व्याकुलोऽभूत्पापात्त्रस्तः शीघ्रमागत्य सत्सु ॥१४४॥
नत्वाऽष्टाङ्ग हा ! हतोऽस्मीति मोच्चैर्व्याक्रुश्यासीद्दुर्मना दीनदीनः ।
सद्भिश्चोक्तः किञ्चिदप्याशु तत्त्वं ब्रूहि ब्रूहि ब्रूहि कुर्मो वयन्तत् ॥१४५॥
का ते पीडाकिन्तवप्रार्थ्यमस्ति काशीनाथः सर्वमेवाऽत्र कुर्यात् ॥१४६॥
न धनं न सुता दारा न देहो गेहमेव तत् ।
कदाचिदुपकुर्वन्ति वराकाः क्षणभङ्गुराः ॥१४७॥
यथोपकारी सततं विश्वेशो विश्वया सह ।
तमेव भजतांनृणामुपकारा भवन्ति हि ॥१४८॥

महातेजाउवाच

अहं सुतेजसः पुत्रो महातेजाः प्रकीर्त्तितः ।
क्षत्रियः कुलशीलादियुक्तः सूर्यान्वयोद्भवः ॥१४९॥
पिता मम स्वधर्माग्र्योवदान्यः सज्जनाग्रणीः ।
तस्य गेहे महापापः समुद्भूतोऽहमन्त्यजः ॥१५०॥
जनलोभेन पापानि कृतानि सुमहान्त्यपि ।
दासीपतिरहन्त्वद्य परिणीतामृता वधूः ॥१५१॥

निन्दितैर्बहुभिर्मार्गैस्तद्ध नं सञ्चितवानहम् ।
संख्यातस्य धनस्याऽऽशु मयाऽपिनाऽवगम्यते ॥ १५२ ॥
काश्यामेव मया सर्वं सञ्चितम्पापमार्गतः ।
रक्षका अपिनो सन्ति पुत्राद्या मम वस्तुतः ॥ १५३ ॥
मम गेहे वृता दासी सदा श्रवणतत्परा ।
तयाऽहम्प्रेषितःसत्सु कथाश्रवणहेतवे ॥ १५४ ॥
श्रुता दिनत्रयं धर्मकथा पापप्रणाशिनी ।
विवेकदायिनी काश्या विश्वेशस्य महात्मनः ॥ १५५ ॥
अथ लज्जा सुमहती जाता मम महाधियः ।
प्रायश्चित्तं वदन्त्वद्य येन शुध्येन्नरः सदा ॥ १५६ ॥

**काश्यां कृतानाम्पापानां प्रायश्चितवर्णनम्**

एकमेव महद्भूतं प्रायश्चित्तं दृढन्द्विजाः ! ।
सर्वपापानि नश्यन्ति काश्यामपि कृतानि हि ॥ १५७ ॥
काश्यां कृतानाम्पापानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ।
श्रूयते महताम्वक्त्राब्दिभेमि हि ततो ध्रुवम् ॥ १५८ ॥
अवश्यं निष्कृतिर्वाच्या कृपया तारकैर्द्विजैः ॥ १५९ ॥
धनेन देहेन यथा मम स्याच्छुद्धिस्याऽन्विष्य वदन्तु शीघ्रम् ।
नो चेत्पतिष्यत्यवशो हि देहो मनुष्यरूपो नतु मानवार्थः ॥ १६० ॥

सदस्याऊचुः

काश्याङ्कृतानाम्पापानां निष्कृतिर्नरदुर्ल्लभा ।
वदन्ति हि पुराणानि वेदाः स्मृतिगणाअपि ॥ १६१ ॥
तथापि शङ्करेणोक्तमस्ति किञ्चित्त्र चक्ष्महे ।
श्रद्धया क्रियते यर्हि तदा वासफलं लभेत् ॥ १६२ ॥
यातनासु पतित्वा किं मोक्षः साध्यः सुमानवैः ।
यद्यस्ति सञ्चयो राजन् ! कुरु धर्ममनामयम् ॥ १६३ ॥
न हि धर्मसमो बन्धुः सोऽपि तञ्चाऽनुगच्छति ।
पृष्टो विश्वेश्वरो देवो ऋषिभिः पापभीरुभिः ॥ १६४ ॥
काश्यां स्थितैर्महापुण्यैर्जैगोषव्यादिभिर्भयात् ॥ १६५ ॥

ऋषयऊचुः

देव ! देव ! महादेव ! काशिवासिजनप्रिय ! ।
काश्याङ्कृतानाम्पापानां प्रायश्चित्तम्वदाऽऽशु नः ॥ १६६ ॥

श्रीभगवानुवाच

धनेषु विद्यमानेषु गृहमुत्थापयेत्सुधीः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नं दैन्यकार्पण्यवर्जितम् ॥ १६७ ॥
वित्तानुमानेन महत्काशिवासिसुखप्रदम् ।
आर्ताय द्विजवर्यायु साधवे तंनिवेदयेत् ॥ १६८ ॥
अन्नवस्त्रादिसंयुक्तं कुप्यभाण्डादिसम्भृतम् ।
शय्यापीठादिसंयुक्तं गृहम्पात्रे निवेदयेत् ॥ १६९ ॥
यत्र विष्णुकथाः सत्या मम धर्मकथाः शुभाः ।
भवन्त्यविरतब्तत्र पात्रवर्ये निवेचयेत् ॥ १७० ॥
देवकार्यं पितृकार्यं सताम्विश्राममेव तत् ।
तद्दत्तमुद्धरेत्पूर्वान् दात्रा सह ममाऽऽज्ञया ॥ १७१ ॥
या गतिर्गृहदातुःस्यात् पितृणामपि सा गतिः ।
तस्मात्काश्याङ्गृहसमं दानं नास्ति महद् द्विजाः ! ॥ १७२ ॥
ब्राह्मणो यत्र वसति दिनमात्रमपि स्वतः ।
तत्सात्कृते किम्पुनः स्याद्वर्णनीयं फलप्रदम् ॥ १७३ ॥
काश्याङ् कृतानाम्पापानां शुष्कार्द्राणान्धिया पुनः ।
प्रायश्चित्तम्मुख्यमेतत्काशीवासफलप्रदम् ॥ १७४ ॥

**काश्यां कृतपापमोचनस्य सरलातिखरलोपापवर्णनम्**

दत्त्वा गृहम्पापभीरुः प्रवृत्तिम्परितस्त्यजेत् ।
प्रवृत्त्या पुनरायान्ति संस्कारात्पातकान्युत ॥ १७५ ॥
अतत्त्वज्ञमविश्रान्तमलब्ध्वाऽऽत्मानमस्थिरम् ।
निगिरन्तीन्द्रियाण्याशु प्रवृत्त्याऽपि हि धार्मिकम् ॥ १७६ ॥
एतादृशमपीत्थम्वै धर्मैर्युक्तम्महामतिम् ।
काशिका मोचयत्येव प्रायश्चित्तपरन्नरम् ॥ १७७ ॥
काश्यां तिष्ठामि सगणः सावधानः सदा द्विजाः ।
अत्राऽऽनन्दवने यस्तु शिवालयकरो भवेत् ॥ १७८ ॥
पातालमर्त्यलोकेषु कृतदेवालयः स च ।
इष्टकापुञ्जकृद्यस्तु कौतुकेन नरः सकृत् ॥ १७९ ॥
काश्यां जलाशयं किञ्चित् गर्त्तमात्रम्मुनीश्वराः ।
करोति विवशोऽप्यत्र कृतैः पापैः प्रमुच्यते ॥ १८० ॥

न तयोः साम्यमायाति सर्वदृक्सर्वतीर्थकृत् ।
शिवलिङ्गस्य पूजा चेत्प्रत्यहं जायते सकृत् ॥ १८१ ॥
तदा लिङ्गप्रतिष्ठायाः फलमाप्नोति सन्ततम् ।
जलाशयस्य खनने लिङ्गोत्खातो भवत्यपि ॥ १८२ ॥
यतः सर्वा लिङ्गमयी काशी काशितसत्पदा ।
शिवं शिवालयङ्कार्यां कृतभङ्गं निरीक्ष्य च ॥ १८३ ॥
अनुतापो भवति चेन्कर्त्तुः प्रियकरः सदा ।
जीर्णोद्धारम्प्रकुर्वन्ति जलाशयशिवालयौ ॥ १८४ ॥
शिवायतनलक्षाणि विष्णोरायतनानि च ।
कृतानि तेन विप्रेन्द्राः! प्रीयेऽहं सचराचरः ॥ १८५ ॥
शिवालयशतङ्कत्वा यत्फलम्प्राप्यते नृभिः ।
द्विजालयेन चैकेन तत्फलन्त्वक्षयम्भवेत् ॥ १८६ ॥
तस्मात्किञ्चिद्यथाशक्त्या कुर्याद्विप्रो यथा वसेत् ।
क्षेत्रे कृतानाम्पापानां प्रायश्चित्तमिदं श्रुतम् ॥ १८७ ॥
पुत्रपौत्रादियुक्ताय काशीवासाभिलाषिणे ।
शिवभक्तिपरायाऽपि विष्णुव्रतपराय च ॥ १८८ ॥
महापातकसङ्घस्तु गृहदत्ते क्षयम्व्रजेत् ।
अन्तर्गृहे गृहं यस्तु कृत्वा विप्राय चाऽर्पयेत् ॥ १८९ ॥
मद्गेहं निर्मितं तेन मह्यं दत्तं न संशयः ॥ १९० ॥

सदस्याऊचुः

एवं भगवता प्रोक्तं प्रायश्चित्तं तृतीयकम् ।
श्रुत्वा महर्षयो हर्षं लेभिरे काशिवासिनः ॥ १९१ ॥

महातेजाउवाच

विधिम्वदत दानस्य मम सर्वाघनुत्तये ।
यथा दद्याङ्गृहं यस्मै द्विजाय धनसंयुतम् ॥ १९२ ॥

सदस्याऊचुः

यथाकथञ्चिद्विप्रोवै वसेद्गेहे सुखी सुधीः ।
स एव मुख्यो हि विधिर्यत्र धर्मः प्रवर्त्तते ॥ १९३ ॥
कश्चिद्विश्रमते यत्र धर्मशालेति सा स्मृता ।
तयाऽप्यनन्तम्भवति पुण्यम्पापञ्च नश्यति ॥ १९४ ॥

## महातेजसो ब्राह्मणाय गृहदानवर्णनम्

श्रीमहादेवउवाच

विधिं श्रुत्वा महातेजा गृहदानस्य पापनुत् ।
पाषाणपक्वेष्टकाभिः कारयामास सद्गृहम् ॥१९५॥
वसिष्ठगोत्रः सुतपाः सदाचारः कुटुम्बवान् ।
तृणपर्णादिरचिते गेहे तिष्ठति सर्वदा ॥१९६॥
सदाभिक्षितभुक् शान्तः शिवभक्तिरतः सदा ।
पञ्चमुद्रे महापीठे वीरेश्वरसमीपतः ॥१९७॥
वसतिस्तस्य जीर्णस्य क्षुधया जीर्णताङ्गतः ।
दृष्ट्वा तन्तु महातेजा ब्राह्मणम्प्राह दीनवत् ॥१९८॥

महातेजाउवाच

किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोऽहं शृणु विप्रेन्द्र ! मद्वचः ॥१९९॥
शिवार्थङ्केनचिद्गेहमुत्थापितमतिस्फुटम् ॥२००॥
तदङ्गीक्रियतामद्य तन्निस्तारार्थमाशु भोः ! ॥२०१॥

सुतपाउवाच

यायावरोऽहं धर्मिष्ठो नाधिकम्प्रार्थये क्वचित् ।
अग्निनिर्वाहमात्रात्तु स्वातिथेः पूजनात्परम् ॥२०२॥
गृहे न मम किङ्कार्यं धनर्ध्या वा महामते ! ।
धनदोषम्विजानामि यदादृत्य पतेदधः ॥२०३॥

महादेव उवाच

आनीयसर्वान्विप्रान्सः प्रार्थयामास तं द्विजम् ।
तन्मुखात्सुमहातेजाः प्रायश्चित्तार्थमात्मनः ॥२०४॥
तैः प्रार्थितस्तु सुतपा उवाच ब्राह्मणान्प्रति ।
अङ्गीकृत्य ब्राह्मणेभ्यो दास्यामि न वसामि तत् ॥२०५॥

सदस्याऊचुः

त्वमुद्धरैनम्विप्रर्षे ! क्षत्रियं धनिनं नतम् ।
अन्तर्यामिप्रयुक्तस्तु यत्करिष्यसि तत्कुरु ॥२०६॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषामङ्गीकृत्य गृहम्महत् ।
महद्धनञ्च विप्रेभ्यो ददौ स सुतपाः पुनः ॥ २०७ ॥

प्रतिग्रहस्य यो दोषस्तस्य नाशाय निर्ममः ।
भिक्षितम्भोजयामास ब्राह्मणान्पूर्वसञ्चितम् ॥ २०८ ॥
एवं महापापधनोऽपि बाहुजो दत्त्वा गृहम्विप्रवराय पातकैः ।
मुक्तः सतां सम्मतिमाप सम्मतेश्चचार धर्मं नहि पापमाप ॥ २०९ ॥
शृणोति यः पापविनाशिनीङ्कथां पापानि नश्यन्ति हि तस्य शीघ्रम् ।
यः श्रावयेत्सोऽपि न पापभाग्भवेत्प्राप्नोति धर्मम्परमार्थहेतुम् ॥ २१० ॥

श्रीकपिलउवाच

एवं सिद्धा ! भवद्भिर्यत्पृष्टं तत्सर्वमादितः ।
शिवयोर्मुखतः प्रोक्तं किम्पुनःश्रोतु मिच्छथ ॥ २११ ॥

सूतउवाच

इत्येवं कपिलः सिद्धानाभाष्य परया मुदा ।
सम्वादं शिवयोः प्रौढं विरराम महामुनिः ॥ २१२ ॥
भवन्तोऽपि महाप्राज्ञाः काशीमामात्म्यवेदिनः ।
श्रयन्तु काशोन्नियतं सर्वपापापनुत्तये ॥ २१३ ॥
नानेन सदृशम्मुक्तये साधनम्विद्यते भुवि ।
तस्मात्काश्येव संसेव्या विश्वेशनगरी शुभा ॥ २१४ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे ।
काशीरहस्यव्याख्याने प्रायश्चित्तविधिर्नाम ॥ २१५ ॥
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

# अथ त्रयोदशोऽध्यायः

## काशीस्थितानाम्प्रमुखतीर्थानाम्वर्णनम्

ऋषयऊचुः

काश्यां लिङ्गन्यनन्तानि काश्यान्तीर्थानि सर्वशः ।
अकृत्वा दर्शनं स्नानं प्रत्यवायी नरो भवेत् ॥ १ ॥
तानि तीर्थानि लिङ्गानि बदस्व भुवि वत्सल ! ।
ज्ञातेषु तेषु यात्रा स्यान्नाऽन्यथा तीर्थवत्सल ! ॥ २ ॥
आवश्यकानि तीर्थानि श्रृण्वन्तु द्विजसत्तमाः ! ।
अस्नानात्प्रयवायी स्यादविमुक्ते स्थितो नरः ॥ ३ ॥
गङ्गास्नानं नित्यमेव प्रशस्तं गङ्गस्नायी सर्वतीर्थेषु सस्नौ ।
गङ्गास्नानापेक्षयाऽन्यस्य यात्रा नो ।
कर्तव्या धर्मदृग्भिर्नृभिर्हि ॥ ४ ॥
मध्यान्हे मणिकर्णिकामनुसरेत्सर्वाघहन्त्रीम्पुन-
र्मोक्षार्थादिसमस्तसिद्धिदजलां विष्णोस्तपः सज्जलाम् ।
देवादेवमुनीश्वराश्च श्रृषयो नागाः सरा मानवाः
कृत्वा धर्मशतम्महेशशरणा याम्प्रार्थयन्तेऽनिशम् ॥ ५ ॥
प्रातः पुनः पञ्चनदे रमापतेर्निवासभूते सकलार्थसिद्धिदे ।
स्नायान्नरः पापविनाशपूर्वं मोक्षान्तसिद्धिप्रद आदरेण ॥ ६ ॥
आदिकेशवपदम्परम्पदं सङ्गतस्वरणया च गङ्गया ।
स्नाति यः सुकृतपूरपूरितो यत्र विष्णुपदभाक् प्रजायते ॥ ७ ॥
शूलटङ्कपरतः प्रजापतेस्तीर्थमुत्तममिनिप्रयागजम् ।
गङ्गया यमुनया च सङ्गतन्तत्र मज्जनकृतां न मज्जनम् ॥ ८ ॥
गङ्गासिसम्भेदवरे निमज्य नरो निमज्जेन्न भवाब्धितोये ।
सुतीर्थकामस्य सुकामपूर्तिर्भवेदवश्यङ्खलु याऽत्र सिद्धा ॥ ९ ॥
गङ्गातीरे यानि तीर्थानि सन्ति-तेषु स्नानं गङ्गया सिध्यतीह ।
लिङ्गन्तीर्थं तिष्यकाले समेन सूत्रेणस्याज्ज्ञातमत्रत्यलोकैः ॥१०॥

नित्यानि तीर्थानि भवन्ति चैतान्यन्यानि यात्रादिवसे कृतानि ।
तत्तद्दिने कार्यशतम्विहाय स्नानार्थमेव प्रयतोऽभिगच्छेत् ॥ ११ ॥
पदे पदे तीर्थशतं गङ्गातीरेमहर्षयः ।
सन्ति तेषाम्परिच्छेदः केन कर्त्तुं प्रशक्यते ॥ १२ ॥
तीर्थार्थी न वहिर्गच्छेन्न देवार्थी कदाचन ।
सर्वंतीर्थानि देवाश्च वसन्त्यत्राऽविमुक्तके ॥ १३ ॥
काश्यां नवौख (प)राः सम पुर्य्यः सन्ति समागताः ।
रेणुका सूकरः काशी काञ्ची कालीवटेश्वरौ ॥ १४ ॥
कालञ्जरमहाकालौ ऊषर्वरा नव कीर्तिताः ।
नवारण्यानि च तथा नागाश्च सूकृतपदः ॥ १५ ॥

**काश्यां सप्तपुरीवासविषये-विवशक्त्योः सम्वादवर्णनम्**

ऋषयऊचुः

सप्तपूर्य्यः काशिकायां कुत्र कुत्र व्यवस्थिताः ।
ज्ञातव्यास्ताः कथं सूत ! यात्रार्थिभिरितस्ततः ॥ १६ ॥

सूतउवाच

इदमेव पूरा पृष्टः पार्वत्या जगदीश्वरः ।
कथयामि यथा व्यासमुखाच्छ्रुत्वाऽवधारितम् ॥ १७ ॥

देव्युवाच

सप्तपूर्य्यः काशिकायां सन्ति शङ्करशङ्कराः ।
श्रूतन्त्वत्तो महादेव ! तासां स्थानानि मे वद ॥ १८ ॥
यात्रादिनानि मे ब्रूहि फलं तासाम्विमुक्तिदम् ।
यत्र त्वम्भगवाञ्छम्भूर्यत्र देवो जनार्दनः ॥ १९ ॥
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र तीर्थे वराणि च ।
भवन्त्येव किमाश्चर्यं ज्ञानं सर्वस्य दुर्लभम् ॥ २० ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु देवि ! महाभागे ! रहस्यङ्काशिवासिनाम् ।
ये तीर्थसर्वसौभाग्यं पूण्यम्पापप्रणाशनम् ॥ २१ ॥
भूञ्जते क्षेत्रमध्यस्था अनायासेन पार्वति ! ।
तेषां न क्षेत्रयात्रादावन्यत्र रतियुङ्मनः ॥ २२ ॥

देवदेवैस्त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिर्मुक्तिदा नृणाम् ।
ताभिर्वयं सुपूर्णाखिः सुपूर्णा विष्णुशासनात् ॥ २३ ॥

**काश्यां सप्तपुरीमाहात्म्यवर्णनम्**

स्थिता ह्यानन्दसदने निरानन्दान्विमोचितुम् ।
व्यापिका काशिका त्वन्या व्याप्याः षणमुक्तिदाः पुरः ॥ २४ ॥
काशस्वरूपा काशीयं काश्यन्त्वन्यज्जगत्त्रयम् ।
हिरण्यगर्भशक्राद्या ब्रह्मांशा जीवराशयः ॥ २५ ॥
ब्रह्माश्रिताः प्रवर्तन्ते ब्रह्म नान्याश्रितम्विभू ।
तथा सर्वाणि तीर्थानि सप्तपूर्य्यश्च मानदे ॥ २६ ॥
वसन्ति काशीमाश्रित्व स्वसामर्थ्यविवृद्धये ।
कऽकाशिकां न सेवेत ब्रह्मविष्विन्द्रशङ्कराः ॥ २७ ॥
सुखदाः परमं सौख्यं प्रापुर्यत्र सदा स्थिताः ।
शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि यद्गोप्यं मन सर्वदा ॥ २८ ॥
यत्र या पूः समुद्दिष्टा काश्यान्तत्र वदामि ।
शङ्खोद्धारप्रदेशे तु द्वारका परिकीर्त्तिता ॥ २९ ॥
विन्दुमाधवपार्श्वस्था विष्णुकाञ्चीति विश्रुता ।
उत्तरार्कादुत्तरतो मथुरावरणावधि ॥ ३० ॥
अयोध्या वायुकोणे त सोमेश्वरसमीपतः ।
यत्र रामेश्वरं लिङ्गं वसेत्सीताप्पतिः स्वयम् ॥ ३१ ॥
विभीषणादिभिर्यत्र राक्षसैर्वानिरैरपि ।
स्थापितान्ययुतं सार्धं लिङ्गानि परितः पृथक् ॥ ३२ ॥
असि सम्भेदकोणे तु गङ्गाद्वारम्प्रकीर्त्तितम् ।
वृद्धकालात्परोभागे कृत्तिवासेश्वरावधि ॥ ३३ ॥
कालकालपुरी ज्ञेया ह्यवन्ती ह्यघतो जिगत् ।
एताः काश्याम्परः पूर्वं देवैत्र ह्यादिभिः शवे ॥ ३४ ॥
स्तुत्वा प्रकाशिताः काशी जनित्री भोगमोक्षयोः ।
यथा देवषु विष्वेशो यथा देवीषू पार्वती ॥ ३५ ॥
यथा धर्मेमंषु विष्ण्वाख्यस्तथा तीर्थेषु काशिका ।
प्रावृड्ऋतौ द्वारवतीयात्रा मोक्षकरी शुभा ॥ ३६ ॥
शरत्काले विष्णुकाञ्ची गन्तव्या प्रत्यहं बुधैः ।
मथुरा वसन्तसमये गन्तव्या भक्तिवर्धिनी ॥ ३७ ॥

अयोध्या ग्रीष्मकाले तु तापत्रयनिवारिणी ।
अवन्तिका हिमर्तौ तु महाजाड्यविनाशिनी ॥ ३८ ॥
मायापुरी तु शिशिरे रजोगुणविनाशिनी ।
काश्याः सर्वा निःसृताः सृष्टिकाले ।
काश्यामन्तः स्थितिकाले वसन्ति ।
काश्या लीनाः सर्वसंहारकाले ज्ञातव्यास्ता ।
मुक्तिपुर्य्यो भवानि ॥ ३९ ॥

पार्वत्युवाच

विभागोऽयम्महादेव ! कदारभ्य प्रवर्त्तते ।
पृथक् स्थिताः कथम्पुर्य्यः कथमेकत्र संस्थिताः ॥ ४० ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु देवि ! रहस्यम्मे यन्नाख्यातन्तु कस्यचित् ।
काश्यास्तु महिमा कश्चित् विचित्रश्चित्तशान्तिकृत् ॥४१॥
पुरा कृतयुगे देवि ! देवानां सुमहानभूत् ।
सम्वादो मुक्तिमुद्दिश्य ऋषीणाम्भावितात्मनाम् ॥ ४२ ॥
कथञ्जीवाः प्रमुच्यन्ते कथम्पापक्षयो भवेत् ।
कथं दुःखनिवृत्तिर्हि कथं सुखमवाप्यते ॥ ४३ ॥
एवम्प्रवदतान्तेषां निःश्रेयससुखार्थिनाम् ।
सर्ववेदार्थतत्त्वज्ञो भगवान् विष्णुरब्रवीत् ॥ ४४ ॥
अयोध्या मथुरा काशी माया काञ्ची ह्यवन्तिका ।
पुरी द्वारवती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायकाः ॥ ४५ ॥

## सप्तपूर्वर्णनं शिवलिङ्गस्थानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

द्वारकायाम्मृता ये च वसन्ति च महाधियः ।
तेषाम्मोक्षो भवत्येव महापापप्रणाशनः ॥ ४६ ॥
महापातकयुक्ता ये महादानरताश्च ये ।
तेषां समा गतिः प्रोक्ता मथुरायाम्बपुर्व्ययात् ॥ ४७ ॥
या गतिर्योगयुक्तानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
सा गतिर्विष्णुकाञ्चयां हि कान्तिमत्याम्परार्थिनाम् ॥४८॥
शृण्वन्तु देवा ! मुनयो ! मम वाचम्महाफलाम् ।
अयोध्यायाम्मृता जीवा भवन्ति हरिरूपिणः ॥ ४९ ॥

गङ्गाद्वारे मृतानान्तु निर्वाणं निर्विकल्पकम् ।
भवत्येव न सन्देहो ह्यनन्तस्य प्रसादतः ॥ ५० ॥
अवन्तिका पुरी शुद्धा महाकालस्य शश्वती ।
यस्याम्विपन्ना विश्वात्मन्विलीयन्ते महाजनाः ॥ ५१ ॥
एता षट्सिद्धिदा नृणां देहत्यागकृतां सताम् ।
सर्वाः सुकृतसम्भारसम्भृताः पुण्यकर्मणाम् ॥ ५२ ॥
तीर्थानि सर्वाणि पुरीश्चसर्वास्तथा शिवंस्याऽऽयतनानि षष्टिः ॥ ५३ ॥
नद्यो नदाः सरसः सागराश्च देवाः समेता मुनयश्च सर्वे ॥ ५४ ॥
वसन्ति काश्यां स्वविमुक्तिकामाः कामारिसम्प्राप्तमहत्प्रभावाः ।
दृष्ट्वा हि काशीं रमते मनो न तीर्थेषु चान्येषु सदैव तेषाम् ॥ ५५ ॥

शिवउवाच

इति ब्रह्महरिभ्यान्तु प्रोक्ता देवाः सवासवाः ।
काशीम्मनसि सन्धाय गताः सन्देहवर्जिताः ॥ ५६ ॥

शौनकउवाच

सूताऽस्माभिः श्रुताः पुण्याः कथाः काश्याः सुदुर्लभाः ।
पुरीणां सङ्गमो यत्र तत्र मोक्षो न संशयः ॥ ५७ ॥
यस्याः प्रसादादन्यास्तु पुर्यो मोक्षम्वितन्वते ।
ताङ्काशीं को न सेवेत मोक्षार्थी सर्वदा शुभाम् ॥ ५८ ॥
अन्यान्यपि च तीर्थानि मुक्तिदानि पदे पदे ।
सन्ति निर्मलसन्तानकराणि फलवन्ति च ॥ ५९ ॥
तानि लिङ्गानि तीर्थानि वद सूत ! महामते ! ॥ ६० ॥

सूतउवाच

अथ लिङ्गानि वक्ष्यामि महामहिमवन्ति च ।
यद्दर्शनान्नृणाम्पापक्षयः पुण्यचयो भवेत् ॥ ६१ ॥
अविमुक्तेश्वरं लिङ्गमविमुक्तफलप्रदम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण कृतार्थो मोक्षमाप्नुयात् ॥ ६२ ॥
लिङ्गं महानन्दकरं विश्वेशाख्यं सनातनम् ।
नमस्कृत्य विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ ६३ ॥
मणिकीश्वरं लिङ्गं मोक्षद्वारमपावृतम् ।
यस्य दर्शनतः सम्यक् मणिकर्णौ समाप्यते ॥ ६४ ॥

वीरेश्वराभिधं लिङ्गं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
सर्वसिद्धिप्रदन्नृणामशुभध्वान्तनाशनम् ॥ ६५ ॥
केदारेशं महालिङ्गं देहकेदारनाशनम् ।
केदारपुत्र वित्ताद्या भवन्तिध्वान्तभूमयः ॥ ६६ ॥
कृत्तिवासं महालिङ्गं वाससौख्यकरम्परम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण न मोक्षादिसुदुर्लभम् ॥ ६७ ॥
वृद्धकालेश्वरं लिङ्गं महाकालनिवारम् ।
कलिकालमहाज्वालाजालं जीवनजीवनम् ॥६८ ॥
चन्देश्वरञ्चन्द्रकान्तमणिप्रभमनामयम् ।
अज्ञानध्वान्तशमनं दृष्टक्काश्यां चितात्मकम् ॥ ६९ ॥
ब्रह्मेश्वम्ब्रह्मसारप्रदमाद्यै रुपासितम् ।
दृष्टम्महाघौघहरं महामाणिक्यसन्निभम् ॥ ७० ॥
त्रिलोचनेश्वरं लिङ्गं नागयज्ञोपवीतिनम् ।
दृष्ट्वा त्रैलोक्यविभवस्तृणीभवति नान्यथा ॥ ७१ ॥
ओंकारेश्वरमभ्यर्च्य योगसाङ्ख्यादिसिद्धिभाक् ।
नरो भवति चैतन्यपूर्णः पूर्णमनोरथः ॥ ७२ ॥
कपर्दीश्वरमभ्यर्च्य काश्यां शिवतनुर्भवेत् ।
कपर्दमात्रमपि नो सङ्गृहीयाद्विरक्तिभाक् ॥ ७३ ॥
धर्मेश्वरस्य ये भक्ता धर्मपूर्णा भवन्ति हिं ।
काश्याम्पापमतिस्तान्न वाधते धर्मवत्सलान् ॥ ७४ ॥
अग्नीश्वरम्महालिङ्गं महापातकनाशनम् ।
दृष्ट्वा काश्याम्महायज्ञफलमाप्नोति मानवः ॥ ७५ ॥

**काशीवासिना स्वधर्मपराणां प्रशंसावर्णनम्**

समस्तदेवशरणं सर्वतीर्थाश्रयं शुभम् ।
अविमुक्तम्महाक्षेत्रं सेव्यन्धीरैर्जितेन्द्रियैः ॥ ७६ ॥
काश्याम्पश्यन्ति सततं शङ्करं धर्मवत्सलम् ॥ ७७ ॥
वसन्ति पापा नहि काशिकायां वसन्ति चेदत्र मृतिर्न जायते ।
मृतिर्भवेच्चेन्नहि यातनाक्षयः क्षये भवेन्मोक्षसुखन्तु धिक्कृतम् ॥ ७८ ॥
एवं महासङ्कटमाप्य मुक्तिः शुभाऽथवा धर्मपरैरवाप्यते ।
विचार्य्यमेतद्यति शङ्कराज्ञया पापं न कुर्यात्किमपीह धीरः ॥ ७९ ॥

न लोलुपाः कामपराःकुधान्विता हिंसाक्षभादानपराः सदाशिवम् ।
पश्यन्तिलोकाः परवादकारिणः पैशून्यपाखण्डविवादवादिनः ॥ ८० ॥
पश्यन्ति ये शान्तसमानवृत्तयः सदा सदाचाररता द्विजाः प्रियाः ।
परोपकारादिषु चाऽप्रमत्ताः प्रमत्तसंसर्गविर्वाजिताश्च ॥ ८१ ॥
शिवामृतं ये श्रुतिभिः पिवन्ति गङ्गाजलं ये मुखतः पिवन्ति ।
पिवन्ति ये काश्यमृतम्पुनः पुनर्न जातु मातुस्तनपा भवन्ति ॥ ८२ ॥
देवा यत्र मिलन्ति तत्र गमन लोकस्य नो भास्यते ।
सर्वं ह्येतदवाधितुं सुखकरं लोकस्य काश्यां ध्रुवम् ॥ ८२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये काशीविश्वेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

# अथ चतुर्दशोऽध्यायः

## काशीप्रशस्तिप्रसङ्गे ब्रह्मामन्वोः सम्वादवर्णनम्

ऋषयऊचुः

काशीमाहात्म्यमनघ ! कथयस्व पुनः शुभम् ।
श्रवणेनैव सुभगे प्रीतिर्जाताऽविमुक्तके ॥१॥

सूतउवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे विचित्राङ्काशिसत्कथाम् ।
श्रुताम्व्यासमुखात्सर्वैं वैशम्पायनपूर्वकैः ॥२॥
ऋषिभिस्तु कुरुक्षेत्रवासिभिः पुण्यराशिभिः ।
पुरा सत्ययुगे विप्रा यद्वृत्तन्तद्वदामि वः ॥३॥
स्वायम्भुवो महातेजा मनुः शासितविग्रहः ।
स एकदा विषण्णात्मा ब्रह्माणं समपद्यत ॥४॥
पप्रच्छ सत्यकामस्तं किमागमनकारणम् ? ॥५॥

मनुरुवाच

आज्ञापय गुरो ! मान्त्वं वनङ्गन्तुं जगद्गुरो ! ।
कृतकृत्योऽस्मि भगवन् ! कार्यम्मम न विद्यते ॥६॥

ब्रह्मोवाच

वक्ता त्वमसि धर्मस्य कर्त्ता तदनुमोदिता ।
कथं निर्वेदमायातो भवान् वेदप्रवर्तकः ॥७॥

मनुरुवाच

ब्रह्मन्काशीङ्काशिताशेषसत्त्वां ये ये लोकाः सस्मरुर्यत्र कुत्र ।
ते ते मुक्ताः किम्पुनर्दर्शनात्स्युर्दृष्ट्वा ये वै काशिकां सङ्ताश्च ॥८॥
अहमपि गमनेच्छुर्यत्र देवः स्वतन्त्रः शुभमशुभजनं यस्सारयेत्काशिवासी ।
श्रुतिशतकृतकार्या यत्र लोका वसन्ति ह्यहमपिकृतकार्यस्तत्र वत्स्ये कृतार्थः ।९।
श्रुतिस्मृतिपुराणैश्च धर्मः साध्यः सताम्मतः ।
तत्फलं दर्शनादेव किं धर्मैः संश्रितैः पुनः ॥१०॥

सूतउवाच

एवं ब्रह्माः मनोः श्रुत्वा वाक्यं यावद्विचारयेत् ।
तावद्यमः पापिनां हि शास्ता ब्रह्माणमन्वगात् ॥ ११ ॥
नमस्कृत्य महातेजाः काशीङ्काशीश्वरं स्मरन् ।
उपविष्टो मेरुपृष्ठे कृतार्थो ब्रह्मसन्निधौ ॥ १२ ॥

ब्रह्मोवाच

कथमागमनन्तेऽद्य त्वनाहूतस्य शंस मे ।
पापिनो हननन्ते वा ह्यस्माकम्वद रक्षक ! ॥ १३ ॥

यमउवाच

देव ! देव ! नमस्तेऽस्तु कृतार्थोऽस्मि जगत्पते ! ।
श्रृणु यत्कतुौकम्वृत्तं संयमिन्याम्ममाग्रतः ॥ १४ ॥
दूता मया पापिविलोकनाय सृष्टाः प्रभो ! भारतमेव खण्डम् ।
सत्येन पापम्प्रचुरञ्जनेषु यत्राऽस्ति ते काशिदृशा विमुक्ताः ॥ १५ ॥
अहं तत्र महापापकारिणो निरङ्कुत्तान् ।
शास्मि क्रोधवशात्तेषाम्पातकैः सम्प्रणोदितः ॥ १६ ॥
तावद्दूताः कर्मभूमे रिक्ता दृष्ट्वा मया गताः ।
पृष्ठाश्चैते मयेत्यूचुः काश्या सर्वे विमोचिताः ॥ १७ ॥
केचिन्नाम्ना केऽपि सन्दर्शनेन केचिद्गत्वा स्नानमात्रेण केचित् ।
केचिद्देवं दक्षिणीकृत्य केचित् पूजाङ्कृत्वा केऽपि मुक्ता बभूवुः ॥ १८ ॥
पापिनोऽपि विविधैर्विचारणैः सम्विचार्य हि गणैः परस्परम् ।
यातनार्थंधृतजीवपञ्जरैः काशिकाशिवचनैर्विमोचिताः ॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच

स्वायम्भुवमनो ! शान्त ! धर्मराज ! महामते ! ।
गच्छामः शङ्करं शान्तं पृच्छामस्तस्य चेष्टितम् ॥ २० ॥

**काशिमाहात्म्यप्रसङ्गे सदेवस्यब्रह्मणोयमेन शिवपार्श्वगमनवर्णन**

सूतउवाच

एवमुक्तौ मनुयमौ ब्रह्मणा सह सुव्रतौ ।
यातौ कैलाशशिखरं यत्र देव उमापतिः ॥ २१ ॥
तत्र दृष्ट्वा महादेवं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
स्तोत्रैर्बहुविधैः शम्भुं जय काशीश ! शङ्कर ! ॥ २२ ॥

उमेश ! देवदेवश ! शरण्य ! शशिशेखर ! ।
इतिनामभिरन्यैश्च तुष्टुवुर्गंगताम्पतिम् ॥ २३ ॥
ब्रह्मण्येनाऽऽदृतास्ते तु सुखमूषुस्त्रयोऽपि ते ।
ब्रह्मन्कथय भद्रन्ते किमागमनकारणम् ? ॥ २४ ॥
एतावपि किमिच्छन्तौ धर्मराजमनू वद ।
किमर्थंकामाः सम्प्राप्ताः सर्वम्वदत सुव्रताः ॥ २५ ॥

ब्रह्मोवाच

आदिसर्गे महादेव ! देवैः पृष्ठोऽसि शङ्कर ! ।
विष्णुमुख्यैः सदाभक्तैः कथन्तुष्यसि शाश्वतः ! ॥ २६ ॥
त्वयोक्तं ऋषयो देवाः शृणुध्वम्ब्रह्मवादिनः ।
यथा मे वेदमार्गेण गच्छतः पुरुषस्य हि ॥ २७ ॥
सन्तोषो जायते देवा न तथाऽन्यैर्धनादिभि ।
वेदो नारायणः साक्षाद् वेदाभ्यासी सदा ह्यहम् ॥ २८ ॥
वेदमार्गरता ये च ते मद्भक्ता न चाऽपरे ।
इदानीमन्यथेच्छा वा प्रवृत्ता तद्वद प्रभो ! ॥ २९ ॥
वदन्ति काशीम्प्रणमन्ति काशीं गच्छन्ति काशीं तव राजधानीम् ।
पूजाजपस्तानपरिक्रमस्तुतिक्रमैर्नरा यान्ति परं सदाशिवम् ॥३०॥
वेदागमाचारपरा नरा ये स्वधर्मनिष्ठाः परमार्थयुक्ताः ।
वेदद्रुहः पापपरापराधसहस्रयुक्ता अपि ते विमुक्ताः ॥ ३१ ॥
भवन्ति काशीस्तवनादिभिर्नरा नारायणा वा भगवन्न विद्महे ॥ ३२ ॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मन् ! वदामि ते तत्त्वमविमुक्तस्य दुर्लभम् ।
यच्छ्रुत्वाऽपि विमुच्यन्ते नराः पातकिनोऽपि हि ॥ ३३ ॥
शृणु सृष्टिक्रमम्विद्वन् ! येन तत्त्वं प्रकाश्यते ।
एकमेवाऽद्वितीयन्तद् ब्रह्म सत्यं सनातनम् ॥ ३४ ॥
ततः पुरुषमायाद्या; पृथिव्यन्ताश्चकाशिरे ।
मायाकार्यस्थिता ये तु त्वदाद्याः स्थावरान्तिकाः ॥ ३५ ॥
मायामया भवन्त्येव चित्तविक्षेपसंयुताः ।
महत्तत्त्वमये पात्रे ब्रह्मशुद्धं सनातनम् ॥ ३६ ॥

## अविमुक्तक्षेत्रस्यवैलक्षण्यवर्णनम्

मायाप्रवेशरहितमविमुक्तन्तदुच्यते ।
अविमुक्तस्वरूपं यन्महत्तत्त्वे व्यवस्थितम् ॥३७॥
तन्मया स्वीकृतं शुद्धं स्ववासाय महामते ! ।
विष्णुना च विशुद्धेनविश्रामार्थं सदाऽनघ ! ॥३८॥
मम लिङ्गानि सर्वाणि ह्यङ्कुराणीव सर्वतः ।
आनन्दादुदितानीति ह्यानन्दवनमुच्यते ॥३९॥
काम्यां तत्पतितम्वस्तु तद्वस्त्वेव भवेद्यथा ।
सुराप्रवाहो गङ्गायां पतितस्तन्मयो भवेत् ॥४०॥
यथा लोहं स्पर्शमणौ पतितं कनकम्भवेत् ।
तथा काश्याम्ब्रह्मरूपं प्राप्नुयाच्छिवरूपताम् ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

एकं निरङ्कुशञ्ज्योतिस्तमशः परमुत्तमम् ।
कथम्परिच्छेदयुतं जातङ्काश्यात्मकं शिवम् ॥४२॥

श्रीभगवानुवाच

यथा तेजो महाभूतरूपम्ब्रह्मन् ! प्रकाशकम् ।
उपाधिरूपमासाद्य सूर्यदीपकयोरपि ॥४३॥
अधिष्ठानानुसारेण प्रकाशङ्कुरुते पुनः ।
हिरण्यगर्भजीवानां यथा भेदः पृथक् पृथक् ॥४४॥
एवम्महन्मयम्पात्रमविमुक्तं सनातनम् ।
तत्र ब्रह्मप्रकाशो हि न सन्देहास्पदो भवेत् ॥४५॥
कथं न तस्य स्मरणाच्छ्रवाज्जपात्तत्पूजनात्तद्गमनात्तथा लयात् ।
लीना भवेयुः परमात्मजीवा यत्कारणं कार्यमपीह तद्धि ॥४६॥
पृथ्वी पृथ्व्यामग्निरग्नौ यथा हि वायुर्वाते तोयतत्त्वं जलेषु ।
एवं शुद्धे कारणे काशिरूपे जीवोपाधिन्दह्यजीवोऽविमुच्येत् ॥४७॥
अथ ब्रह्मन् शृणुष्व च वचो विगतकल्मषम् ।
वेदरक्षाकरं शम्वल्लोकरक्षाकरम्महत् ॥४८॥
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे व्यवस्था क्रियतेऽधुना ।
आद्यारभ्य महाभागा ये स्मरिष्यन्ति काशिकाम् ॥४९॥
तेषाम्पापक्षयो भूयान् मोक्षवीजं भवत्वनु ।
तीर्थयात्रार्थिनो ये हि काश्यामागत्य धार्मिकाः ॥५०॥

अकृत्वा पापनिचयं पुनर्यान्ति बहिर्नराः ।
ते पुनः काशिकाम्प्राप्य जितेन्द्रियमनोगुणाः ॥ ५१ ॥
भवन्ति शुद्धाः शुद्धात्मन्! शुद्धब्रह्मस्वरूपिणः ।
स्मरणं कीर्तनं काश्यां दर्शनम्मोक्षबीजकृत्ः ॥ ५२ ॥
काश्यम्मृतानां हि शिवङ्गतानां मुक्ता न वेति प्रविचारिणो ये ।
ते गृध्रकाकाजगराह्युलूका महामलादाः प्रभवन्ति पापाः ॥ ५३ ॥
काशीम्प्राप्य ह्यन्तकाले स्मरन्ति सर्वे जीवाः शाश्वतम्विष्णुरूपम् ।
विस्मृत्याऽऽद्यं स्थूलसूक्ष्मादि देहं गेहं चात्मा प्राप्यते तैः सुशुद्धैः ॥५४॥
मीमांसन्ते ये मम वासभूमि तेषाम्विचारो हृदयान्न याति ।
सन्देहभाजः खलु दुःखभाजः सन्देहहिनां नाम कुतः सुखं स्यात् ॥ ५५॥

**काश्यां जर्मनिवासिनाम्प्रशस्तिवर्णनम्**

ब्रह्माग्निरूपा काशीयं दहेत्पापानि सर्वशः ।
दृष्टा स्पृष्टा स्मृमा वाऽपि किम्पुनर्धर्मवासिनाम् ॥ ५६ ॥
अहोरात्रं सद्धित्वा भवति सुकृति पापरहित-
स्त्रिरात्रं यस्तिष्ठेत्स खलू सुखमोक्षैकनिलयः ।
निवासं ये कुर्यूविततमधिकारानुगुणितं न ।
ते धर्मात्मानः पुनरपि भवभ्रान्तिषु युजः ॥ ५७ ॥

सूतउवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशो ब्रह्माणं समयम्मनुम् ।
काशीं सम्प्रेषयाभास सन्देहस्याऽपनुत्तये ॥ ५८ ॥
ते तु त्यक्तुं न शक्तास्तां लिङ्गं संस्थाप्य शाम्भवम् ।
पुनर्नेच्छन्ति गमनमाज्ञयाऽपि शिवस्येच्च ॥ ५९ ॥
प्रसङ्गतो ये गमनम्प्रकुर्यर्व्यापारतः प्रेषणतोऽपि केचित् ।
बध्वाऽपि ये काशिकां सम्प्रणीतास्ते ते कृतार्थाः श्रुतिवाद एषः ॥ ६० ॥
ये प्रयच्छन्ति मनुजा जीवादप्यधिकं धनम् ।
जीवकोशः श्लथस्तेषाम्तूण्यराशिः पदे पदे ॥ ६१ ॥
स्नानेन दानेन परिक्रमेण शिवार्चनेनाऽपि सतोऽर्चनेन ।
दिने दिने सा सुकृतेऽस्य बुद्धिर्यया जनः कृतकृत्यः सदा भवेत् ॥ ६२ ॥
मनागपि विचारेण मनसो निग्रहो यदि ।
अविमुक्ते भवेद्येषां ते मुक्ता भवबन्धनात् ॥ ६३ ॥

हरिक्षेत्रमिदम्विद्धि हरक्षेत्रम्विचित्रकृत् ।
भेददृष्ठ्याऽपि सततं सेवितञ्चैक्यकृद्भवेत् ॥ ६४ ॥
वस्तुस्वभावान्नहि तत्र भेदः कृतोऽपि सिध्येदिति निश्चयोऽयम् ।
भेदाद्वृषद्रोह उतात्मवैरं दुःखन्तवङ्कारपरम्परा स्यात् ॥ ६५ ॥
न क्रोधो नच मात्सर्यं न लोभः काशिवासिनाम् ।
परम्पदम्प्रयातानां नाऽवेग रमते मतिः ॥ ६६ ॥

इति श्रीब्रह्मावर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये काश्यां भेददर्शननिन्दावर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

# अथ पञ्चदशोऽध्यायः

## काशीविश्वनाथसन्निधो हरिहरात्मकेऽभेददर्शने सदृष्टान्तप्रस्तावकथनम्

ऋषयऊवाचुः

पुनर्विनोदिनीम्वाणीं वद सुत! महामते!।
त्वं देवदेव! भगवत्स्वरूवम्वर्णयस्व नः ॥१॥
ब्रह्मक्षेत्रस्य सुमहन्माहात्म्यं मानवर्जितम्।
अनायासेन निष्पापास्तरन्ति हि यदाश्रयाः ॥२॥
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥३॥

सूतउवाच

साधु द्विजा महाभागा! जानन्ति जननिष्कृतिम्।
अस्माद् दुःखदसंसारात्तन्निस्तारं कथञ्चन ॥४॥
विनाकाशीम्प्रपश्यामि बाधितार्थंनिषैविणाम्।
शृण्वन्त्वाश्चर्यंकरीङ्काश्याः कथाङ्कथयतो मम ॥५॥
मागधेषु द्विजः कश्चिद् बहुवादनतत्परः।
जेता द्विजानां सर्वेषां द्विजजेतेतिविश्रुतः ॥६॥
विद्यावतो गुरूञ्जित्वा ब्राह्मणानवमन्य च।
जानाति स्वम्पुनः कृत्यं कृतकृत्यमचेतनः ॥७॥
कुतर्कश्छलशब्दैश्च वेदसिद्धान्तनिन्दकः।
स्वयुक्त्या नयति स्मार्तं स्मृतिकर्मं पृथङ्मतिः ॥८॥
सकदाचिद्द्विजवरं जित्वा वादैः पदाहनत्।
निर्विकारो महात्मा च स्वसिद्धान्तपरः सुखी ॥९॥
हतो दैवेन किम्वाऽस्य शुद्ध्येऽहं द्वैततत्परैः।
भयन्द्वितीयाद्भवति तदस्य समुपस्थितम् ॥१०॥
गते तस्मिन्महाभागे द्विजजेता जितम्मया।
जितम्मेने तदारभ्यह्यद्विजन्ति द्विजातयः ॥११॥
कस्मिंश्चित्समये विद्वान् साधितार्थ क्षुधार्दितः।
बुभुजेऽन्नम्वहु तदा विजितेन्द्रियमानसः ॥१२॥

ज्वरार्त्तो व्याकुलतनुः स्मरन्वेदान् ममार च ।
ब्रह्मराक्षसताम्प्राप्तो ब्रह्माभिभवदोषतः ॥१३॥
बिभीतवृक्षोपरिसंस्थितिं सदा चकार विप्रध्रुगितिप्रसिद्धः ।
आहूय विप्रान् मधुरैर्वचोभिः प्रभक्षयत्येव दयावियुक्तः ॥१४॥
ततो द्विजः कश्चिदुपागवोऽचिरात्तेनैव मार्गेण स तन्ददर्श ह ।
त्वं कुत्र गन्ताऽसि कुतः समागतो विद्याऽस्तिकाचित्तव वादशक्तिः ॥१५॥
श्रुत्वेति तस्य तद्वाक्यं पथिकः सन्ददर्श ह ।
राक्षसं शास्त्रसम्पन्नं किमेतदिति चिन्तयन् ॥१६॥
अहम्भो ! भूत ! तीर्थार्थी कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ।
पुरुषोत्तममासाद्य गन्तुं काशीं तदाज्ञया ॥१७॥
प्रवृत्तोहऽङ्कृतार्थःसन् कृतार्थै रेव लभ्यते ।
काशीकाशीश्वरौ देवौ द्रष्टव्यौ पार्वतीशिवौ ॥१८॥
वस्तव्यश्च सुखन्तत्र कृतकृत्येन सर्वदा ।
तीर्थानिकृत्वा काश्यान्तु वसेन्निर्व्याकुलः सदा ॥१९॥
न तु काश्याः प्रगन्तव्यं तीर्थान्यत्र वसन्ति यत् ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य तमुवाच स राक्षसः ॥२०॥
महापराधिनम्पापं ब्रह्मद्रुहमसन्ततम् ।
वञ्चकञ्चात्मपरयोर्मामुद्धर गुरुद्रुहम् ॥२१॥
नय माङ्काशिकाङ्कान्तां यन्नाम्नाऽधंम्विमोचितः ॥२२॥

**द्विजजेतसो ब्रह्मराक्षसत्वप्राप्तिवर्णनम्**

पथिकउवाच

राक्षसन्त्वाङ्कथङ्घोरं नेष्यामि भगवद्गृहम् ।
बिभेमि दृष्ट्वा दूरात्त्वां कथमैक्यं त्वया सह ॥२३॥

राक्षसउवाच

त्वया यदुक्तं वचनन्तेन मन्मानसं सकृत् ।
पश्चात्तापपरम्ब्रह्मन् ! काशीकाशीश्वराविति ॥२४॥

पथिकउवाच

यो हि देवः सकृन्नाम्ना त्वामुद्धरति शङ्करः ।
स न रक्षति मान्त्वत्तो राक्षसाद्घोरदर्शनात् ॥२५॥

आगच्छ यावः काशीम्भोः समानफलदायिनीम् ।
इति प्रचलितौ तौ तु ब्राह्मणब्राह्मराक्षसौ ॥२६॥
गच्छन्मार्गे राक्षसन्तं पप्रच्छ पथिको द्विजः ।
कस्त्वम्पूर्वं राक्षसेन्द्र ! कथमेवं त्वदुद्भवः ॥२७॥
नृणां सप्तपदी मैत्री कथयाऽऽशु ततो मम ॥२८॥

राक्षसउवाच

मगधेषु द्विजोऽहम्वै द्विजजेतेतिविश्रुतः ।
तत्र द्विजानहम्प्राप्ताञ्जित्वागुरुमताडयम् ॥२९॥
कुतर्कैः कृत्रिमैर्विप्र ! स्वयमुत्प्रेक्षितैरहम् ।
साभिमानः सुदुष्टात्मा धनभोगपरायणः ॥३०॥
बहुभोजनकृन्नित्यं कस्मिंश्चिद्दिवसे ज्वरः ।
प्रविष्टस्तु वराकम्मां मरणान्तः सुदारुणः ॥३१॥
प्रत्युत्थितेऽपि मरणे द्विजभङ्गमचिन्तयम् ।
मृत्वा राक्षसताम्प्राप्तो विभीतकवनाश्रयः ॥३२॥
केनाऽपि सुकृतेन त्वां दृष्टवानस्मि सुव्रत ! ।
त्वन्मुखाच्छाम्भवं नाम नाम काश्या अपि श्रुतम् ॥३३॥
काशीविश्वेशनामभ्यां सत्सङ्गेन च तारितः ।
कथन्तत्क्षेत्रमध्ये मां नेताऽसि द्विज ! पापिनम् ॥३४॥

**द्विजजेतसो ब्रह्मराक्षसयोनेमुक्तिवर्णनम्**

पथिकउवाच

एकेन रेणुना काश्याः शुध्यन्ति मलिनो जनाः ।
बहुभीरेणुभिः स्नानं कारितव्योऽसि मेऽनघ ! ॥३५॥
शोणं समुत्तीर्य गतावुभौ तौ ददर्शतुः पाशुपतान्कुतश्चिन् ।
तैः साकमासाद्य दिवो नदीन्तौ ददर्शतुः शङ्कुरराजकेतनम् ॥३६॥
पथिकस्तम्बहिः स्थाप्य विवेशाऽऽनन्दकाननम् ।
तत्र स्नात्वा शिवं दृष्ट्वा यथाशक्ति प्रपूज्य च ॥३७॥
पांशुप्रसृतिमादाय पुनस्तत्सन्निधिङ्गतः ।
स तं दृष्ट्वा जहर्षाऽऽशु तारितोऽस्मि त्वयाऽवदत् ॥३८॥
यथा त्वच्चरणोपान्ते तारितोऽस्मि पुनः पुनः ।
अथ तं राक्षसम्विप्रः स्नापयामास रेणुभिः ॥३९॥

शुद्धम्प्रवेशयामास वाराणस्यां स तापसः ।
तौ स्नात्वा मणिकर्ण्यान्तुदृष्ट्वा देवमुमापतिम् ॥४०॥
कृतार्थौ बसतुस्तत्र काशीशिवपरायणौ ।
राक्षसेन शरीरेण दिव्यन्देहमवाप्तवान् ॥४१॥
काश्यां स्थित्वा पापभीरुर्यतात्मा मिथ्यावादं लोकवादं न कार्षीत् ।
पापाद्भीतः पुण्यवृत्तेन तेन कर्मविघ्नं काशिका नो सहेत ॥४२॥
देवब्राह्मणपूजकः प्रतिदिनं सच्छास्त्रसञ्चिन्तको ।
दैन्याहारविबर्जकः प्रतिदिनं धन्यो धनासञ्चकः ।
वार्ता नैव करोति शम्भुरहितामेकान्तशीलः सदा
तीर्थान्यायतनानि काशिगहने यात्रादिने गच्छति ॥४३॥
अद्वैतपरमानन्दे क्षेत्रे वैश्वेश्वरे परे ।
वसन्नद्वैतबुद्धिः स जातोऽभेदमयो द्विजः ॥४४॥
सच्छास्त्रं सज्जनासङ्गः सद्बुद्धिः सद्वचोऽसकृत् ।
सदाचारः पञ्च युञ्जन् पञ्चत्वंनाऽवसीदति ॥४५॥
इति निश्चित्याऽविमुक्ते शुद्धोऽशुद्धिविवर्जितः ।
अवाप काशीं कालेन निर्वाणजननीं द्विजः ॥४६॥
विद्या विद्योदयान्ता हि न विद्या वादकारिणी ।
जेतुम्परम्पदम्विद्या न विवादाय केवलम् ॥४७॥
आत्मारामैरपि सदा कृतार्थैः शान्तविग्रहैः ।
सेव्यते काशिका देवैः सर्वविघ्नविघातिनी ॥४८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये काशीविश्वनाथमहिमवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

# अथ षोडशोऽध्यायः

काश्यां नित्ययात्राविधानवर्णनम्

ऋषयऊचुः

नित्ययात्राविधानञ्च वक्तुमर्हसि सत्तम ! ।
यथा क्षेत्रकृतम्पापं नित्यमेव प्रणश्यति ॥१॥
अतुला पुण्यवृद्धिश्च जायते येन सुव्रत ! ।
तथा वद वदान्येश ! धर्मशास्त्रविशारद ! ॥२॥

सूतउवाच

इदमेव पुरा पृष्टः पार्वत्या परमेश्वरः ।
यदुवाच महादेवः श्रूयतान्तद्वदामि वः ॥३॥

देव्युवाच

भगवान् ! श्रोतुमिच्छामि जनानां काशिकास्थितिम् ।
यथा निर्विघ्नतां यान्ति दिवसाः साधुसत्कृतः ॥४॥
दुर्लभा मनुजा लोके धर्ममार्गरता नराः ।
ततोऽपि दुर्लभा लोके काश्यां ये धर्मतः स्थिताः ॥५॥

श्रीभगवानुवाच

प्रातः प्रातः समुत्थाय ढुण्ढिराजं नमेत्पुनः ।
भवानीं शङ्करम्पश्चात्कालभैरवमेव च ॥६॥
दण्डपाणि गणेशांश्च केशवादित्यचण्डिकाः ।
ततः शौचादिकङ्कृत्वा दन्तधावनपूर्वकम् ॥७॥
स्नानमुत्तरवाहिन्यां श्रुत्यादिषु यथोदितम् ।
ततः सन्ध्यातर्पणादि विधाय स्वाधिकारतः ॥८॥
विश्वेश्वरं स्मरन्गच्छेत् पूजासाधनसं युतः ॥९॥
आदौ देव्या मण्डपं सम्प्रविश्य तत्र स्थित्वा पूजयेच्छ्रीभवानीम् ।
साङ्गोपाङ्गामागमोक्तैर्विधानैः स्मृत्वा नत्वा प्रार्थयेदन्नदात्रीम् ॥१०॥

## नित्ययात्राविधिवर्णनम्

ततो ढुण्ढिङ्गत्वा मधुरतरनैवेद्यविभवैरुपास्य स्मृत्वातम्त्रिविधभयविघ्नाधिशमनम् ।
अयन्नित्यः प्रोक्तो विधिरतुलसौख्यैकसुखद-
श्चतुर्थ्यां नो यस्य प्रभवति स किं सौख्यनिलयः ॥११॥
गच्छेत्ततो विश्वपतिम्महामतिः प्रदक्षिणीकृत्य सुतारतीर्थम् ।
स्नात्वा ततो दण्डपतिम्प्रणम्य सम्पूज्य निर्वाणगतञ्च पञ्चकम् ॥१२॥
ततो विश्वेश्वरं नत्वा स्नापयेत्पञ्चकैः शुभैः ।
स्नापयेच्च ततो गाङ्गैस्तोयै रुद्रपुरस्कृतैः ॥१३॥
गन्धपुष्पप्रधूपैश्च दीपैर्नैवेद्यकैरपि ।
नानाविधैश्चोपचारैर्यथाविभवसत्कृतैः ॥१४॥
पूजयित्वा महादेवं काशीनाथं जगद्गुरुम् ।
प्रदक्षिणत्रयङ्कृत्वा प्रणमेद्दशपञ्चधा ॥१५॥
जय विशेश्वर ! विश्वाधार ! विश्वरूप विष्णुप्रिय वामदेव !
महादेव ! देवाधिदेव ! विश्वरूप ! दीनानाथैकशरणद
शरणागत वज्रपञ्जर साधिताखिलकार्य ! कार्यातीत !
कारणकारण ! कामादितृणदहन ! दानवान्तकरदारिताऽखिल-
दारिद्रय ! जितेन्द्रियैकगम्य ! काशीस्थावरजङ्गम-
निर्वाणदायक ! त्रिदशानां नायक ! काशिकाप्रिय ! नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।
इत्यादिनामवहुलैः स्तोत्रैः स्तुत्वा पुनर्नमेत् ॥१६॥
निर्वाणमण्डले स्थित्वा विष्णुं नत्वा पुनः पुनः ।
देवस्य दक्षिणे भागे साक्षान्मुक्तिः करे स्थिता ॥१७॥
यदुच्यते तत्र शुभाशुभम्वा नरैः समस्तार्त्तिहरे सुमण्डपे ।
तदेव वृद्धिं सुतराम्प्रयाति तस्मान्न तत्रातिवदेद्विपश्चित् ॥१८॥
ये स्मरन्ति महाविष्णुं ये स्मरन्ति सदाशिवम् ।
त एव तत्राऽधिकृतान ये विकृतवादिनः ॥१९॥
अन्यत्राऽपि वदन्ते किञ्जनाः सुकृतकारिणः ।
किम्पुनः काशिकामध्ये अन्तर्गेहे ततोऽपि हि ॥२०॥
ततोऽपि मण्डपे देवि ! निर्वाणपदसंज्ञके ।
इति देवं समभ्यर्च्य गच्छेद्यत्र सुविश्रमेत् ॥२१॥
विश्रामः सत्सु परमो विश्रामः शिवकीर्त्तनम् ।
विश्रामो लोभहननं विश्रामः पार्थसारथिः ॥२२॥

## काश्यामविमुक्तिमहिमवर्णनम्

संसारदावदहने पतितानां स्वकर्मभिः ।
काश्येव शरणं नाऽन्यन्मुक्तानामपि पार्वति ! ॥२३॥
काश्यान्तिष्ठामि सततं विश्वेशम्पूजयाम्यहम् ।
दिशामि तारकं नित्यमविमुक्तप्रसादतः ॥२४॥
अविमुक्तेश्वरम्पूज्य ब्रह्मनारायणादिभिः ।
फलम्प्राप्तन्तदेवाऽऽद्यं सर्वसामर्थ्यलक्षणम् ॥२५॥
न विमुक्तम्मया देवि ! विष्णुना ब्रह्मणा तथा ।
इन्द्रचन्द्रादिभिर्देवैः ऋषिभिर्मुनिभिर्नृभिः ॥२६॥
राक्षसासुरनागैश्च गणगन्धर्वकिन्नरैः ।
ये चेतनास्तैर्न त्यक्तमविमुक्तमवाप्य च ॥२७॥
विचार्यते तैः सुविविक्तमत्र शास्त्रन्तथाजीवनमत्र लोके ।
तद्गर्भवासादिसुखञ्च नश्वरं विनश्वरन्देहयुगञ्च सत्वरम् ॥२८॥
ये न त्यजन्ति मुनिवासनिवासभूतां वाराणसीम्विविधतीर्थनिषेवितान्ताम् ।
आनन्दसुन्दरविवेकिनिषेविताञ्च तापत्रयार्तिपरिभूत निषेविताञ्च ॥२९॥
न शास्त्रतो नाऽपि गुरूपदेशतो न सन्मुखाच्चाऽपि भवाब्धिमज्जनात् ।
ज्ञात्वाऽविमुक्ते प्रवसन्त्यथाऽपियेतेऽपिस्फुटंब्रह्मसुखस्य ये तेऽपि भाजनम् ॥३०॥
ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽपि देवेशि योऽमृतम्परिसेवते ।
तस्य तत्कुरुते कार्यमविमुक्तन्तथानृणाम् ॥३१॥
मा जानीह्यर्थवादन्त्वमात्मतत्त्वमिगिनिर्णये ।
आत्मा काशी तथाऽहन्त्वं तथा देवो जनार्दनः ॥३२॥
अनावृतं ज्ञानमेतदावृतन्त्वन्यदुच्यते ।
अनात्मनि रतिर्नैवं भवेज्जीवे यथा मम ॥३३॥
अतो जीवांस्तारयति ह्यविमुक्तेश्वरः शिवः ।
अविमुक्तः शिवः सोऽहमविमुक्ता त्वम्बिके ! ॥३४॥
अविमुक्तन्तया क्षेत्रं क्षेत्रसन्न्यासकृत्तथा ।
अविमुक्ताः स्थावराश्च तथाऽन्ये तीर्थवासिनः ॥३५॥
परान्नम्परवादाश्च परदारास्तथा धनम् ।
अदानाचारविद्वेषाभक्ष्यालस्यानुदैन्यता ॥३६॥
दशदोषा महादेवि ! वर्ज्याः काशिनिवासिभिः ॥३७॥

क्षेत्रे परानन्दमये न कस्यचिद्दुःखङ्कदाचिद्भवतीति सत्यम् ।
विक्षिप्तचित्ताद्विपयातुराज्जनात् स्वयङ्कृतादुःखगणादृते परम् ॥३८॥
चतुर्भुजं शङ्खगदाब्जहस्तं दृष्ट्वा हृषीकेशमनन्तमाद्यम् ।
व्यग्रः प्रपश्येत्खलु राक्षसम्पुरः प्रपश्यमानस्विपचित्तवृत्त्या ॥३९॥
यच्चिन्त्यते येन तथैव तस्य मनः प्रपश्यत्यथ तन्मयन्तत् ।
अतो विहायाऽऽशु समस्तचिन्तितं मामीश्वरं चिन्तयतां न दुःखम् ॥४०॥

## काशिवासिनासाधनविधिवर्णनम्

देव्युवाच

यात्राविधानं स्थितिकारणम्परं श्रुतस्मयाशङ्कर ! मुक्तिसाधनम् ।
अतःपरम्मे तव शर्मभूमिम्वदस्व काश्यां मम दीनबन्धो ! ॥४१॥
किमाश्चर्यं ब्रह्मंस्त्वमपि गुरुगुरौ प्रीतिरधिका भवेल्लोके यस्याऽप्यतुलसुखसारं स लभते अहन्त्वामाराध्यप्रविलसदुमाकान्तचरणं प्रपश्ये सर्वात्मन् ! प्रकटपरमानन्दसदनम् ॥४२॥
ज्ञानम्महामोहविमिश्रितेऽस्मिन् संसारमार्गे प्रबलम्भवेत्किम् ।
संसारमार्गादपसृत्य सद्गुरुं त्वाम्प्राप्येच्छङ्कर मार्गमार्गम् ॥४३॥
गुरुर्गरीयान्परमोपदेशतो यस्तारयेदाश्रितमन्त्यवासिनम् ।
शिष्ये गुरुत्वं यदि वै जगद्गुरुं संस्मृत्य वर्तेत्समियाज्जगद्गुरुम् ॥४४॥
काश्यां स्थितानान्देवेश ! साधनानि वदस्व भोः ।
निरङ्कुशानाम्पापानां न सुखाय कदाचन ॥४५॥

महादेवउवाच

योगेश्वराणां धनतोऽविरक्त्या गुरूपसत्त्या परमार्थदृष्ट्या ।
असत्कथासज्जनवर्जनाज्जपादास्तिक्यबुद्ध्या शिवनामकीर्त्तनात् ॥४६॥
आहारशुद्ध्या मृदुभाषणेन शान्त्यासदाचार जपेन दानैः ।
कामादिरागादिविवर्जनेन क्रोधादिमात्सर्यमदादिवर्जनैः ॥४७॥
मानापमानादिविचारवर्जनैर्जनः परन्देवमुमासहायम् ।
पश्यत्यथोऽनुग्रहमेति शङ्करात् काश्यां सुखम्वा समवाप्नुयाद्वरम् ॥४८॥
एतैर्विशिष्टैः खलु साधनैर्युता विश्वेश्वरम्प्राप्नुवते महान्तः ।
ये पुत्रदारासगृहादिसक्ताः पश्यन्ति नैते पुरतः प्रकाशम् ॥४९॥
पश्यन्ति ये केवलया स्वसंस्थया गुरुं गुरूणामधिपं शिवङ्गताः ।
कन्दाष्टिमूलफलभक्ष्यपयोव्रतैर्हि कालं नयन्ति सुधियो मदनुव्रता ये ॥५०॥

ते शुद्धबुद्धिहृदयाः परमम्पवित्रं ज्योतिर्भवन्ति परमं न तु लोलुपाद्याः ।
अभक्तिभाजो नच पुण्यभाजोऽजितेन्द्रिया नैव तपो न योगाः ॥५१॥

न धर्मनिष्ठा नच धर्मशान्तिर्येषान्तु ये दैन्यभाजो मनुष्याः ।
अहर्निशं वित्तपराः प्रतारका भवन्ति काश्यां यदि पापनिष्ठाः ॥५२॥

सुसङ्गहानैः खलु पापसङ्गैर्भवन्ति पैशाच्यसुदुःखभाजः ॥५३॥

त्रिविधोऽपि कृतो धर्मो महापातकनाशनः ।
अधर्मशाखा बहुला धर्मशाखास्तवथै च ॥५४॥

वृक्षानुरूपं हि फलं लौकिके वैदिके भवेत् ।
अनन्तजन्मगहने संसारे दुःखसागरे ॥५५॥

अनुभूयाऽपि दुःखानि पुनः पाये प्रवर्त्तयेत् ।
जनः कथं न दुःखी स्यात् पिशाचपदभोगभाक् ॥५६॥

क्षणे क्षणे महादेवि ! दुष्कृतं क्रियते तु यत् ।
परिपाकोऽशुभस्तस्य वर्षाणामयुतत्रयम् ॥५७॥

**काश्यां पापनिषेधवर्णनम्**

यः काश्यां कुरुते पापं जनो मोहमदान्वितः ।
आवयोः कालराजस्य दण्डपाणेर्गणेशितुः ॥५८॥

अपराधाद् दुराचारः कथं सिद्धिमवाप्नुयात् ।
मयाऽपि यत्र सततं कालराजाद्विविभ्यता ॥५९॥

स्थीयते सावधानेन काश्यामानन्दभोगिना ।
स्थानानुरूपा वृत्तिर्हि पुरुषस्य विराजते ॥६०॥

न ह्यग्निहोत्रशालायां क्रियते मलमोचनम् ।
अतो रहस्ये मद्गेहे ह्यविमुक्ते मुमुक्षुभिः ॥६१॥

स्थातव्यम्परया भक्त्या जितेन्द्रियमनोगुणैः ॥६२॥

भयाच्च बुद्ध्या बलधाष्टर्यं भावात्पुनः पुनः स्वादपरो विचार्यं ।
करोति पापं नहि तस्य शान्तिर्दुःखार्णवाद्दारुणताडनेभ्यः ॥६३॥

वेदाज्ञया निश्चितबुद्धयो ये मोक्षे यथा विश्वसिता भवन्ति ।
तेनैव वेदेन निवारिताः कथं पापान्निवृत्ता न भवन्त्यतद्विदः ॥६४॥

**काशीवाससाधनविधिवर्णनम्**

काश्यां यथा पापकृताम्महाभयं काश्यां तथा पुण्यकृताम्महत्सुखम् ।
अतः सुखार्थम्प्रयतेत धर्मतो जीवञ्जनो याति मृतः परम्पदम् ॥६५॥

कृते काश्यां ज्ञाननिष्ठा वसन्ति त्रेतायान्ते यज्ञभाजः प्रधानाः ।
पूजादानं द्वापरे तु प्रकुर्युस्तिष्ये दानं केवलम्मोक्षहेतुः ॥६६॥

यथाशक्त्या दानमत्र प्रयुक्तं सिद्धिङ् कुर्यान्मनसः शुद्धिरूपाम् ।
प्रतिग्रहम्पापहेतुम्वदन्ति वेदादानं शुद्धिहेतुः कृतज्ञाः ॥६७॥
अतो न गृह्णन्ति महानुभावा धर्मार्थमप्यात्मसुखार्थमेप ।
सीदत्कुटुम्बैश्चरितव्रतैश्च ह्याहारमात्रम्प्रतिगृह्यतेऽत्र ॥६८॥
वस्त्राद्यलङ्कारधनादिसङ्ग्रहात् क्षुभ्यन्ति क्रुध्यन्ति रमन्ति पापैः ।
ततोऽधिकं धनधान्यादि किञ्चिन्न ग्राह्यमत्र प्रतिपत्तिहेतोः ॥६९॥
प्रतिग्रहोऽन्यत्रकृतो न शुद्ध्यै पापाय काश्याम्प्रभवेत्कथञ्चन ।
विप्रः पतेच्चेदधिकम्विगृह्णन्किङ् क्षत्रियाद्याः परवित्तलोलुपाः ॥७०॥
अतस्त्वधर्मान्न परप्रतिग्रहाज्जीवेत काश्यां सकलो मुमुक्षुः ॥७१॥

शिवउवाच

इति सम्यक् समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघे ! ।
काशीवासविधौ देवि ! किम्पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥७२॥

सूतउवाच

इति (देवादयः) श्रुत्वा काशीवासविधौ शिवा ।
सन्तोषम्परमम्प्राप ननाम च शिवम्मुहुः ॥७३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्यव्याख्याने काशीवासिजन-
कृत्यसाधनविधिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

# अथ सप्तदशोऽध्यायः

## काश्या लिङ्गनामधेयत्वे विचारवर्णनम् ।

ऋषयऊचुः

अखण्डं लिङ्गमेकाङ्कि काशीति परिगीयते ।
पञ्चक्रोशात्मकं सूत ! स्त्रीनाम्ना प्रथितिङ्गतम् ॥१॥
तद्वदस्वाऽऽनुपूर्व्येण शिवयोश्चेष्टितम्महत् ।
त्वत्प्रसादान्महाभाग ! श्रुतार्था वयमास्महे ॥२॥

सूतउवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे महदद्भुतमादरात् ।
शिवयोरेवसम्वादपूर्वकङ्कथयाम्यहम् ॥३॥
हरिकेशवने गौरी रुद्रस्याऽङ्कगता सती ।
पप्रच्छ ऋषिभिः पृष्टं यदेव सुमहात्मभिः ॥४॥

देव्युवाच

भगवन्देवदेवेश ! प्रपन्नार्तिहराव्यय ! ।
लिङ्गस्य नाम काशीति कथञ्जातं दयानिधे ॥५॥
पञ्चक्रोशात्मकस्याऽस्य आनन्दसदनस्य हि ।
काशीकथाऽमृतरसं पिबताङ्किमलम्भवेत् ॥६॥

श्रीभगवानुवाच

शिवक्त्यात्मकं लिङ्गं श्रुतिभिः परिपठ्यते ।
योनिः शक्तिः शिवो लिङ्गं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥७॥
स्वरूपम्प्रथिम्वेदे पुराणादिषु पार्वति ! ।
शिवः परात्मा ब्रह्मेति शिवेति हरिरित्यपि ॥८॥
परब्रह्मेति च तथा गीयते बहुधर्षिभिः ।
शक्तिर्मायेत्यविद्येति विद्येति बहुधोच्यते ॥९॥
उमालक्ष्म्यादिभेदेन ब्रह्मरूपा सनातनी ।
सदाशिवस्या या काचिच्छक्तिश्चैतन्यरूपिणी ॥१०॥

## काश्यालिङ्गभिधेयत्वेहेतुवर्णनम्

सैव काशीतिसम्प्रोक्ता लिङ्गरूपाऽनपायिनी ।
केचित्काशीम्वदन्त्येतामविमुक्तं तथाऽपरे ॥११॥
पञ्चक्रोशात्मकं लिङ्गं रुद्रावासमथाऽपरे ।
ब्रह्मावासं विष्णुवासं वाराणसीमथाऽपरे ॥१२॥
इत्यादिनामभिः प्रोक्तमेकमेव सनातनम् ।
लिङ्गं सदाशिवंशुद्धं ब्रह्माख्यम्पूर्णचिद्घनम् ॥१३॥
कदाचित्लिङ्गरूपेण शिवेन परमात्मना ।
शक्तिः पृथक्कृता शान्ता काशीति प्रथितिङ्गता ॥१४॥
अधिष्ठात्री देवता त्वमितिक्षेत्रस्वरूपिर्णी ।
भवत्वं सर्वं भक्तानां महामोक्षप्रदायिनी ॥१५॥
आरभ्य तद्दिनन्देवी गङ्गाकेशवसन्निधौ ।
अविमुक्तेश्वरन्ध्यायन्पश्चिमाभिमुखी स्थिता ॥१६॥
पूजिता सा प्रयत्नेन काशीवासफलप्रदा ।
द्वादश्याम्प्रातरेवाद्यां काशी यः पूजयेत्सुधीः ॥१७॥
( तस्य पापे न रमते बुद्धिर्धर्मे प्रवर्तते ।
चतुर्विधाश्च ये जीवा येच देवादयः ) परे ॥१८॥
ते सर्वे मुक्तिमायान्ति काश्यां स्थावरजङ्गमाः ॥१९॥

देव्युवाच

मूर्त्तिमत्याः काशिकायाः कोऽधिकारो महेश्वर ! ।
क्षेत्रमूर्त्तिप्रभेदेन स्थितायाः किम्प्रयोजनम् ॥२०॥

## क्षेत्रकृतपापानां मुक्तिसाधनवर्णनम्

श्रीभगवानुवाच

क्षेत्रे ऋणत्रयात्काशी मोचयेत्सर्वदेहिनः ।
आधारभूता जीवानामाद्या प्रकृतिरव्यया ॥२१॥
मूर्त्तिरूपा चित्स्वरूपाऽप्यविमुक्तेशसेवया ।
पूर्णरूपं(पा) स्वमाहात्म्यं स्वयमेव प्रदर्शयेत् ॥२२॥
एकदा देवदेवेशि ! कलौ धर्मविवर्जिते ।
प्राणिनः पापपरमा धर्मवार्ताविवर्जिताः ॥२३॥

जाता विषाद्दुःखार्त्तिभयशोकतृषावृताः ।
कामिनः क्रोधलोभादिमदमात्सर्यहिंसया ॥२४॥
समेताः परदारैश्च रमन्ते धनतत्पराः ।
उपपातकसंयुक्ताः पातकैश्च समन्विताः ॥२५॥
जातिभ्रष्टाः कर्मनष्टाः पाखण्डाः पतिताः शठाः ।
लोलुपा व्यङ्कुशाः काश्यां पापकर्तार एव च ॥२६॥
क्षेत्रेऽपि ये पापकृतो महान्तो बहिश्च ये पापकराः सदा नराः ।
मुक्ता भवन्त्येव झटित्यनारतं जावा महाज्ञानमयेऽविमुक्तके ॥२७॥
काश्यां पापं ये प्रकुर्वन्ति नित्यं नानाशास्त्रैर्वेदसङ्घैर्निषिद्धम् ।
तेऽपि ब्रह्मा प्राप्नुवन्त्येव शीघ्रं ज्ञात्वा देवा विश्वनाथन्तमूचुः ॥२८॥

देवाऊचुः

इयं काशी देवी सकलपुरुषार्थैकजननी मुमुक्षून्या
सर्वाञ्जितकरणदेहान्सुमनसः ।
महापापान्क्रूरान्गुरुनिगमदेवद्विजगतां द्रुहस्तानप्याद्या-
गमयति पदं स्वात्मसदनम् ॥२९॥
वेदशास्त्रविहितः शुभप्रदः प्राणिनां हितकरस्सनातनः ।
मार्ग एष सुधियां सुखप्रदो याति काशिदयया तवाऽऽज्ञया ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

नियमः क्रियतान्देव ! ह्य् भयत्राऽपि सम्मतः ।
वेदमार्गस्य रक्षा स्याद्यया काश्यां शुभा गतिः ॥३१॥

श्रीमहादेवउवाच

कृतोऽपि नियमः पूर्वं मनवे च यमाय च ।
न तिष्ठति तदा देवाः प्रबलेयन्तु काशिका ॥३२॥
ममापीच्छा सुमहती वर्तते देवसत्तमाः ! ।
काश्याङ्कृतानाम्पापानां प्रायश्चित्तविधिर्न हि ॥३३॥
तन्मयो भवति मानवः परं यत्करोति सुकृतं च दुष्कृतम् ।
तोयबिन्दुजलमद्यमध्यतस्तद्यथा भवति लोकवैदिके ॥३४॥

सूतउवाच

इत्युक्त्वा शङ्करो देवान् काशीमाहात्म्यमत्प्रभुः ।
प्रतीत्यर्थन्तु लोकानामुवाच कथयामि तत् ॥३५॥

## काशीवासिनः शिवस्वरूपः प्राप्तिवर्णनम्

श्रीभगवानुवाच

एहि काशि ! महाभागे सर्वलोकहितप्रदे ! ।
महालिङ्गैकनिलये ! योनिरूपे ! परात्मिके ! ॥३६॥

सूतउवाच

इत्याहूता काशिका शङ्करेण शुद्धाम्मूर्तिम्विभ्रती शुभ्रवस्त्रा ।
आगत्याऽथो देवमभ्यर्च्य किञ्चिल्लज्जावक्त्रा पार्वतीशं ननाम ॥३७॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि देवि ! म्लानवक्त्रा दीना लज्जासमन्विता ।
निरुत्साहा निरानन्दा महानन्दप्रदायिनी ॥३८॥

श्रीकाश्युवाच

मम प्रतिज्ञा देवेश ! गन्तुमिच्छति सत्त्वरम् ।
तेनाऽहं दुःखिता शम्भो ! म्लाना दीना सलज्जिताः ॥३९॥

श्रीभगवानुवाच

का ते प्रतिज्ञा चिच्छक्ते ! केन वा प्रविहिंसिता ।
कथम्वा तिष्ठति वद क्रियते तन्मयाऽधुना ॥४०॥

श्रीकाश्युवाच

प्रतिज्ञा मम देवेश ! स्थावराजङ्गमा जनाः ।
तारणीयाः सर्वतो मे सा गच्छति कलौ शुभा ॥४१॥
तत्राऽपि मनुजा देव ! धर्माधर्माधिकारिणः ।
तथाऽन्ये विविधा जीवाः पूर्वकर्मोपजीविनः ॥४२॥
परदाररताः केचित् केचिद्द्रव्यपरायणाः ।
परापवादपैशून्यररद्रोहरताः खलाः ॥४३॥
केचिद्गोवधकर्तारः केचिन्मद्यपरायणाः ।
केचित्पाखण्डकुशला वञ्चकाः सञ्चकाः परे ॥४४॥
तीर्थद्रोहकरा लिङ्गविष्णुब्राह्मणविद्गवाम् ।
द्रोहिणो निवसन्त्येव द्वापरान्ते कलौ तथा ॥४५॥
अन्यान्यपि च पापानि बहूनि सुमहान्त्यपि ।
कुर्वन्त्येव नराः सर्वे मय्येव च विशेषतः ॥४६॥
अद्य यावत्तारितास्ते प्रतिज्ञारक्षणाय मे ।
अतः परं त्वच्छरणं गताऽस्मि शिव ! सुव्रत ! ॥४७॥

त्वया देवैश्च ऋषिभिः स्थीयते सावधानतः ।
उच्छृङ्खला मनुष्याणां दहन्त्यपकृतैरथैः ॥४८॥
मेरुमन्दरतुल्यानि पापानि विविधानि च ।
गतानि मद्दर्शनतः स्थूलसूक्ष्मविभागशः ॥४०॥
मोक्षं यस्तु प्रयच्छेत भोगं यस्तु प्रयच्छति ।
जीवनमुक्तिपदश्चाऽत्र स किं द्रोह्यो महात्मभिः ॥५०॥
पठन्ति शृण्वन्ति वदन्ति धर्मं तथाऽपि पापं न परित्यजन्ति ।
अन्ये वराकाः खलु पापरूपाः कथम्विशुद्धाः पदमाप्नुवन्ति ॥५१॥
तवाऽग्रे देवदेवेश ! स्वाधिकारणमद्य मे ।
निरूपितम्प्रतिज्ञा मे यथा तिष्ठति तत्कुरु ॥५२॥

श्रीभगवानुवाच

प्रतिज्ञा तव चिच्छक्ते ! देवैः सस्थापिताऽधुना ।
वेदमार्गश्च सुभगे ! तवाऽऽधिदहनः कृतः ॥५३॥

श्रीकाश्युवाच

कथम्प्रतिज्ञा मे देवैस्त्वया च प्रतिरक्षिता ।
कृतः कथम्वेदमार्गः सफलः साधिताखिल ! ॥५४॥

## अविमुक्तस्य क्षेत्रस्य वैलक्षण्यवर्णनम्

श्रीभगवानुवाच

यत्त्वया प्रार्थितङ्काशि ! तद्देवैर्ऋषिभिः सह ।
प्रार्थितं धर्मनिष्ठैश्च मनुष्यैः शिष्टसम्मतैः ॥५५॥
पश्य वेदव्यतिकरं धर्मः सर्वैर्निराकृतः ।
ऋणशुद्धिर्नान्तशुद्धिर्योनिशुद्धिर्न शुद्धवाक् ॥५६॥
जनानां दृश्यते काचिच्छुद्धिर्वेदविधिस्थिता ।
एषा नियतिरस्माभिः स्थापिताऽद्यदिनावधि ॥५७॥
तान्निशामय धर्मज्ञे धर्ममार्गप्रवर्त्तके ।
पूर्वजन्मकृतैः पापैर्महापातकसंयुतैः ॥५८॥
मुच्यते काशिमरणाज्जनो बहिरुपार्जितैः ।
बहिःकृतानाम्पापानामिदमेव महत्तरम् ॥५९॥
प्रायश्चित्तं काशिकायां मरणम्वा स एव च ।
महात्मभिः काशिकामैर्देवर्षिमनुजाधिपैः ॥६०॥
त्वया मया च देवैश्च कृतन्तप इदङ्किल ॥६१॥

काश्यां स्थित्वा पातकं ये प्रकुर्युस्तेषाम्पापं वृद्धिमायाति नित्यम् ।
ये वै पुण्यं साधु कुर्वन्ति नित्यं तेषाम्पुण्यं वर्धते ज्ञानकारि ॥६२॥
पुण्यङ्कृत्वा काशिके काशिकान्त्वां प्राप्ताः प्राप्तास्ते तु तद्वस्तु नित्यम् ।
पापङ्कृत्वा क्षेत्रमध्ये मृता ये तेषाम्मुक्तिर्यातनान्ते भवेद्धि ॥६३॥
धर्मः काश्यां शुद्धिहेतुः प्रदिष्टः पापम्पुनर्मलदुःखाधिमूलम् ।
तस्मात्प्रतिज्ञा तव सिद्धरूपा मुक्तिर्भवत्येव मलावसाने ॥६४॥
यथा सुलोहस्य सुदर्पणश्चिरन्त्वसंस्कृतो वद्धमलो न शुध्यति ।
तथा मनुष्यस्तु सकृत्कृतन्त्वघं न याति नाशङ्खलु काशिवासिनाम् ॥६५॥
यद्यत्सुखार्थम्वितनोति काश्यां तेनाऽस्य दुःखं दृढतामुपैति ।
यद्दुःखमङ्गीकृतसिन्द्रियार्थसङ्कोचतस्तेन वृषे भवेन्मतिः ॥६६॥
अतो महान्तः सुखलेशहेतोर्महत्सुखङ्काशिकङ्किन्त्यजन्ति ।
ये विद्यमानेन्द्रियभोगसाधमं त्यजन्ति गृह्णन्ति सदाऽविमुक्तम् ॥६७॥
अहोऽतिधन्या जनताविमुक्तये भजत्यथो विश्वपति सदाष्ठम् ।
भजन्ति ये देहगृहेन्द्रियार्थमत्पायमल्पम्परमल्पबुद्ध्या ॥६८॥
ते पद्वदार्त्ताः सुखमोक्षहीना भवन्ति दुःखार्णवमात्महीनाः ॥६९॥
कामक्रोधपरायणाः प्रतिदिनं लोभै कनिष्ठाश्च ये ।
ह्राहाकारविकारयुक्तमनसो दृष्ट्वा कलिर्हृष्यति ।
ये तु प्रत्यहमर्चयन्ति विभवैः श्रीविश्वनाथम्पतिम् ।
कालः कालमलः कलिस्तुविशदान्नान्वेपते ताषुनः ॥७०॥

ऋषयऊचुः

काश्यांङ्कलेः प्रवेशो न भवत्येतच्छ्रुतस्मुहुः ।
अविमुक्तस्थिताञ्जन्तून् वाधते स कलिः कथम् ॥७१॥

**काशीवासेनकलिप्रभावराहित्यवर्णनम्**

सूतउवाच

साक्षात्कलेः प्रवेशोऽत्र विद्यते न कदाचन ।
वासना पाणिनाम्पूर्वा विशत्येव तु तैस्सह ॥७२॥
शुभा मनःप्रवृत्तिस्तु सुखमित्याहुरादरात् ।
अशुभा मनसो वृत्तिः कलिः साधुविगर्हितः ॥७३॥
पीड़येन्न जनानत्र कलिर्विशति मूर्त्तिमान् ।
तस्य तस्याऽशुभा बुद्धिः कलिरित्युच्यते नृधिः ॥७४॥

युगानि मृत्युः कालश्च यमो दूताः सुदारुणाः ।
किश्वेशन्द्रष्टुमायान्ति न तु विघ्नं प्रकुर्वते ॥७५॥
एतेषां शुभदान्यत्र सन्ति लिङ्गानि सर्वतः ।
तत्तद्युगकृतैर्धर्मैर्मुच्यते सकृदर्चितैः ॥७६॥
कलिकालेश्वरन्दृष्ट्वा चन्द्रेश्वरसमीपतः ।
कलिदोषैर्नरो जातु नाऽनुयुज्येत कर्हिचित् ॥७७॥
बहिः कलिर्वासकृतः सम्भ्रमोद्भ्रमनोऽपि हि ।
उपसर्गसमानोऽयं स हि काश्यां सुदुःखभूः ॥७८॥
पूर्वजन्मसहस्त्रैर्यो ह्यनुभूतः कलिर्बहिः ।
तद्वासया हृद्गताऽत्र कथं याति महर्षयः ॥७९॥
दृश्यन्ते चाऽत्र पापानि लोकाः सम्यक्प्रकुर्वते ।
कलहं मद्यमांसानि भक्षयन्ते नराधमाः ॥८०॥
परदारपरद्रव्य परद्रोहपरायणाः ।
भवन्ति बहवः काश्यां महापातककारिणः ॥८१॥
ते कथं यातनामध्यान्निस्तीर्णाः स्युः प्रमादिनः ।
कालराजभयङ्काश्यां पापिनां तु बहिः कलिः ॥८२॥
क्षेत्रेऽविमुक्ते ह्यविमुक्तमीश्वरं भजन्ति ये संस्थितमात्मजीवनम् ।
ते ते विमुक्ताः परमार्थयुक्ताः परस्य तत्त्वस्य पदम्भवन्ति ॥८३॥
वाराणसीम्प्राप्य सुदुर्लभां सुरैरपीष्टदेवं जगतः पितामहम् ।
नित्यन्न पश्यन्ति सुदुर्धियो नरा व्यग्राः कलिग्रस्तधियो भवन्ति ॥८४॥
विश्वेश्वराराधनतत्पराणां विश्वेश्वरस्तत्परतामुपैति ।
यो विश्वया सार्द्धमिहाऽप्यमुत्र कृतार्थभावन्नयते कृतार्थान् ॥८५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्यव्याख्याने काशीविश्वेश्वर-
विषयप्रतिपादनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

# अथाष्टादशोऽध्यायः

**पापीभारम्वोढुमसमर्थायाः काश्याभगवता सह सम्वादवर्णनम ।**

ऋषयऊचुः

भगवद्वाक्यमाकर्ण्यं काशिका तापनाशिका ।
किञ्चिमुक्तवती देवं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ १ ॥

सूतउवाच

इति श्रुत्वा देवमुखात् पुनः काशी व्यजिज्ञपत् ।
तच्छ्रूयताम्महाभागाः ! परङ्कौतूहलं हि तत् ॥ २ ॥

काश्युवाच

पापिनाङ्गुरुभारेण पीडिताऽस्मि जगद्गुरो ! ।
क्षेत्रे पापकृताम्भारं सोढुं शक्ता न शङ्कर ! ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच

पापिनान्दुर्ल्लभो वासः सर्वदाऽऽनन्ददायिनी ! ।
मरणन्दुर्लभन्तेषां त्वयि मृत्वाऽपि यातनाः ॥ ४ ॥
प्राप्नुवन्त्येत्र ते पापाः कालराजेन वै कृताः ॥ ५ ॥
कलौ न काशीवसतिः स्थिरा भवेत् पापात्मनां दण्डपाणिप्रभावात् ।
ममाऽऽज्ञया दण्डनाथः शुभात्मा ह्युद्वासयिष्यत्यथ पापकर्तृन् ॥ ६ ॥
वासङ्काश्यां दुर्लभम्प्राप्य मूढा दुर्व्यापारान् कुर्वते साधुनिन्द्यान् ।
तैस्तैर्व्यग्रास्त्वान्न जानन्ति माञ्च वित्तग्रहग्रस्तचित्ताः पतन्ति ॥ ७ ॥
तीव्रैर्व्रतैर्दानतपोभिरुग्रैर्यज्ञैः समस्तैर्मम भक्तियोगैः ।
आराध्यमामात्मतया परेशं सम्प्राप्नुवन्ते मम काशिवासम् ॥ ८ ॥
निस्तीर्णास्ते सर्वधर्मैः कृतार्थाः काशीम्प्राप्य स्वानुभूति लभन्ते ।
कुर्वन्नित्थं पुण्यसारं समन्ताद्भूयः काश्यामपापकृद्दुःखभाक्स्यात् ॥ ९ ॥
भवन्ति शान्ता ननु चित्तवृत्तयः श्रद्धापराणान्तु सुखम्मनोरमम् ।
तस्मादसत्सङ्गविवर्जनैः परं स्थातव्यमानन्दवने बलीयसा ॥ १० ॥

असत्समागमः काशी पापादपि सुदारुणः ।
पापम्भोगात्प्रणश्येत पापाः पापविवर्धनाः ॥ ११ ॥

श्रीकाश्युवाच

के तेऽसन्तो महादेव ! तवाऽनुग्रहघातकाः ।
काशीम्प्राप्याऽप्यसद्वृत्ता जायन्ते यत्समागमात् ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच

गृहेषु दारेषु धनेषु सक्ताः पुत्रेषु धर्मेषु परम्विरक्ताः
दुर्भोगदौर्भाग्यजनेषु रक्ता अवैदिकेष्वेव नितान्तभक्ताः ।
सङ्गः सदा स्याद्यदि तेषु काशी किं किन्न कुर्वन्ति नराधमा भुवि ॥ १३ ॥
अतो सताम्वर्जनमात्रतो नरा भजन्ति मामेव शिवेतितत्पराः ॥ १४ ॥
असत्सङ्गान्नूनम्भवति विविधं दुःखमुचितम्
विचारो ह्याचारप्रभृतिभिरथो याति विलयम् ।
अतः पुण्याः सन्तो विविधविकृतिस्थानमखिलम्
बिहायाऽस्यां कामं शिवसदनमेकान्तसदनाः ॥ १५ ॥
असत्सङ्गात्प्रत्यहम्पापराशिर्विचीयते सज्जनस्तं क्षिणोति ।
अतः सन्तः सावधानेन सेव्याः सद्भिर्दीनो दुःखभारञ्जहाति ॥ १६ ॥
नीचानामपि देवेशि ! श्रद्धा शास्त्रे गुरौ दृढ़ा ।
प्रजायते पूर्वकृतैर्नोत्तमानां हि पापतः ॥ १७ ॥
इदमेव भविष्यम्मे विदितम्पूर्वमेव हि ।
निर्विण्णया गणिकया सम्वादोऽग्रेत्वया सह ॥ १८ ॥
त्वयोपदिष्टा पृष्टा च कथयिष्यत्यशेषतः ॥ १९ ॥

काश्युवाच

अहो अत्यद्भुतमिदं वेश्या वैराग्यसंयुता ।
कथमम्माऽनया वादो भविष्यति दयानिधे ॥ २० ॥
कदा कुत्र च को वादः किम्वा प्राप्तन्तया शिव ! ।
किमाहारा किमाचारा कथन्निर्वेदमाप सा ॥ २१ ॥

**काशीभगवत्सम्वादवर्णनम्**

श्रीभगवानुवाच

विदर्भनगरे काचिद् वेश्या सज्जनदर्शनात् ।
विवेकम्प्राप्य निर्वेदात्प्राप्ता वाणरासीम्पुरीम् ॥ २२ ॥

श्रीकाश्युवाच

कथं श्रद्धा सुमहती तस्याः परमपूरुष ! ।
एकेन श्रवणेनाऽऽशु जाता निर्वाणदायिनी ॥ २३ ॥

श्रीभगवानुवाच

विदर्भनगरे राजा वीरसेन इति स्मृतः ।
वासुदेवैकभक्तोऽसौ मन्त्रिणश्च तथा विधाः ॥ २४ ॥
पुरोहितामात्यभृत्याः सर्वे विष्णुपरायणाः ।
नगरस्थो जनो भक्तो यथा राजा तथा प्रजाः ॥ २५ ॥
इत्येवं वीरसेनस्य राज्ञो नीचाश्च धार्मिकाः ।
पुराणश्रवणे सक्ता अनुरक्ताः स्वकर्मणि ॥ २६ ॥
प्रजाः सदाचारपरा विष्णुव्रतशिवव्रताः ।
एकदा वीरसेनस्या विचारः समजायत ॥ २७ ॥
अधिष्ठानम्भगवतो विष्णोः क्वत्र पुरीषु हि ।
यत्र साक्षात्क्रियेताऽऽशु पामरैरपि केशवः ॥ २८ ॥
ऋषयः प्रार्थिताः प्रोचुर्यथा तत्त्वम्महाधियः ।
वीरसेन ! महाप्राज्ञ ! शृणु विष्णुपरायण ! ॥ २९ ॥
पुरीषु संस्थितो विष्णुरंशैः काश्यां स्वरूपतः ।
काशीस्वरूपम्बिष्णोस्तु यत्र साक्षात्प्रकाश्यते ॥ ३० ॥
अन्यासु रमते देवो भक्तानुग्रहकातरः ।
काश्याम्बसन्ति ये लोका द्विभुजास्ते चतुर्भुजाः ॥ ३१ ॥
भगवद्विग्रहाः शान्ताः सर्वे पापपराङ्मुखाः ।
अधिष्ठानम्महत्तत्र विष्णोः परपुरञ्जय ! ॥ ३२ ॥
ऋषिवाक्यम्विदर्भस्य राज्ञा लोकैश्चसात्त्विकैः ।
श्रुत्वा काशीम्बिष्णुरूपाममन्यत महायशाः ॥ ३३ ॥
काचिद्वेश्या बिदर्भस्य श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् ।
काशिकायाः कामकलाऽधिकृत्यात्मानमातुरा ॥ ३४ ॥
उवाच वचनञ्चारू श्रुत्वा संसारबिक्रियाम् ।
अहो मया मानुषञ्च देहम्प्राप्य न तत्कृतम् ॥ ३५ ॥
येन मुच्ये महापापात् संसाराख्यात् दुरासदात् ।
कथङ्काशीम्प्रयाम्यद्य कथन्द्रक्ष्यामि केशवम् ! ॥ ३६ ॥

उदग्वहाङ्कथं स्नास्ये ह्यधमा पापजीवना ।
केशवस्थानमासाद्य करिष्ये गानमुत्तमम् ॥ ३७ ॥
नृत्यादितालवंशादि दर्शयिष्ये शुभाः कलाः ।
किम्मया पापरूपिण्या कृतवीभत्सितम्मुहुः ॥ ३८ ॥
यदङ्गं सम्प्रसार्याऽऽशु धनं सर्वत्र काङ्क्षितम् ।
धिक्तान्ये जगदुच्छिष्टां माम्भजन्ति नराधमाः ॥३९॥
माञ्च धिक्पापपुरुषान् भजाम्यविजितेन्द्रियान् ।
अहो केशव ! मायायाः प्रभावः परमाद्भुतः ॥४०॥

**कामकलाप्रायश्चित्तोद्वेगवर्णनम्**

नरके सुखबुद्धिर्माम्परिहर्त्तुं न शक्यते ।
अन्तर्मलादि सम्पूर्णन्त्वगस्थ्यादियुतम्बहिः ॥४१॥
शरीरङ्कृमिकेशादि पूयदुर्गन्धिभाजनम् ।
अयमेव परो भोगो नरकस्याऽद्भुतः खलु ॥४२॥
देहं संयोज्य देहेन भोगबुद्धिः क्रियेत यत् ।
अहो सत्सङ्गमाहात्म्यं पश्यताऽधिविनाशनम् ॥४३॥
तत्र गत्वा न पापानि करिष्यामि कथञ्चन ।
विषयान् सर्वतस्त्यक्त्वा शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः ॥४४॥
पापम्विषयसंसर्गाज्जायतेऽवश्यमेव हि ।
तांश्चेत्त्यजति विष्णवात्मा कुतः पापं कुतोऽसुखम् ॥४५॥
अपृष्ट्वैवजनं काशीं गमिष्ये केशवप्रियाम् ।
इत्युक्त्वा स्वयमेवाऽऽशु गमनाय कृतोद्यमा ॥४६॥
प्रस्थानदिवसं ज्ञात्वा ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ।
धनम्विभज्य किञ्चित्तु गृहीत्वा नियमान्विता ॥४७॥
दासदासीद्वययुता प्रतस्थे केशवं स्मरन् ।
जय केशव ! देवेश ! जय काशीप्रियाच्युत ! ॥४८॥
काशीम्प्रापय सर्वेश ! देहि वासं जनार्दन ! ।
इति श्लोकं जपन्वेश्या विदर्भनगराच्छुभात् ॥४९॥
दिनैः कतिपयैः शीघ्रं काशीम्प्राप महाफलां ।
पदे पदे पापमलस्तस्याः क्षीणो भवत्यलम् ॥५०॥
दृष्टायां काशिकायाञ्च गतः सर्व्वः सवासनः ।
आगत्य मणिकर्ण्यान्तु स्नात्वा दत्त्वा धनम्बहु ॥५१॥

वपनङ्कारयित्वा तु स्थिता शुद्धा पयोव्रता ।
भागीरथ्याः परसरे स्थिता केशवतत्परा ॥५२॥
जय केशव ! देवेश ! जय काशीप्रियाच्युत ! ।
काशीं रक्षस्व देवेश ! देहि श्रद्धां जनार्दन ! ॥५३॥
मन्त्रेणाऽनेन देवेशं प्रार्थयेत्प्रत्यहं तु सा ।
स्थूलवस्त्रद्वया दीना सर्वभोगविवर्जिता ॥५४॥
तरुणी रमणीयाङ्गी रमते केशवे सदा ।
दोषान्ददर्श भक्ष्याणां जीवहिंसादिसम्भवान् ॥५५॥
चङ्क्रमेष्वपि हिंसा स्यात्तस्मादेकत्र संस्थिता ।
गङ्गातीरे सुरमणे रमयन्ती स्वमात्मना ॥५६॥
कदाचिद्रोदिति पुनः कदाचिद्धसतिस्फुटम् ।
कदाचिन्नृत्यति च सा कदाचिद्धा ! सखेति च ॥५७॥
कचिज्जनम्प्रणमति क्वचिद्दूरे स्थिता जनात् ।
विचारयति चाऽऽत्मानं देवम्पतितपावनम् ॥५८॥

**काशीवासेपापनिषेधमाहात्म्यवर्णनम्**

कामकलोवाच

अहो महालिङ्गमयं जनार्दनं पश्यामि काश्यां परमात्मरूपम् ।
अनाहतो योजनपञ्चकात्मकं विस्तारि गव्यूतियुगन्तु सार्धम् ॥५९॥
स्थूलम्पतिम्प्राप्य रमे ह्यहर्निशं सुपौरुषम्वीर्यसुधैर्यमुक्तिदम् ।
वेश्याऽपि यं सेवमाना सती स्यात्तमात्मतन्त्रम्प्रभजे काशिनाथम् ॥६०॥
शुभाननः शान्तवपुः सनातनो रतिप्रियो धन्यकरः सुपावनः ।
कुरूपदुर्भाग्यदरिद्रदारणः सदा दयावानपराधखण्डनः ॥६१॥
अहो कदर्येण महाघमूर्तिना देहेन देवः खलु काशिकायाम् ।
भर्त्ता मया सर्वपतिर्जनार्दनः प्राप्तः स्ववश्यो विषयात्मनां न ॥६२॥
अहोऽनुलोकः परिपूर्णशोकः कथं न काश्यां रमते न पातकम् ।
स्वानन्दपूर्णम्परिपूर्णकामं स्वात्मानन्दन्देवदेवैरुपास्यम् ॥६३॥
पश्यामि सर्वत्र कनार्दनम्पतिं काशीश्वरन्देववरैरुपास्यम् ।
चित्तं सदानन्दमये निमग्नं वहिर्न यात्यन्यतमो न रोचते ॥६४॥

शिवउवाच

इति निश्चित्य गङ्गायास्तीरे तीरे विलासिनी ।
विलसद्भ्रमणेऽनङ्गा चिदानन्दस्वरूपिणी ॥६५॥

पञ्चक्रोशात्मकं लिङ्गमेकमेवाऽनुपश्यति ।
विचचार महासत्त्वा जितेन्द्रियमनोगुणा ॥६६॥
काचित्तपस्विनी काश्यां सुरसा ब्राह्मणी कृशा ।
पप्रच्छ वेश्यां सुभगां कौतूहलसमन्विता ॥६७॥

सुरसोवाच

कात्वम्वरोरु ! किन्नाम तव देशः क एष वा ।
जात्या काऽसि स्थिता काश्यां निर्वेदरससंयुता ॥६८॥

कामकलोवाच

अहम्वेश्या कामकला विदर्भनगरे स्थिता ।
खिन्ना निर्वेदमासाद्य काश्यां तिष्ठामि दीनवत् ॥६९॥

सुरसोवाच

तव निर्वेदमूलं किमाश्चर्यम्भाति मेऽनघे ।
वयो रूपं तथा शीलं यूनामेवं सुदुर्लभम् ॥७०॥

कामकलोवाच

वीरसेनो महाराजो विदर्भनगरे पुरा ।
वर्त्तते धार्मिको विष्णुभक्तः सक्तो न कुत्रचित् ॥७१॥
तस्यैकदा विचारोऽभूदृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
कुत्र श्रीभगवान् विष्णुर्लभ्यते शीघ्रमेव हि ॥७२॥
निरूपितन्तु ऋषिभिः काश्यां केशवमूर्तिधृक् ।
वर्त्तते भगवान्विष्णुः परमात्मा सनातनः ॥७३॥
अतीव सुलभः साक्षात्कर्त्तुं शक्यो जितेन्द्रियैः ।
महोपपातकानाञ्च नाशनः स्मृतिमात्रतः ॥७४॥
इति श्रुत्वा मदात्मानं धिक्कृत्य सुविचार्य च ।
अत्राऽऽगत्याऽहमव्यग्रा रमे तेन दयावता ॥७५॥
विचार्यैवं मनसि च श्रुत्वा वाक्यं द्विजन्मनाम् ।
आगता केशवं द्रष्टुं पतिम्पावनपावनम् ॥७६॥

सुरसोवाच

लक्ष्मीपतिस्तवपतिः कथम्भवति सत्तमे ! ।
वेश्या जगत्पतिः पापा महाकुत्सितकर्मकृत् ॥७७॥

काशीमाहात्म्येसुरसाकामकलासम्वादबर्णनम्

कामकलोवाच

वेश्याऽवश्यम्पापरूपा सदाऽहं लक्ष्मीकान्तः पापसङ्घौघहारी ।
त्यक्त्वा पापं दीनवन्धुः सुसेव्यो ये तद्भक्तास्तानवश्यम्भजेत्सः ॥७८॥

सुरसोवाच

कथमाहारयात्रा ते भवित्री पापवर्जिता ।
जीवाः सर्वत्र वर्त्तन्ते त्वं न यज्ञाधिकारिणी ॥७९॥

कामकलोवाच

पयः पानङ्कदाचिद्धि करिष्यामि सुलोचने ! ।
पञ्चयज्ञाधिकारो हि येषान्ते त्वन्नभक्षकाः ॥८०॥
स्थास्याम्यत्रैव जीवानां काशिकावासिनां यथा ।
पीडा न जायते मत्तः स्वचंक्रमणरंहसा ॥८१॥

सुरसोवाच

किञ्चित्पश्यसि वामोरु ! क्षेत्रेऽस्मिन्कौतुकम्परम् ।
तत्समाचक्ष्व सुभगे ! महानन्दवने शुभे ॥८२॥

कामकलोवाच

पञ्चक्रोशात्मकं रूपं केशवस्य महात्मनः ।
किञ्चिन्नयूनं प्रपस्यामि सुरसे ! साधुवादिनि ! ॥८३॥

सुरसोवाच

पञ्चक्रोशात्मकस्याऽस्य केशवस्य परात्मनः ।
न्यूनतायाः प्रसङ्गः कः का दृष्टिस्तव सुव्रते ! ॥८४॥

कामकलोवाच

यावन्न मम देहोऽयं तन्मयो भाति सात्मकः ।
तावत्पश्यामि चाऽऽत्मानं न्यूनन्देहोपचारतः ॥८५॥
प्रियादात्मानमन्यन्तु यः पश्यति पृथङ्मतिः ।
तस्य प्रिये रतिः काऽऽस्ते क्व सुखं क्व महद्यशः ॥८६॥
कथम्प्रियस्य विरहं सहन्ते सुविवेकिनः ।
गतान्यनेकजन्मानि पत्या विरहितानि मे ॥८७॥
इदानीङ्कृपया सख्या दृष्टाऽस्मि अपराधिनी ।
स्वगृहं प्रापिता तुच्छा परव्यसनलालसा ॥८८॥

व्यभिचारपरा दीना प्रियस्नेहविवर्जिता ।
यैरहं वञ्चिता सुभ्र! नीचैरिन्द्रियविभ्रमैः ॥८९॥
तानहम्वञ्चयिष्यामि केशवेनाऽद्य सत्कृता ।
नाहम्बिभेमि निरयान्नाऽसुखाद्गर्भवासतः ॥९०॥
न देहगेहदुःखाच्च यथा प्रियवियोगतः ।
बिभेमि मानुषम्प्राप्य देहं सर्वार्थसाधकम् ॥९१॥
अहो प्रियस्य माहात्म्यं सुरसे! पश्य सुन्दरम् ।
अपराधसहस्राणि क्षान्त्वा मामानयद्गृहम् ॥९२॥
अहो लोकः पापशोकः पूर्णः सुकृतवर्जितः ।
माधवं मद्धवम्वीक्ष्य तथापि न विचारयेत् ॥९३॥
अहो पतितमप्याशु त्रस्तं शरणमागतम् ।
त्वक्तुं न शक्तो भगवान् केशवः काशिवल्लभः ॥९४॥
तम्प्रियम्परमानन्दं विहायाऽप्रियदर्शनम् ।
भजन्ति ये दुरात्मानस्तेषाम्प्रियकथा कुतः ॥९५॥

सूतउवाच

इत्युक्त्वा सा तु सुरसा रुरोद गतचेतना ।
मूर्च्छिता नाथनाथेति केशवं साऽवदन्मुहुः ॥९६॥
विमृज्य नेत्रे सोवाच काऽसि काऽसि महाभुज! ।
मामालिङ्गापविद्धाङ्गी विरहेण तवाऽच्युत! ॥९७॥

श्रीशिवउवाच

अनया परया रोत्या नित्यन्तु रममाणया ।
नीतः कालः कामकलया गङ्गातीरनिवासया ॥९८॥
पुनस्ताम्प्राहा सुरसा देवस्ते मिलितो न वा ।
अद्याऽपि त्वां कामकले! नाऽऽलिंगति हि सत्पतिः ॥९९॥

## सुरसाकामकलासम्वादवर्णनम्

कामकलोवाच

प्रियेण सुन्दरेणाऽहं मिलिता न कथञ्चन ।
किञ्चिज्जानासि सुरसे! कदा सङ्गो भविष्यति ॥ १०० ॥

सुरसोवाच

अहङ्कारनिवृत्त्या तु केशवो नहि दूरतः ।
अहङ्कारयुतानाञ्च मध्ये पर्वतराशयः ॥१०१॥

जानामि त्वाङ्कामकले ! सदा मधुरभाषिणीम् ।
मां ज्ञास्यसि यथारूपान्तदा प्रियमवाप्स्यसि ॥१०२॥

कामकलोवाच

का त्वम्भद्रे कथञ्चाऽहं ज्ञास्ये त्वाङ्करुणामयीम् ।
तवाऽऽज्ञया करिष्यामि तत्सर्वम्प्रियकाम्यया ॥१०३॥

काश्युवाच

अधिष्ठात्रो देवताऽहं क्षेत्रस्य करुणामयी ।
काशी निर्वाणचित्तान्त्वां दृष्ट्वा प्रष्टुं समागता ॥१०४॥
श्वः प्राप्स्यसि त्वम्वरदं केशवं केशवप्रिये ! ।
मध्याह्ने मणिकर्ण्यान्तु विड्भाण्डं सुविसृज्य च ॥१०५॥
इत्युक्त्वा तां स्वरूपं स्वं दर्शयामास काशिका ॥१०६॥
श्यामा षोडशवार्षिकी सुकरुणा मूर्तिर्दधाना वरं ।
हस्ताभ्यामभयञ्च विश्वजननी विद्येति सा गीयते ।
या दृष्टा स्मरणङ्गताऽपि सततं या कीर्त्तिता संस्तुता
या स्पृष्टा नृभिरात्मतत्त्वममलं दद्याद्ध्रुवङ्काशिका ॥१०७॥

श्रीशिवउवाच

एवम्मूर्त्तिन्दर्शयित्वा काशी चाऽन्तर्हिताऽभवत् ।
सा तां दृष्ट्वा भगवतीं ननाम भुवि दण्डवत् ॥१०८॥
काशिके ! दर्शयाऽऽत्मानं केशवम्प्राणवल्लभम् ।
अतःपरम्पृथक्स्थातुं न शक्ष्यामि महेश्वरि ॥१०९॥
द्वितीये दिवसेऽप्येवं मुहुर्वदति विह्वला ।
मध्याह्ने मणिकर्ण्यां सा स्नात्वा केशवमब्रवीत् ॥११०॥
जय केशव ! सर्वेश काशीवासिसुखप्रद ! ।
नय मामद्य भगवन्काशिवासिप्रियप्रिय ॥१११॥

श्रीशिवउवाच

एवमुक्त्वा ध्यानयुता पद्मासनवती च सा ।
विससर्ज्जा शुभन्देहं केशवेन समागता ॥११२॥
स्वभर्त्रा मिलिता साध्वी दृष्टा लोकैश्च सा तदा ॥११३॥

## कामकलोपाख्यानेकाश्यानुग्रहवर्णनम्

श्रीशिवउवाच

सत्सङ्गजम्फलङ्काशि वेश्याख्यानेन बोधितम् ।
विमृश्यैतदशेषेण गच्छ त्वन्निरुपद्रवा ॥ ११४ ॥

सूतउवाच

मूर्त्तिमत्याः काशिकाया उपयोगः शिवाम्प्रति ।
शिवेन कथितः सम्यक् साम्प्रतं श्रृणुत द्विजाः ! ॥ ११५ ॥
द्वेधा गतिः शास्त्रविचारकाणां कर्त्तेश्वरः पुरुषार्थोऽथवा स्यात् ।
ईशात्प्रसन्नादविमुक्तवासः प्रार्थ्यः परम्पौरुषमेतदेव ॥ ११६ ॥
यथाकथञ्चित्पुरुषेण पौरुषैः कृतैः समस्तैरधिकाशिवासे ।
यत्नः कृतो नश्यति नैव कुत्रचिज्जन्मान्तरे काशिकाम्प्राप्नुयाद्धि ॥ ११७ ॥
यत्राऽनृणः पितृदेवादिकांस्तु भजन्परां सिद्धिमवाप्नुयाद्वशी ।
यत्र प्रविष्टं पितृदेवमानुषा वदन्ति साक्षाच्छिवरूपिणं नरम् ॥ ११८ ॥
काश्यां देवः शङ्करः केशवश्च काश्यां देवी त्वन्नपूर्णा रमा च ।
काश्यां ढुण्ढिर्विघ्नहर्त्ता गणेशः काश्यां शास्ता कालराजो महेशः ॥ ११९ ॥
काश्यां गङ्गोदग्वहा विष्णुरूपा काश्यां ब्रह्मा वेदघोषैरुपेतः ।
काश्यां दुर्गा दुःखदारिद्र्यहन्त्री काश्यां सूर्यो व्याधिबाधानिहन्ता ॥ १२० ॥
किमत्र नास्तीति परम्विमृग्यते यद् दुःखभारैर्युतमल्पसारैः ।
समागमोऽयं न शिवस्य लोके न विष्णुलोके न च सत्यलोके ॥ १२१ ॥
काश्यां यथैकत्र समागमो महाञ्जातो न कुत्राऽपि तथा भविष्यति ।
महत्समाजे खलु सज्जितव्यं कथा प्रवृत्ता पुरुषार्थबुद्ध्या ॥ १२२ ॥
शारीरमात्रे विजितेन्द्रियाणां दोषो न कश्चिद्भविता हि काश्याम् ।
विरुद्धकर्मप्रतिवारणेन सुखाय काशी भवतीह नित्यम् ॥ १२३ ॥
न गेहदेहादि तनूजजाया धनानि सर्वाण्यपि पावनानि ।
नरस्य कुर्वन्ति सुखङ्कदाचित्तस्मात्सुकाशीगमनात्सुखी स्यात् ॥ १२४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये काशीमहिम्नि
कामकलोपाख्यानं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

# अथैकोनविंशोऽध्यायः

## वीरसेनोपाख्याने श्रद्धास्वरूपतत्फलवर्णनम्

ऋषयऊचुः

वीरसेनो महाराजो विदर्भनगरस्य च ।
किं काशिकागुणान् श्रुत्वा चकार हरिवल्लभः ॥ १ ॥
पुनर्वेश्यावचो ब्रूहिनतृप्यन्ति महर्षयः ।
शृण्वाना मधुरं सूत ! महाश्चर्यंकरम्महत् ॥ २ ॥

सूतउवाच

वीरसेनःप्रसेनाय राज्यम्पुत्राय दत्तवान् ।
विष्णुभक्तःकाशिकायामाजगाम स्त्रिया सह ॥ ३ ॥
वरणायास्तटे रम्ये केशवस्य सुसन्निधौ ।
स्थित्वाऽऽदिकेशवम्प्राज्ञ आराधयति भक्तितः ॥ ४ ॥
प्रातःस्नानम्पादतीर्थेऽथ कृत्वा मध्याह्ने वै मणिकर्ण्यान्निमज्य ।
दृष्ट्वा देवं विश्वनाथं ततस्तु देवीं देवं केशवम्माधवञ्च ॥ ५ ॥
विप्रान्देवानन्नदानैर्द्धनैश्च सन्तर्प्याऽथो पारणं सञ्चकार ।
नित्यं राजा वीरसेनोऽतिशूरो जित्वा शत्रूनिन्द्रियाद्यांस्थितोऽभूत् ॥ ६ ॥
कस्मिंश्चिद्दिवसे राजा वीरसेनो जितेन्द्रियः ।
वेश्याङ्कामकलां स्मृत्वा कारयामास कौतुकात् ॥ ७ ॥
आगता तां स पप्रच्छ किङ्करोष्यत्र संस्थिता ॥ ८ ॥

कामकलोवाच

भर्तृशुश्रूषणरता कदाचिच्छान्तमानसा ।
कदाचित्काशीमाहात्म्यपरिशीलनतत्परा ॥ ९ ॥
कदाचिच्छ्रवणासक्ता भर्तुर्गुणगणस्य हि ।
कदाचित्सत्सभामध्ये गोष्ठीश्रवणतत्परा ॥ १० ॥
एवङ्कालो मया नीतो नीयते च धनाधिप ! ।
न शक्नोमि पतिं त्यक्तुं बहुकालवियोजितम् ॥ ११ ॥

राजोवाच

कस्ते पतिः क चाऽऽस्ते स किं नामा कस्य सम्मतः ।
किं ददाति सुखम्वित्तं मिलिताऽसि कथन्तु तम् ॥ १२ ॥

कामकलोवाच

केशवो मे पतीराजन्! सर्वत्राऽऽस्ते समस्तदृक् ।
तस्य नामान्यनन्तानि न चैकमपि वस्तुतः ॥ १३ ॥
वेदस्मृतिपुराणज्ञसम्मतो ह्यात्मदः प्रभुः ।
वित्तं तस्य जना नैव तेन दत्तमपि क्वचित् ॥ १४ ॥
गृह्णन्ति तत्पदे रक्ता मिलिताऽस्मि गुरोर्गिरा ॥ १५ ॥

**कामकलोपाख्यानवर्णनम्**

राजोवाच

कथमन्यस्य मिलति कथम्वा सेव्यते नरैः ।
मिलितो न पुनर्याति कथन्तस्मिन्प्रवर्तते ॥ १५ ॥

कामकलोवाच

गुरुभक्तया स मिलति स्मरणात्सेव्यते बुधैः ।
मिलितोऽपि न लभ्येत जीवैरहमिकापरैः ॥ १६ ॥

राजोवाच

वर्णाश्रमेषु के तस्य वल्लभाः कस्य वल्लभः ।
तस्मिन्प्राप्ते मनोऽन्यत्र न गच्छेद्विषयान्तरे ॥ १७ ॥
कथङ्कामकले! ब्रूहि परिजानासि तत्त्वतः ॥ १८ ॥

कामकलोवाच

वेदमार्गरतास्तस्य वल्लभस्य च वल्लभाः ।
विषये विषदृष्टीनां परमात्मा जनार्द्दनः ॥ १९ ॥
अन्तर्हितो न दृष्येत प्रत्यक्षोऽपि रविर्यथा ।
यत्र यत्र भवेत्प्रीतिर्जनस्य विषयात्मनः ॥ २० ॥
तत्र तत्र मनो याति जनस्तन्मयतामियात् ।
अतएव चिदानन्दे परमात्मनि वल्लभे ॥ २१ ॥
स्नेहः सर्वात्मना कार्यो यथाऽन्यत्र धनादिषु ।
स्नेहाद्रमणमासाद्य सुखं स रमते वशी ॥ २२ ॥
विषयस्नेहिनां राजन्! न मिलत्यपि कर्हिचित् ।
केशवस्नेहिनामात्मा साक्षाद्भवति माधवः ॥ २३ ॥

राजोवाच

विषयासक्तचित्तानामपि प्रयततां हरौ ।
कथम्मिलति देवेशः केशवः क्लेशनाशनः ॥ २४ ॥

कामकलोवाच

विषयासक्तचित्तानां श्रवणे यदि मानसम् ।
प्रवर्त्तते काशिकायाम्मिलत्यात्मा जनार्दनः ॥ २५ ॥

राजोवाच

सर्वे शृण्वन्ति सद्वृन्दे स्थित्वा काशिकथाम्मुहुः ।
कथन्न साक्षाद्भवति भगवान् मधुसूदनः ॥ २६ ॥

कामकलोवाच

गुरौ शास्त्रे च महति श्रद्धा पुण्यैरवाप्यते ।
अश्रद्धया हताशानां कथं साक्षाद्भवेद्धरिः ॥ २७ ॥
यस्य साक्षाद्भगवति गुरौ शिवतनौ परे ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतन्तस्य सर्वं नश्यति नाऽन्यथा ॥ २८॥

राजोवाच

किन्तत्पुण्यम्महाभागे ! येन श्रद्धाऽतिनिर्मला ।
जायते वर्द्धते चाऽथ तथा साक्षाद्भवेद्धरिः ॥ २९ ॥

कामकलोवाच

श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तं क्रियते कर्मयच्छुभम् ।
ब्रह्मार्पणधिया सर्वं कर्त्तव्यं विष्णुवल्लभ ! ॥ ३० ॥

राजोवाच

श्रद्धापूर्णेति च कथं ज्ञातव्या सुखकारिणी ।
यामासाद्य नरो मङ्क्षु प्राप्नुयात्केशवम्पतिम् ॥ ३१ ॥

**कामककलोपाख्याने रौद्राक्षभिल्लकथनकवर्णनम्**

कामकलोवाच

पूर्णाश्रद्धा महाराज ! तदा ज्ञेया मनीषिभिः ।
किं सत्यमनृतञ्चेति विचारः सम्प्रवर्त्तते ॥ ३२ ॥
विचारेऽपि कृते राजन्न सत्यपरिवर्जनम् ।
सिद्धम्भवति पूर्णा स्यात्तदा श्रद्धा महाफला ॥ ३३ ॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासम्पुरातनम् ।
यं श्रुत्वा श्रद्धया पूर्णो भवेत्सारविचारकः ॥ ३४ ॥
विन्ध्याद्रिकोटरे राजन् भिल्लपल्ली सुविस्तृता ।
तस्याम्वसति पापात्मा भिल्लो रौद्राक्षनामधृक् ॥ ३५ ॥
मार्गं आगच्छतो वीक्ष्य जनान्पल्लीपतिः स च ।
हत्वा हत्वा धनं सर्वं गृहीत्वा पल्लिमाविशत् ॥ ३६ ॥
प्रत्यहं जीवहननं प्रत्यहं कर्तृकर्त्तनम् ।
प्राणिनाम्प्रकरोत्येव रौद्राक्षः क्षीणसत्क्रियः ॥ ३७ ॥
एकदा ब्राह्मणाः शान्ता मिलिता मार्गमध्यगाः ।
रौद्राक्षेण धृताः सर्वे पृष्टाश्च शुभदर्शनाः ॥ ३८ ॥
के यूयङ्कुत आयाता दीयतां सर्वमेव हि ।
नोचेद्धत्त्वा ग्रहीष्यामि (मो?) धनञ्जीवं यशो वलम् ॥ ३९ ॥

ब्राह्मणाऊचुः

गृहाण सर्वं हि धनं यत्किञ्चिद्वर्त्तते वसु ।
शरीरं त्यज भिल्लेश ! येन काशी समाप्यते ॥ ४० ॥

रौद्राक्षउवाच

धनम्मूलम्मनुष्याणामायुः परमदुर्लभम् ।
तच्चेद्गतम्भोगहेतुर्जीवितेन किमीहितैः ॥ ४१ ॥

विप्राऊचुः

धनेन किम्पापशोकादिदुःखमूलेन सर्वार्थविनाशकेन ।
आहारमात्रादतिरिक्तसङ्ग्रही नश्यत्यवश्यम्परलोकशून्यः ॥ ४२ ॥

भिल्लउवाच

पापङ्किमुच्यते विप्राः ! न जानामि तदुच्यताम् ।
पापेन क्रियमाणेन किं नश्यति ममाऽपि हि ॥ ४३ ॥

विप्राऊचुः

पापं दुःखस्य मूलं हि सुकृतं सुखकृन्मतम् ।
पापिनो निरयं यान्ति स्वर्गं सुकृतिनस्तथा ॥ ४४ ॥

भिल्लउवाच

मया पापङ्कृतङ्घोरं कथं सुखमवाप्यते ।
नहि दुःखम्विजानामि यावज्जीवम्मनागपि ॥ ४५ ॥

विप्राऊचुः

सुखं यत्प्राप्यते भिल्ल ! पूर्वंजन्मार्जितेन च ।
सुकृतेन महामूर्खं ! दुष्कृतं दुःखकृद्भवेत् ॥ ४६ ॥

भिल्लउवाच

दुष्कृतस्य स्वरूपं किं सुकृतस्याऽपि किम्पुनः ।
वदन्तु सुविचार्याऽऽशु न जाने किं महत्तरम् ॥ ४७ ॥

**रौद्राक्षभिल्लविप्रसम्वादवर्णनम्**

विप्राऊचुः

परपीडाकरम्भिल्ल ! परद्रव्यादिहारकम् ।
सन्निन्दामात्मदृष्टान्ताद्दुःखदंदुष्कृतम्मतम् ॥४८॥
सुकृतं सर्वसुखकृत्परद्रोहविवर्जितम् ।
संस्कारैः संस्कृतस्याऽत्र शुभे चित्तम्प्रवर्त्तते ॥४९॥

भिल्लउवाच

संस्काराः कति सन्तीह बाह्याभ्यन्तरशोधकाः ।
शुद्धस्य लक्षणङ्किन्तद्यं न संस्कृत उच्यते ॥५०॥

विप्राऊचुः

संस्कारा दश कथ्यन्ते देहिनः शुद्धिहेतवः ।
आदौ सद्भिः सङ्गतिर्हि ततो निस्तारबुद्धिता ॥५१॥
ततः सच्छास्त्रपरता विचारस्तदनन्तरम् ।
ततश्चानुभवास्वादस्ततो विषयमोचनम् ॥५२॥
आहारशुद्धिश्च पुनस्ततः प्रीतिर्जनार्दने ।
ततः सर्वं विष्णुमयं सर्वदाऽऽनन्द एव च ॥५३॥

भिल्लउवाच

सत्सङ्गेऽपि न कस्यापि दृश्यते सन्मनोगतिः ।
तत्कथं श्रवणेनाऽपि सद्बुद्धिः खलु जायते ॥५४॥

विप्राऊचुः

यावत्पापैस्तु मलिनं हृदयन्तावदेव हि ।
न शास्त्रे सत्यबुद्धिःस्यात्सद्बुद्धिः सद्गुरौ तथा ॥५५॥
अनेकजन्मजनितः पुण्यराशिफलम्महत् ।
सत्सङ्गशास्त्रश्रवणादेवम्प्रेमादि जायते ॥५६॥

स्नेहो यत्र प्रभवति विषये वा जनार्द्दने ।
तदर्थङ्कुरुते सर्वं शुभम्वा यदिवाऽशुभम् ॥५७॥
विषये स्नेहबद्धानामशुभान्येव सादरम् ।
भवन्ति केशवस्नेहाच्छुभान्येव वनाधिप ! ॥५८॥

भिल्लउवाच

असाध्योऽपि हि साध्यः स्यात्कथञ्चित्तद्वदन्तु नः ।
महापातकयुक्तस्य ममऽपि खलु निष्कृतिः ॥५९॥
जायते चरणोपान्ते न्यपतत्त्रायतां शुभम् ।
सत्सङ्गवासिनो विप्रा न जानन्ति शुभाशुभम् ॥६०॥

ऋषयऊचुः

असाध्योऽपि भवेत्साध्यो महारसनिषेवणात् ।
पथ्यपूताशनाच्चैव नान्यथा जन्मकोटिभिः ॥६१॥

भिल्लउवाच

को रसः किञ्च पथ्यं स्यात्सर्वस्य जगतः कथम् ।
एक एव महाव्याधिः सहस्रपरिनाशनः ॥६२॥

ऋषयऊचुः

रसो महान्विष्णुकथा तदुक्तं पथ्यमुच्यते ।
उपदेष्टा सुहृद्वैद्यो रोगः संसार एव च ॥६३॥

भिल्लउवाच

सर्वम्मिलति चैकत्र कुत्र ब्रह्मर्षयः ! सदा ।
सर्वेषां रोगिणां रोगनाशनाय महौषधम् ॥६४॥

**भिल्लविप्रसम्वादवर्णनम्**

ऋषयऊचुः

काश्याम्मिलति सर्वं हि विनाऽऽयासेन धर्मतः ।
तत्र पापकृतो रोगादन्यत्र मरणम्भवेत् ॥६५॥
मृता अपि विमुच्यन्ते यातनान्ते सुसंस्कृताः ॥६६॥

भिल्लउवाच

नयन्तु माङ्काशिकां रोगहन्त्रीं पापात्मानन्देवविप्रद्रुहश्च ।
अतः परङ्गुरवस्तारयन्तु मामात्मतन्त्रं शरणागतं हि ॥६७॥

ऋषयऊचु

त्वं भिल्लराजः सहसा कथं परं वैराग्यमालम्ब्य विहातुमिच्छसि ।
सर्वं जगज्जालमिदं शनैः शनैस्त्यजस्व सद्भिः खलुसङ्गतश्चिरम् ॥६८॥

भिल्लउवाच

पूर्वजन्मसुकृतैर्भवद्विधाः सङ्ता मम महाघनाशनाः ।
तान्विहाय यदि चात्र पापकृत्सङ्तः पुनरपीह सा मतिः ॥६९॥

ऋषयऊचुः

आगच्छ राज्यम्पुत्राय दत्वा काशीम्भवापहाम् ।
श्रुत्वा दृढ़तरङ्कृत्वा न यथा पूर्वसंस्कृतिः ॥७०॥

कामकलोवाच

वीरसेन ! महाराज ! श्रुत्वा भिल्लो दृढ़व्रतः ।
श्रद्धाबुद्धियुतो धीरः समायात्कैशवीम्पुरीम् ॥७१॥
प्रवेशमात्रादनघो महापापयुतोऽपि सः ।
काश्यामागत्य सततं कथाश्रवणतत्परः ॥७२॥
श्रद्धाम्बुद्धिं पराम्प्राप्य महाघौघविनाशिनीम् ।
महर्षयोऽतिनियताः कृपया पूर्णमानसाः ॥७३॥
जितेन्द्रियम्ममहाधीरं सच्छुद्धं दृढनिश्चयम् ।
आहूयोपदिशन्त्यज्ञं कृपया गुरुसेवकम् ॥७४॥

राजोवाच

काश्यामागत्य मुनिभिरुपदिष्टङ्किमुच्यताम् ।
न तृप्तिमधिगच्छामि तव वाक्यैर्महद्गुणैः ॥७५॥

कामकलोवाच

ज्येष्ठेश्वरसमीपे तु ऋषयः सन्निकेतनाः ।
वदन्त्यहर्निशम्भक्त्या शिवकाशीहरेः कथाः ॥७६॥
शृणोति सततम्भिल्लः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
श्रद्धया गुरुदेवे हि श्रुतं सिध्यति नान्यथा ॥७७॥

ऋषयऊचुः

अत्रैव गाथा गायन्ति सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।
तथा रामेण कृष्णेन कृष्णद्वैपायनेन च ॥७८॥

शिवभक्तः काशिवासी ह्यर्जुनेन समोऽपि हि ।
कृष्ण एव विजानाति शिवतत्त्वं सनातनम् ॥७९॥
येन स्वनेत्रपद्मेन पूजितोऽम्बिकया सह ।
विश्वेशो विविधैर्भवतैर्मार्गैः र्बाह्यान्तरैरपि ॥८०॥
सम्पूजयति देवेशं शङ्करं शङ्करार्थदम् ।
शङ्करोऽपि सदानन्दो देवदेवं जनार्दनम् ॥८१॥
निरन्तरम्भजत्येव साम्वः साम्बसुतन्तु तम् ।
यन्नामधेयम्बचसा मनसा रूपमुत्तमम् ॥८२॥
शिरमा पादतीर्थन्तु गृहीत्वा काशिसंश्रयः ।
यस्य स्वरूपं सर्वात्मा काश्यामुपदिशत्यलम् ॥८३॥
तारकम्ब्रह्म येनास्य लोकस्य न पुनर्भवः ।
हरिभक्तः शिवः साक्षाद्धरिः शिवपरायणः ॥८४॥
विचारतो न भेदोऽस्ति भक्त्या भेदः प्रकल्पितः ।
भक्तिरानीय देवं स्वं समर्पयति सर्वगम् ॥८५॥
महाकृपासमुद्रं यत्स्वरूपन्तन्मयम्विदुः ।
यज्ञदानतपोयोगतीर्थविद्याश्रमादिभिः ॥८६॥
साध्यते भक्तिरचला देवे हरिहरेऽनिशम् ।
ते धन्याः कृतपुण्यास्ते भक्तिर्येषां महाफला ॥८७॥

**काश्यां भिल्लेन विप्तेभ्यः सत्ककाश्रवणं**

उज्जृम्भते सुमहती पुण्यभारैः सुखप्रदैः ।
नारायणपरः काश्यां महादेवपरोऽथवा ॥८८॥
भूत्वा सदाचारपरस्तिष्ठेत्काश्यां न चान्यथा ।
वेदकर्त्ता वेदरूपो वेदमार्गप्रवर्त्तकः ॥८९॥
वेदमार्गरतं देवो ह्यनुगृह्णाति तत्परः ।
अतो धर्मपरैर्भाव्यमीश्वरैर्धर्मरक्षकैः ॥९०॥
पूर्णाः पूर्णतरा भवन्ति यदनुध्यानाज्जपान्नामतः
सोऽपि ब्रह्मरसायनैकफलदं कर्माचरंस्तुष्यति ।
काशीनाथपरम्परात्मनयनं कर्मापहं कामिना-
मन्तःक्षालनकृत्कृतान्तभयहृत्सत्कर्म काश्यांचरेत् ॥९१॥
स्वयमेव भवो भव्यैः पूजयेच्छाश्वतं शिवम् ।
अतएव जनैः काश्यां पूजनीयो भवः सदा ॥९२॥

यात्रापूजानामसङ्कीर्त्तनादि स्नानन्तीर्थेष्वेव तत्तद्दिनेषु ।
सत्सङ्गोऽन्यैर्नैव सम्भाषणादिकुर्या देवं देवदेवो दिदेश ॥९३॥
सत्ये स्वयं श्रद्दधतेऽहि लोकास्त्रेतायुगे शास्त्रगुरूपदेशात् ।
न द्वापरेश्रद्दधते हि केचित्कलौ किमत्राऽस्ति हरौ हरे रतिः ॥९४॥
स्नातव्यं जाह्नवीतोये द्रष्टव्यः पार्वतीपतिः ।
स्मर्त्तव्यः कमलाकान्तो वस्तव्यं काशिकास्थले ॥९५॥

कामकलोवाच

एवङ्कथावसाने स उत्थाय कृतनिश्चयः ।
गत एकान्तसदनं पश्चात्तापसमन्वितः ॥९६॥
शिवस्मरणसम्पूर्णहृदयः क्षुत्तृडर्दितः ।
कदाचित्किञ्चिदश्नाति कदाचिन्न पिबत्यपि ॥९७॥
एवन्नयतिकालं सः भिल्लः सज्जनसिद्धिभाक् ।
शृण्वन्हरिकथां शुद्धां पापघ्नीम्पापविच्युतः ॥९८॥
श्रद्धया काशिकाम्प्राप्य मोक्षसिद्धिमवाप सः ।
श्रद्धा धर्मश्च मोक्षश्च श्रद्धा पापप्रणाशिनी ॥९९॥
श्रद्धया सुखिनो लोकाः श्रद्धया शान्तिराप्यते ।
एवं त्वमपि सच्छ्रद्धः परां सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१००॥
इति श्रुत्वा वीरसेनो राजा श्रद्धायुतो महान् ।
भजन्हरिं काशिकायां सिद्धिम्प्राप नराधिपः ॥१०१॥

सूतउवाच

इति कामकलाख्यानं विशदीकृत्य वर्णितम् ।
विचारः पूर्णश्रवणात्कार्यकारी न चान्यथा ॥१०२॥
श्रवणेन परा सिद्धिः श्रवणेन परं सुखम् ।
श्रवणेन परं ज्ञानं धर्मादिः श्रवणेन च ॥१०३॥
अन्यत्सर्वम्परित्यज्य श्रवणम्परिसाधयेत् ।
श्रवणे सर्वमस्तीह श्रवणं नान्यतः क्वचिद् ॥१०४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयाखण्डे काशीरहस्ये कामकलोपाख्यानन्तर्गतं
रौद्राक्ष भिल्लकथा नाम ऊनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

# अथ विंशोऽध्यायः

## ऋषिसूतसंवादे श्रवणविधिकथनम्

ऋषयऊचुः

श्रवणस्य विधिम्ब्रूहि श्रुतन्धर्मादिसिद्धिदम् ।
यथा भवति लोकानां वक्तृश्रोतृगुणान्वद ॥१॥

सूतउवाच

वक्तरि प्रथमम्विश्य कृष्णद्वैपायनो हरिः ।
प्रवर्त्तयति विप्रेन्द्राः सूतो वक्ता प्रवर्त्तते ॥२॥
यथा भगवतो विष्णोः कृपा भवति सत्तमाः ! ।
तथा वक्तुर्मुखाद्वाणी सरसा सम्प्रवर्त्तते ॥३॥
पतितोऽपि महापापो मूर्खोऽपि व्यसनान्वितः ।
कामक्रोधादियुक्तोऽपि कृपणोऽपि विषादवान् ॥ ४ ॥
इत्यादि दोषयुक्तोऽपि यन्मुखाद्विष्णुसत्कथा ।
श्रुता विकासमायाति स वक्ता परमो गुरुः ॥ ५ ॥
येनोपदिष्टाः पापिष्ठाः अपि कामातुराः शठाः ।
परं ज्ञानमवाप्याऽपि शाश्वतं यान्ति तत्पदम् ॥ ६ ॥
निरपेक्षः कृपायुक्तः शिवस्मरणतत्परः ।
एवम्विधो गुरुर्वक्ता त्रैलोक्योद्धरणक्षमः ॥ ७ ॥
आदौ पापात्सन्निवर्त्याऽऽशु धर्मम्ब्रू याद्वित्तापत्यसौख्यादियुक्तम् ।
श्रद्धां दृष्ट्वा धर्मसत्कर्मकेषु नैष्कर्म्ये तान्योजयेत्सद्गुरुर्यः ॥ ८ ॥
नैष्कर्म्यधर्मे यदि शुद्धबुद्धिः श्रद्धायुतः स्याद्गुरुप्रसादात् !
तदा हरेर्भक्तियुतान्स्वधर्मानादिश्य देवस्य शिवस्य वार्त्ताम् ॥ ९ ॥
ततोऽतिमुख्यम्भजनं शिवस्य हरेश्च कृत्वा स्ववृषञ्च गौणम् ।
समादिशेद् गुरुमुख्यः क्रमेण हरिम्परात्मानमथो विकल्पम् ॥ १० ॥
संसारदोषैर्विषयेन्द्रियादिदोषैश्च वैराग्ययुतेन चैव ।
खेदं समुत्पाद्य परात्मनिष्ठं कृत्वा गुरुः स्याच्छिवविष्णुरूपः ॥ ११ ॥

निःस्पृहेण गुरुणा जनतायाः शक्यते सकलसिद्धिविधानम् ।
नान्यथा विविधलौल्ययुतेन मोचनं सकलसिद्धिविरुद्धम् ॥ १२ ॥

ऋषयऊचुः

महर्षयोऽपि राजभ्यो गृह्णन्ति गुरुदक्षिणाम् ।
तत्कथं सूत ! जीवस्य ह्यदत्त्वा निष्कृतिः कथम् ॥ १३ ॥

**नीरागसरागयोर्वक्त्रोर्विवेचनम्**

सूतउवाच

वक्ता स रागो नीरागो द्विविधः परिकीर्त्तितः ।
सरागो लोलुपः कामी तदुक्तं ह्यत्र संस्पृशेत् ॥ १४ ॥
नीरागो द्विविधः प्रोक्तो ह्येकः शिष्यपरीक्षकः ।
मयि देवे काशिकायां धर्मेषु विविधेषु च ॥ १५ ॥
प्रीतिरस्य समुत्पन्ना नवेति प्रविचारयन् ।
याचते याज्ञवल्क्यादिरपि ब्रह्मपरः ॥ १६ ॥
परीक्षितुं श्रोतृगुणं स्नेहं स्वस्मिन्करोति वा ।
अन्यस्तु वीतरागो य दत्तात्रेयादि सद्गुरुः ॥ १७ ॥
उपदेशं करोत्येव न परीक्षाङ्करोति च ।
अपरीक्ष्योपदिष्टं यल्लोकनाशाय तद्भवेत् ॥ १८ ॥
वक्तारं नाशयत्येव वागधिष्ठातृदेवता ।
तता विचार्य वक्तव्यं श्रुतिं स्मृत्वा रहस्यगाम् ॥ १९ ॥
अन्यथा श्रावयन्कामाल्लोकात्पतति दुर्मतिः ।
न चात्मानो न लोकाय तदुक्तमपरीक्षितम् ॥ २० ॥

ऋषयऊचुः

कथम्वा याज्ञवल्क्येन दत्तात्रेयेण वा कथम् ।
उपदिष्टम्महाभाग ! केभ्यस्तद्वद तत्त्वतः ॥ २१ ॥

सूतउवाच

आसीद्राजा महासत्त्वो मिथिलायां दृढव्रतः ।
विचारस्तस्य सुमहाञ्जातस्तत्त्वविनिर्णये ॥ २२ ॥
किङ्करोमि कथं ज्ञानी द्विजः समुपलभ्यते ।
जीवादप्यधिकम्वित्तं दास्यामि ज्ञानदे गुरौ ॥ २३ ॥
श्रुतम्मया श्रुतिगणात्परीक्षन्ते महाधियः ।
ज्ञानं श्रेष्ठतमम्वाऽस्य धनम्वा स्नेहभाजनम् ॥ २४ ॥

प्रार्थयन्ति यथाकेचित्पामराः स्नेहभागिनः ।
धनञ्चाऽस्य प्रियस्त्वाऽहंगुरुर्ज्ञानोपदेशकः ॥ २४ ॥
विचार्येति महाराजो जनकः सज्जनाग्रणीः ।
गवां सहस्रमयुतं स्नापयामास चत्वरे ॥ २६ ॥
हिरण्यरूप्यबहुलं कौशेयञ्चामरादिभिः ।
अलङ्कृतं सर्वगुणैरूपेतं घटदोहनम् ॥ २७ ॥

**जनकसम्प्रति याज्ञवल्क्यस्योपदेशः**

आहूय विप्रान्प्राहाऽऽशु जनको जीवकोविदः ।
भवत्सु वीतरागो यो ज्ञानवान्धर्मतत्त्ववित् ॥ २८ ॥
सोऽङ्गीकरोतु गा एता नान्यः संसारदोषकृत् ।
इति श्रुत्वा याज्ञवल्क्यो बभाषे जनकं नृपम् ॥ २९ ॥
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि अधिकार्यसि सत्तम ! ।
जानासि जीवभावन्त्वमात्मनः परमां स्थितिम् ॥ ३० ॥
प्रीतिर्न विद्यते यस्य विषये विषमप्रदे ।
ज्ञानाधिकारमतुलं लभते स महामतिः ॥ ३१ ॥
धनादिस्नेहकृद्यस्तु स पापात्माऽतिवञ्चकः ।
आत्मघाती न शुध्येत श्रुतैः शास्त्रैरनेकधा ॥ ३२ ॥
यस्तु वित्तं तृणीकृत्य धर्मादिषु प्रवर्त्तते ।
तस्य धर्मादयः सिद्धा भवन्त्येव न संशयः ॥ ३३ ॥
अतो गाःससुवर्णाश्च देहि विप्रेभ्य एव च ।
पृच्छ त्वमात्मनः शुद्धं ज्ञानन्दुःखविघातकम् ॥ ३४ ॥

**सूतउवाच**

इति श्रुत्वा याज्ञवल्क्यमुखाद्राजा विवेकवान् ।
ससुवर्णाः पृथक्दत्ता ब्राह्मणेभ्यः परार्थिना ॥ ३५ ॥
याज्ञवल्क्यस्ततः प्रौढो जनकाय महात्मने ।
वदान्यायौपनिषदं ज्ञानम्प्राहाऽधिकारिणे ॥ ३६ ॥
जीवात्मनोर्विभागेन पुनरैक्येन तत्त्वतः ।
प्राह प्रीतो गुरुः सर्वं वेदार्थं सान्वयं शिवम् ॥ ३७ ॥
ततः स राजा जनको ज्ञात्वाऽऽत्मानं गुरोर्मुखात् ।
कृतार्थोऽभूत्प्रसादेन सर्वत्र स्नेहवर्जितः ॥ ३८ ॥

परमात्मन्यद्वितीये परप्रेम्णा नराधिपः ।
रमते गुरुवक्त्राद्धि श्रुत्वा श्रुतिरसायनम् ॥ ३९ ॥
याज्ञवल्क्योऽपि जनकमुपदिश्य महामुनिः ।
गतो यथेष्टं सर्वात्मा गुर्विष्णुपरः सदा ॥ ४० ॥

ऋषयऊचुः

याज्ञवल्क्येन शिष्याय जनकाय परीक्ष्य च ।
दत्तं ज्ञानम्ब्रह्मपरमज्ञानध्वान्तनाशनम् ॥ ४१ ॥
दत्तात्रेयेण मुनिना ह्युपदिष्टा बहिर्मुखाः ।
कथञ्ज्ञाता नरास्तात ! तद्वदस्वाऽनुपूर्व्यशः ॥ ४२ ॥

सूतउवाच

दत्तात्रेयो हरेरंशस्त्रियुगस्त्रिगुणात्परः ।
कलौ च्छन्नोऽतितेजस्वी कदाचिदुपलभ्यते ॥ ४३ ॥
नानावेषैः सुगुप्तार्थो विन्ध्यशैलादिषु स्थितः ।
कदाचिन्नर्मदातीरे चातुर्वर्ण्यजनेषु च ॥ ४४ ॥
मिलितेषु स विश्वात्मा वक्तुं समुपचक्रमे ।
एकः परात्मा प्रकृतेः परः शिवः सत्यः सदानन्दमयः सनातनः ॥४५॥
महानुभावः सकलानुभावः परावरात्मा विकृतेः परः परः ॥ ४६ ॥

**सोपाधिनिरुपाधि ब्रह्मणोवर्णनम्**

अनादिमध्यान्तमनन्यदेकम्ब्रह्मैव भात्यर्थरूपम्विशुद्धम् ।
न चान्यदस्तीह सनातनात्परं विशुद्धविज्ञानघनाच्छिवं शिवम् ॥४७॥
वैष्णवी शक्तिरतुला मायेतीह विजृम्भते ।
देहेन्द्रियादिरूपेण तत्र काऽऽस्थाऽशुभात्मनि ॥ ४८ ॥
किं साधनङ्कश्च साध्यः को वा साधयिता जनः ।
सर्वम्मायेति विज्ञाय निर्व्यापारपरो भवेत् ॥ ४९ ॥
को गुरुः कश्च वा शिष्य उपदेश्यं किमस्ति च ।
यदस्तीह तदस्तीति ज्ञात्वा लोकः सुखी भवेत् ॥ ५० ॥
श्रृण्वन्तु साधवः सर्वे सर्ववेदार्थमादरात् ।
दृश्यमात्मेति विज्ञाय न धर्मादिषु क्लिश्यते ॥ ५१ ॥
सिद्धस्य साधनैस्तुच्छैर्गुरुशास्त्रादिभिस्तु किम् ।
नहि दीपेन सूर्यस्य दर्शनञ्चोपदिश्यते ॥ ५२ ॥

तस्मात्सर्वम्परित्यज्य स्वात्मानमनुचिन्तयेत् ।
अचिन्तितोऽपि भगवान् स एव परिजृम्भते ॥ ५३ ॥

सूतउवाच

इत्यादि वचनैर्लोका धर्मादिपरिवर्जिताः ।
आत्मानुसंधानपरा जाताः साधनवर्जिताः ॥ ५४ ॥
को गुरुः कश्च वावेदः किम्वा शास्त्रं क भावना ।
यदस्तीह तदस्तीह ध्येयं ध्यानञ्च नास्ति सत् ॥ ५५ ॥
विवदन्ते तथाऽन्योन्यं कथं धनपरो भवान् ।
धनपुत्राय गेहादियुक्तः कथमवाप्स्यसि ॥ ५६ ॥
ज्ञानम्विशुद्धम्विगुणं विषयादिविवर्जितम् ।
इति श्रुत्वा बदन्त्यन्य उपहासयुतम्वचः ॥ ५७ ॥
आहारमैथुनाद्यास्तु देहधर्माः पृथग्विधाः ।
तत्र दृष्टिर्न कार्या हि यत्करोति करोतुतत् ॥ ५८ ॥
आत्मैव वर्त्तते नान्यद्विकारपरिकल्पितम् ।
वन्ध्यापुत्रद्वयोर्युद्धं यथा नास्ति विचारतः ॥ ५९ ॥
आहारमैथुनादीनि देहकार्याणि वस्तुतः ।
न सन्ति विमलाकाशे चिदानन्दे परेऽव्यये ॥ ६० ॥
एवम्विवदमानास्ते देहगेहादितत्पराः ।
वैराग्यवार्तामपि नो शृण्वन्ति कथयन्त्यपि ॥ ६१ ॥

ऋषयऊचुः

भगवान्वेदमर्यादास्थापनाय शरीरभाक् ।
कथमेवम्विधम्ब्रह्मरहस्यमुपदिष्टवान् ॥ ६२ ॥
सर्वसाधारणङ्कृत्वाऽनधिकारिजनाय हि ।
तद्वदस्व महाभाग ! महाकौतूहलं हि नः ॥ ६३ ॥

**ज्ञानप्रतिपालनविषयमहत्वर्णनम्**

सूतउवाच

ईश्वरः सत्यमेवेह वदत्येव न चान्यथा ।
लोकोऽजितेन्द्रियः श्रुत्वा नश्यत्येव न संशयः ॥ ६४ ॥
अवतारैर्भगवतो ज्ञानमेव निरूप्यते ।
ऋषभाद्यैः स्वाधिकाराभावान्नाशङ्कितानराः ॥ ६५ ॥

दत्तात्रेयेण मुनिना सत्यमेव न संशयः ।
उपदिष्टं सत्ययुगे गृहीतं स्वाधिकारतः ॥ ६६ ॥
जनैस्तदेव त्रेतायामन्तःकरणशुद्धितः ।
गृहीतं द्वापरे तद्धि ज्ञानम्विषयमिश्रितम् ॥ ६७ ॥
प्रकाशितेन सुखदं भेददृष्ट्या निराकृतम् ।
विषयात्मनामशान्तानामवेदपथमीयुषाम् ॥ ६८ ॥
कलौ नाशाय भवति ज्ञानमार्गोऽशुभात्मनाम् ।
दत्तात्रेयेण मुनिना स्वाधिकारेण वर्णितम् ॥ ६९ ॥
अधिकारविहीनानां तदेवाऽसुखदम्महत् ।
केनाऽभिप्राययुक्तेन मुनिना वेदरूपिणा ॥ ७० ॥
निरूपितमभिप्रायस्तस्य न ज्ञायते बुधैः ।
अन्यैर्विचार्यं वक्तव्यमधिकारानुरूपतः ॥ ७१ ॥
साधारण्येन कथयन्नन्यायैः संयुतो भवेत् ।
अधिकारविशुद्धाय ज्ञानदः सर्वदः स्मृतः ॥ ७२ ॥
अधिकारविहीनाय वदन्नरकमृच्छति ॥ ७३ ॥

ऋषयऊचुः

उपदेशक्रमम्ब्रूहि ज्ञानस्य परमात्मनः ।
श्रोतुर्हृदि यथा तिष्ठेद्विक्षेपादिविवर्जितम् ॥ ७४ ॥

सूतउवाच

आदौ धर्मकथाः श्राव्यास्त्रिवर्गफलदायकाः ।
तत्राऽनित्यत्त्वकथनाद्विरागो जायते नृणाम् ॥ ७५ ॥

**समेषां ज्ञानकर्मोपास्तिकर्तॄणां काश्यामन्तर्भाववर्णनम्**

निवृत्तिधर्मनिरता लोका ज्ञानाधिकारिणः ।
देहाद्यनासक्ततमं ज्ञात्वाऽऽत्मानमुपादिशेत् ॥ ७६ ॥
यस्य भक्तिर्भगवति गुरौ परमपूरुषे ।
तस्य श्रुतम्फलत्यत्र नाऽन्यस्य विकृतात्मनः ॥ ७७ ॥
सर्वाणि शास्त्राणि समस्तधर्मान् सर्वाः कलाः सर्वगुणान्यथेष्टम् ।
सुधार्मिकेष्वेव वदेत्समस्तं ज्ञानम्विरक्ताय हरिप्रियाय ॥ ७८ ॥

वर्णात्मकेषु मन्त्रेषु गुरुशिष्यव्यवस्थया ।
प्रवृत्तिरुक्ता महती सावधानैर्महात्मभिः ॥ ७९ ॥
अतो विचार्यं कालेन महता धार्मिकेषु च ।
वक्तव्यं ज्ञानमतुलं जगदात्मप्रबोधनम् ॥ ८० ॥
आयुः स्वल्पमिति ज्ञात्वा कलावुपदिशन्ति ये ।
अधिकारविहीनाय वञ्चका धनलोलुपाः ॥ ८१ ॥
पतन्ति गर्भवासेषु ते स्वात्मपरवञ्चकाः ।
नहि व्यापृतचित्तानां ज्ञानं समुपदिश्यते ॥ ८२ ॥
खेदो विरागः सन्तोषः कामादिमलकर्त्तनम् ।
दृश्यन्ते यत्र चैतानि मुमुक्षा च हरौ रतिः ॥ ८३ ॥
तस्मिन्नभिन्ने सत्पात्रे क्षिपेज्ज्ञानामृतम्महत् ।
विष्णुभक्तिस्तु महती निष्पापा काशिकास्थितिः ॥ ८४ ॥
उपदेश्या मोक्षहेतुः सर्ववर्णाश्रमेषु च ।
सर्वेऽधिकारिणो लोकाः पापव्यसनवर्जिताः ॥ ८५ ॥

## काशीभोगमोक्षप्रदायिकेतिवर्णनम्

मुमुक्षवः सुखेन स्युः काशीवासे शिवाज्ञया ।
न काशी सदृशङ्किञ्चित्साधनम्विद्यतेऽनघाः ॥ ८६ ॥
शास्त्रमार्गेण बसतामिहाऽमुत्र न दुर्लभः ।
मोक्षः साधनसङ्घैर्हि प्राप्यते न तु यः क्वचित् ॥ ८७ ॥
अहो विचित्रा महती महाश्चर्यमयी स्थली ।
यत्र सर्वे म्रियमाणैर्मोक्ष एव प्रलभ्यते ॥ ८८
विश्वेश्वरोऽप्यात्मरतः परात्मा विश्रामसौख्यं लभते यदत्र ।
बिश्रामहीनाः खलु मानवा ये ते किञ्चनन्या जठरे न सन्ति ? ॥ ८९ ॥
अहो भवानीसदने निषीदताम्प्रदक्षिणीकृत्य यथा यथा सुखम् ।
न तत्सुखं योगयागादिसाध्यमम्बा पुरः प्राणभृतां यदाबिः ॥ ९० ॥
दीनम्वदान्यम्महदल्पकम्बा पुण्यम्महापातकसंयुतञ्च ।
आराधिता समतां सम्विधत्ते दयापरा भोगमोक्षैकहेतुः ॥ ९१ ॥
न ये भवानीम्भवभावभञ्जनीं भजन्ति भावेन भवार्णवे भवाः ।

भजन्ति ते सौख्यसमाधिभाजः कथञ्च चिन्तारहिताः समन्ततः ॥९२॥
चिन्तितार्थपरमार्थदायिकां नायिकाम्परमशङ्करस्य च।
ब्रह्मविष्णुऋषिशेषसेवितां ताम्पराम्भजत भावभाविताम् ॥ ९३ ॥
अहो चरित्रं जगदम्बिकाया विचित्रमायैरपि दुर्विभाव्यम्।
काश्याः प्रदेशे खलु संस्थिताऽपि स्वभक्तमाद्या प्रकरोत्यनन्तम् ॥ ९४॥
गृहं न काशीसदृशं सुखाय पिता न विश्वेशसमः कचिद्भवेत्।
माता भवानीसदृशी न गर्भदा कुटुम्बमत्रत्यजनो जनार्दनः ॥ ९५ ॥
क्षेत्रेऽबिमुक्ते जगतामथाऽम्बिकां पश्यन्ति नित्यं सुकृतैः प्रचोदिताः।
तांस्तान्प्रपश्यत्यथ सा जगन्मयी स्वचक्षुषा येन च ते सुचक्षुषः ॥ ९६ ॥
भोगार्थिनो दीनजनं समाश्रिता मोक्षार्थिनो बन्धनकोटियुक्तम्।
भोगञ्च मोक्षञ्च ददाति सत्कृता शिवा शिवानन्दमयो जगज्जनिः ॥९७॥
महान्ति पापानि सुदुर्धराणि फलानि तेषातिदारुणानि।
भवन्ति मातुः पुरतो न यैर्हि निवेदितं दुःखमदुःखिनः किम् ॥९८॥
परः परात्मा परया मुदा यामाश्लिष्य चाहावसरो न एषः।
प्रदर्शयामास निरिन्द्रियस्य स्वात्मन्रतेर्जीवविभावभावम् ॥९९॥
स्तुतिम्प्रकुर्वन्ति महानुभावा नित्यं सदानन्दमया जनन्याः।
त्वम्ब्रह्मविद्या भजताञ्जनानामभक्तिभाजां किल कालरात्रि ॥१००॥
देहादिसंसक्तधियाम्बिमोहिनी माया परानन्दमयी ह्यतद्धियाम्।
शिवे शिवानन्दमयि त्र्यधीश्वरी! श्रीपार्वति! ज्ञानघनेऽम्बिके! शिवे!॥
मातर्विशालाक्षि! भवानि! सुन्दरि! त्वामन्नपूर्णे! शरणम्प्रपद्ये।
शिवां शिवानन्दमये शिवालये ये भक्तियुक्ताः सततम्भवानीम् ॥१०२॥

**शिवाज्ञापालने समेषां वेदानां काशीस्थितिवर्णनम्**

स्मरन्ति शृण्वन्ति गृणन्ति नित्यशो यजन्ति ते दुर्गतिपारगामिनः।
शिवः शिवाज्ञाम्प्रतिपालयेत्सदा विशाखढुण्ढी हरिकेशकेशवौ ॥१०३॥
श्रीकालराजः प्रमथाधिपास्तथा नन्दीशभृङ्गीशमुनीशसूर्याः।
सर्वे यदाज्ञाप्रसमीक्षका मुहुः काश्यां स्थितिम्प्राप्नुवते सुखाय ॥१०४॥
सुरासुराः कामहता मनुष्या विद्याधराः किन्नरयक्षसिद्धाः।
नागामृगाः स्थावरजङ्गमाश्च सर्वे वसन्त्यत्र तस प्रसादात् ॥१०५॥
आहारमारोग्यमविघ्नवासं सम्प्राप्नुवन्ते गणितान्दयान्ते।
तस्मान्न दैन्येन धनेन वा स्याद्दासः सतान्त्वच्चरणार्चनेन ॥१०६॥

श्रीमद्भवानीसदनं समाप्य प्रदक्षिणीकृत्य तथाऽष्टवारम् ।
स्तुतिम्प्रकुर्वन्ति नरोत्तमा ये प्रकृष्टगन्धादिभिरुत्तमास्ते ॥१०७॥
ते तत्कृतम्प्राप्य मुदा मुकुन्दब्रह्मेन्द्रतुल्याः सुखिनो भवन्ति ॥१०८॥
जय जय जगज्जननि ! जगज्जम्बालजालनिवारिणि !
जाताजातविद्यमानजन्तुजातजीवातुलते
जय जय यज्ञादिसकलधर्मफलप्रदे !
जय जय महादेवि महादेवप्रिये महाफलप्रदे !
महाक्षेत्रनिवासिनि ! महापातकौघतूलदहनकृपावलोके ! ॥१०९॥
जय जय भवानि भवप्रिये भावाभावितभावभक्तभवे !
जय जय पार्वत्यपर्णे पर्णपुष्पफलप्रदानदारितदारिद्रयपञ्जरे
जय जय उमे उत्तमोत्तमसेवितचरणकमलनखकिञ्जल्कप्रभे
जयजयाऽन्नपूर्णे अन्नप्रदाननिरते अन्नार्थिसङ्ग्रहपरे !
अन्धबधिरपङ्गुपतितमहापापिशरणागतत्राणनिरते ! ॥११०॥
मोक्षार्थिनाम्मोक्षदनामधेया धर्मार्थिनां धर्मदचिन्तनाद्या ।
अर्थार्थिनामर्थदपादपद्मा कामार्थिनां कामदकल्पवल्ली ॥१११॥
उद्यद्भास्करसन्निभां त्रिनयनां माणिक्यवर्णां शिवाम् ।
पाशञ्चाऽङ्कुशमिक्षुचापमनिशम्बाणान्दधानाम्परां
ध्यात्वा कल्पलतां समस्तफलदां नित्यान्नितान्तप्रियाम्
विश्वेशस्य विनायकस्य जननीं गौरीं नमेद्यो नुताम् ॥११२॥

## काश्याम्मुक्तिप्राप्तिवर्णनम्

ये येऽविमुक्ते श्रुतिमातरं शिवां शिवाङ्कगां साधितभक्तकार्याम् ।
आर्याम्भजन्ते परमादरेण दारिद्रयबन्धादिभयं न तेषाम् ॥११३॥
सर्वतीर्थमयी गौरी सर्वदेवमयी शिवा ।
सर्वधर्ममयी नित्या पूज्या काश्याम्विशेषतः ॥११४॥
तीर्थानि सर्वाण्यवगाहितानि यैः कोटिशः पुण्यपरैः कृतार्थैः ।
ततोऽधिकं काशिकायां लभन्ते फलम्विगाह्याऽऽशु तितीर्षवोऽत्र ॥११५॥
ततोऽपि कोटिगुणितमन्तर्गेहप्रदक्षिणम् ।
अन्तर्गेहाद्बहुगुणं भवानीक्षेत्रदक्षिणम् ॥११६॥

प्रदक्षिणीकृता येन महापातकनाशिनी ।
अष्टवारं सुकृतिभिर्न तेषां भ्रमणम्भवेत् ॥११७॥
पत्रम्पुष्पं फलन्तोयं यत्किञ्चित्सुसमर्पितम् ।
तदक्षयफलम्विप्रा भगवत्यै भवाज्ञया ॥११८॥
काश्याम्भवानीम्विभवैर्यजन्तो भवन्ति भावैर्भवपाशमुक्ताः ।
युक्ताः समस्तैः पुरुषार्थसङ्घैर्भवन्ति न भ्रान्तियुजः कदाचित् ॥११९॥
भवानी पूजिता भीतिं नाशयत्येव नाऽन्यथा ।
काश्यान्तेषाम्महाशान्तिर्जीविते जीवितेतरे ॥ १२० ॥
भर्त्ता सदानन्दमयः परः शिवः पुत्रः सदा विघ्नहरो गणाधिपः ।
आज्ञाकरो दण्डपाणिस्तु यस्याः सा किं न यच्छत्यनुकूलदात्री ॥ १२१ ॥

## मातृकाशिकायाश्च महत्ववर्णनम्

काश्याम्पापकृतो यो हि श्रुत्वा काशिकथामृतम् ।
पश्चात्तापेन संयुक्तो भवानीम्भावयेद्वशी ॥ १२२ ॥
न करोति पुनः पापं मुक्तो भवति तत्क्षणात् ।
यातनास्तस्य नश्यन्ति कालभैरवचिन्तिताः ॥ १२३ ॥
श्रीमद्भवानीम्भवपाशभञ्जनीं सेवन्ति ये भावयुता भवाब्धिम् ।
तरन्त्यवश्यन्तरुणार्कसंनिभा भवन्ति भाभिर्गतकल्मषाश्च ॥ १२४ ॥
मातरो भवभयैकभेषजञ्जन्तवः कृतरुजः स्वयम्बत ! ।
इन्द्रियैर्विषयदोषदूषितैः सङ्गता नहि नमन्ति मातरम् ॥ १२५ ॥

# अथैकविंशोऽध्यायः

## गङ्गामहिम्नि समुपोद्घातवर्णनम्

सूतउवाच

व्यासेन तु पुरा प्रोक्तं नीचानामपि सत्तमाः! ।
वस्तूत्तमंकंचित्प्राप्य नाऽश्रमे रमते मनः ॥ १ ॥
मुनिभिस्तु पुरा पृष्टो व्यासो भागीरथीतटे ।
प्राह काशी कथां दिव्यां मुनीनामभिश्रृण्वताम् ॥ २ ॥

व्यासउवाच

श्रृण्वन्तु मुनयः सर्वे मुक्तिवीजमनुत्तमम् ।
श्रद्धावते विरक्ताय गुरुभक्ताय साधवे ॥ ३ ॥
देयमेतत्कथारत्नं श्राव्यं श्रवणमङ्गलम् ।
काशीरहस्यमतुलं नानारत्नसमुद्गकम् ॥ ४ ॥
काशी दृष्टा येन पुंसा सुरार्च्या द्रष्टुं चाऽन्यं नेच्छते रूपवच्च ।
श्रोत्राभ्याम्वै यैः श्रुता काशिवार्ता तेषां श्रोत्रं श्रोतुमन्यन्न चैति ॥ ५ ॥
ये काशीगुणवर्णनेष्वभिरता स्तेषां न जिह्वा पुर्नानिः–
सारञ्जनजन्मजीवनमृतिप्रायम्पुनर्वर्णयेत् ।
येषाम्पादयुगम्विसर्पति मुदा श्रीकाशितीर्थेष्वहो ।
तेषां चङ्क्रमणं सुखाय न भवेत्कैलासलोकेष्वपि ॥ ६ ॥
मनसा यैः काशिकायाः स्मृतमौदार्यमार्यकैः ।
तेषाम्मनो न स्मरति स्मरारि नगरीम्विना ॥ ७ ॥
काशी काशीति काशीति रसनारससंयुता ।
यस्य कस्याऽपि भूयाच्चेत्स रसज्ञो न चाऽपरः ॥ ८ ॥
श्रृण्वन्तु रसिकाः सर्वे रसस्य परमां स्थितिम् ।
यामाश्रित्य रसः सम्यग् ज्ञायते रसकोविदैः ॥ ९ ॥
पुरा देवासुरैः सर्वैर्मंथितः क्षीरसागरः ।
तत्र रत्नानि बहुधा जातानीश्वरलीलया ॥ १० ॥

धन्वन्तरिकरात्कुम्भं गृहीत्वा सुरदानवाः ।
अमृतस्याऽर्थे जहसुः सुराम्पातुं सद्यमुताः ॥ ११ ॥
स्त्रीरूपमादाय जनार्दनेन कराद्गृहीतः कलशोऽमृतस्य ।
तेषां सुरान्पाययदात्मतन्त्रः सुधां सुरां दानवदैत्यवर्यान् ॥१२॥
अथ तेषु पिबत्स्वादौ सुधां सुरवेषु च ।
सैंहिकेयो वञ्चितांस्वान् ज्ञात्वा देवेष्वथाऽऽगमत् ॥ १२ ॥
प्रविश्य दीनवदनो माम्पायय सुधां हरे ! ।
प्रपन्न ! पालनपर ! प्रपन्नम्पातुमर्हसि ॥ १४ ॥
वेषैस्तपोभिर्मनुयन्त्रतन्त्रैर्मायाभिरन्याभिरपि स्वधीभिः ।
न वञ्चितुन्त्वामलमत्रकश्चित्तस्माच्छरण्यं शरणम्प्रपद्ये ॥ १५ ॥
इत्युपांशुवचो राहोः श्रुत्वाऽमृतमपाययत् ।
अखण्डितज्ञानवपुः परमात्मा जनार्दनः ॥ १६ ॥
देवपङ्क्तौ प्रविष्टा ये ते विष्णुम्परिचक्षते ।
ये दैत्यदानवगतास्ते पश्यन्ति विमोहिनीम् ॥ १७ ॥
अर्धपीतेऽमृते राहुः पुष्पवद्भ्यां प्रसूचितः ।
तदैव तीक्ष्णधारेण शिरश्चिच्छेद सत्पतिः ॥ १८ ॥
द्विधाकृतोऽपि दैत्योऽसौ जीवनं न जहौ पुनः ।
ग्रहेषु हरिणा युक्तः स आस्ते ह्यमृतं स्मरन् ॥ १९ ॥
कदाचिद्दानवा दैत्या मिलिताः पानकर्मणि ।
राहुमाहूय ते चोचुः पीयतामासवस्मधु ॥ २० ॥

राहुरुवाच

नाहन्पिबान्यासवं हि मादकं ज्ञाननाशकम् ।
पीत्वा पीयूषममलं कः पिबेदासवम्पुनः ॥ २१ ॥

दैत्याऊचुः

विना मांस विना मद्यं न क्षणस्तेचगच्छति ।
स्वल्पेनाऽमृतपानेन बहुमद्यन्त्यजस्यहो ॥ २२ ॥

राहुरुवाच

न विस्मरेऽहममृतं क्षणार्धमपि भोः सुराः ।
पाताऽमृतस्य जानाति स्वादं नान्यः कदाचन ॥ २३ ॥

यस्मिन्मुखे विनिः क्षिप्तममृतं विष्णुनाऽऽदृतम् ।
यस्मिन्न पावनं मद्यं कथं दद्याम्वराकवत् ॥ २४ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्तास्ते सुरा जग्मुरुपहस्य तमुद्धताः ।
अहोऽतिमूर्खोऽयं राहुः स्वल्पं पीत्वा बहूज्झति ॥ २५ ॥
अतएव रसो येन यत्र प्राप्तः शुभे शुभे ।
तत्रैव रमते नित्यमविचार्यं पुनः पुनः ॥ २६ ॥
सतान्त्वधिकमेतद्धि बिचारणवतान्नृणाम् ।
यद्वेदशास्त्रोक्तरससेविनाङ्काशिवासिनाम् ॥ २७ ॥
देहेन्द्रियादिभिर्यैस्तु सेविता काशिका नृभिः ।
तेषामन्यरुचिश्चेत्स्यादाश्चर्यङ्किमतःपरम् ॥ २८ ॥
राहुर्दैत्यः सुरापश्च देवब्राह्मणनिन्दकः ।
स दैवादमृतम्प्राप्य न स्मरत्यन्यसौरसम् ॥ २९ ॥
किन्तु यैः काशिका दृष्टा स्तुता चोक्ता च सेबिता ।
तेऽपि चेत्काशिकां शुद्धां ब्रह्मामृतरसस्तुतिम् ॥ ३० ॥
न सेबन्ते सर्वरसां नीरसास्ते नराधमाः ।
आदिमध्याबसानेषु सरसा सूरसा त्वियम् ॥ ३१ ॥

## गङ्गामाहात्म्यवर्णनम्

काशिका सर्वरसिकैः सेव्या प्रार्थ्या त्वहर्निशम् ॥ ३२ ॥
काश्याङ्गङ्गा सेवनीया प्रयत्नैः सर्वैर्लोकैः सिद्धिसङ्घैर्दुरापा ।
दृष्टा स्पृष्टा स्नानपानादिभिश्च मोक्षद्वारं सम्प्रयच्छेद्वृपाढ्या ॥ ३३ ॥
पवित्रमाद्यं स्वयमेव गङ्गा पुनश्च्युता विष्णुपदात्ततोऽपि ।
ब्रह्मादिलोकादपि मूर्ध्नि शम्भोर्निपातनाद् भूतिसुपाण्डुराङ्गी ॥ ३४ ॥
उल्लङ्घ्य मार्गञ्च भगीरथस्य काश्याम्प्रविश्याऽप्यविमुक्तमन्तः ।
बाराणसीमध्यगतेष्वशेषकूपेषू चाप्लुत्य सरस्सु देवी ॥ ३५ ॥
महत्सु चाल्पेषु च पल्वलेषु तत्स्थासु नदीषु पुण्या ।
आराध्य लिङ्गान्यपि तत्र तत्र शम्भोः स्वयम्भूतिपवित्रभूता ॥३६॥
देवीमिमां शर्वकृतोपदेशात्संस्थाप्य लिङ्गञ्च शिवं स्वनाम्ना ।
पुनस्तदन्तेऽपि समस्तभावैराराध्य विश्वेश्वरमार्ययैव ॥३७॥
मनोरथं सूर्यगुरोः स्मरन्ती प्रतिश्रुतन्तत्स्वयमात्मनाऽपि ।
इहैव दिव्या वपुषा स्थिताऽपि प्रवाहतस्तेन ययौ सहैव ॥३८॥

स्नानं शिवाभ्यास्विधिना च कर्त्री महाह्रदेऽस्मिन्मणिकर्णिसंज्ञके ।
विश्वेश्वरौ तावनुपूजयन्ती परैव भक्त्याऽखिल देवताभ्याम् ॥३९॥
यज्ञार्थिनां यज्ञफलं यदत्र तीर्थार्थिनां तीर्थफलम्पवित्रम् ।
योगार्थिनां योगफलम्महत्तदा दानार्थिनां दानकृतम्फलं स्यात् ॥४०॥
गङ्गायां काशिसम्बन्धाद्विशेषेण तु लभ्यते ।
प्रायश्चित्तफलं सर्वश्चतुर्वर्गफलञ्च यत् ॥४१॥
ब्रह्मविष्णुशिवदेवरूपिणी सर्वंज्ञफलदा शिवप्रदा ।
सर्वदानजपभोगमोक्षदा गङ्गया नहि समञ्जगत्त्रये ॥४२॥
गङ्गामनाराध्य जगत्प्रसूतिं प्रसूतिमुक्तः कथमातुरःस्यात् ।
ब्रह्मद्विषाम्व्याकुलमानसानामयोगिनाम्व्यापृतगात्रवाचाम् ॥४३॥
दरिद्रदीनान्धकुकर्मिणाञ्च गङ्गैव निस्तारगणेषु मुख्या ।
गङ्गा सुतीर्थैः परिसेवितेयमाद्याऽविमुक्तम्परिसेवते या ॥४४॥
सुदुर्लभं श्रद्धया मानुषाणां गङ्गाऽपराधै रहिता नितान्तम् ।
काश्यां गङ्गा प्राप्यते पुण्यभारैर्विश्वेशस्याऽनुग्रहः साधु चेत्स्यात् ॥४५॥
तेषां श्रद्धा जायते मोक्षहेतुर्गङ्गैवात्मा मोक्षहेतुर्जलात्मा ॥४६॥

**गङ्गामाहात्म्ये पाण्डयदेशाधिपस्य पुण्यंकोर्तेराज्ञः कथानकम्**

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासम्पुरातनम् ।
गङ्गामाहात्म्यसंयुक्तं श्रृण्वन्तु परमर्षय ! ॥४७॥
पाण्डयदेशाधिपो राजा पुण्यकीर्तिरितिश्रुतः ।
विविधानि पुराणानि चेतिहासानथाऽश्रृणोत् ॥४८॥
विद्याः काव्यानि सद्वृत्तः श्रृणोति स निरन्तरम् ।
सर्वशास्त्रेषु गङ्गैव महद्भिः प्रतिपाद्यते ॥४९॥
गङ्गैव पुरुषार्थो हि सर्वसारविचारिणाम ।
मनुष्यदेहं सम्प्राप्य यदि गङ्गा न सेविता ॥५०॥
गर्भवासादिशमनं न तेषां जायते क्वचित् ॥५१॥
गङ्गैव धर्मः खलु मोक्षदायी गङ्गासुखञ्चार्थरूपाऽपि गङ्गा ।
चतुर्विधस्याऽपि सुखस्य दात्रीं गङ्गाम्भजेद्विष्णुशिवप्रियो यः ॥५२॥
इति श्रृण्वन्पठन्राजा गङ्गाजलनिषेवकः ।
स्नानभोजनपानादीन्सर्वङ्गङ्गाजलेन हि ॥५३॥

करोति श्रद्धया युक्तो गङ्गास्मरणतत्परः।
एवं स राजा गङ्गात्मा सर्वावस्थासु तत्परः ॥५४॥
चकार साक्षात्त्रिस्रोतां वरम्वरयभाषिणीम् ॥५५॥

राजोवाच

यदि देयो वरो मह्यं देवि! प्राप्तिम्वदस्व तत्।
येन त्वाम्प्रत्यहम्मातः पश्याम्यमृतरूपिणीम् ॥५६॥

गङ्गोवाच

प्रत्यहं देवतानाञ्च दर्शनं न भवत्यलम्।
कदाचिद्दूरकालेन दर्शयन्तीह देवताः ॥५७॥
प्रत्यहं राजशार्दूल! दर्शनन्त्वं यदीच्छसि।
तदा मद्गृहमागच्छ भविष्यति न संशयः ॥५८॥

राजोवाच

ब्रह्माण्डसूत्ररूपिण्याःकाऽऽस्तेगेहं तवाऽथंदे !।
ब्रह्माण्डानामनेकानामाधारः प्रकृतिः परा ॥५९॥
त्वमेव सर्वंजगतां चिच्छक्तिः साधुसम्मता।
त्वया ततमिदं देवि! जगदात्मस्वरूपया ॥६०॥
ब्रह्मविद्यागृहम्मातर्न दृष्टं न मया श्रुतम्।
तद्गृहं ज्ञातुमिच्छामि यत्र त्वाम्प्रत्यहन्त्वहम् ॥६१॥
पश्यामि सर्वंजगतां मातरम्मानवर्जिताम् ॥६२॥

**पाण्डयराज्ञाराज्यभारसमर्पणानन्तरं काश्यां नित्यपरिचर्यावर्णनम्**

गङ्गोवाच

ब्रह्माण्डव्यापिका चाऽहमवश्यं राजसत्तम!।
तथाऽपि काश्याम्मद्गेहं रमे भर्त्रा सुसङ्गता ॥६३॥
काश्यां सर्वात्मना विष्णुः शिवौ सूर्यो विधिस्तथा।
अन्येऽपि देवप्रवरा ऋषयो योगिनस्तथा ॥६४॥
वसन्ति काश्यां सततं परब्रह्मसुखार्थिनः।
जितेन्द्रियाणां शान्तानां विषयग्रस्तचेतसाम् ॥६५॥
जायते परमानन्दो ह्यकल्मषधियां सदा।
गच्छ राजन्काशिपुरीं मां द्रक्ष्यसि निरन्तरम् ॥६६॥

पुत्राय राज्यम्विनिवेद्य सद्धनं प्रगृह्य निर्विण्णमनाः सभार्यः ।
गत्त्वाऽविमुक्तेश्वरपूजकः सुखन्तिष्ठस्व काश्यां विजितेन्द्रियारिः ॥६७॥
पश्यन्ति सर्वे मनुजाः सर्वान्देवांश्छिवालये ।
स्वल्पायासेन सत्क्षेत्रसामर्थ्येन गतक्लमाः ॥६८॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता गङ्गारूपिणी भक्तवत्सला ।
राजाऽपि गङ्गावचनं श्रुत्वाऽऽश्चर्यसमन्वितः ॥६९॥
गजवक्त्रमनुस्मृत्य काशीङ्गन्तुं समुद्यतः ॥७०॥
पुत्राय राज्यम्विनिवेद्य भार्यया गङ्गां स्मरन्काशिवासाभिलाषी ।
चचाल गेहात्सुसमृद्धिपूरिताद् गङ्गान्दिदृक्षुः सततं सिद्धिरूपाम् ॥७१॥
स पुण्यकीर्त्तिः सुसमेत्य काशीं स्त्रिया स्वभृत्यैः परमर्षिभिश्च ।
स्नात्वाऽपराह्णे स च विष्णुपद्यां देवन्ददर्शाऽऽर्तिहरं हरिञ्च ॥७२॥
सर्वस्वम्ब्राह्मणेभ्यश्च ददौ राजा महामनाः ।
भृत्यवर्गम्विहायाऽत्र महिष्या सह तस्थिवान् ॥७३॥
गङ्गास्नानं त्रिषवणं चकार श्रद्धयान्वितः ।
पूजनं स्मरणं सेवां गङ्गायाः श्रवणन्नतिम् ॥७४॥
पुण्यकीर्त्तिर्महापूजां करोति विधिपूर्वकम् ।
एवं राजा भजन्नित्यं ददर्श सुरनिम्नगाम् ॥७५॥
प्रसन्नवदनाङ्गङ्गां वरदाऽभयसत्कराम् ॥७६॥
उवाच राजन्वरयस्व कामान् सम्प्रार्थितान्देवगणैरलभ्यान् ।
काश्यामप्रपश्यस्व महानुभावान् देवानृषीन्वरदाम्माञ्च विद्याम् ॥७७॥

राजोवाच

पश्यामि मातर्वरदाम्भवाब्धिनावम्विचित्राम्भवपारनेत्रीम् ।
सुदर्शनस्पर्शनचिन्तनाद्यैः कृतः कृतार्थो ह्ययमीश्वरि ! त्वया ॥७८॥
पश्यामि देवांश्छिवविष्णुधातृगणेशसूर्यप्रभृतीन्पुरस्ते ।
तव प्रसादात्पुरुषार्थदायिनि ! त्वया कृतार्थोऽस्म्यनघेऽघहारिणि ! ॥७९॥

गङ्गोवाच

न मत्प्रसादो न तवोद्यमोऽयं श्रीकाशिकायाः परमः प्रभावः ।
यदत्र देवा मुनयः सुसंयुतास्तिष्ठन्ति दृश्याः सुजितेन्द्रियाणाम् ॥८०॥

राजोवाच

अहो माहात्म्यमतुलं काश्याः सर्वसुरप्रियम् ।
त्वच्चाऽपि वा दिवारात्रं स्मरस्याद्याञ्जगज्जनिम् ॥८१॥
केयङ्काशी किम्प्रभावा केनाख्याता कियत्स्थितिः ।
केन प्राप्या किम्प्रयच्छत्यहो मातः! प्रकथ्यताम् ॥८२॥

गङ्गोवाच

चित्कला काशिका तात! प्रभावोऽस्या विमोचनम् ।
विष्णुनाऽऽख्यातिमायाता पञ्चक्रोशात्मकस्थितिः ॥८३॥
जितेन्द्रियैर्धर्मपरैः प्राप्यायच्छति शाश्वतम् ॥८४॥

राजोवाच

प्रभावश्रवणेच्छा मे प्रवृत्ता त्वन्मुखात्परम् ।
नान्यम्वरम्वृणे मातः! काश्याः शंस कृपावति! ॥८५॥

## गङ्गापुर्ण्यकीर्ति सम्वादवर्णनण्

गङ्गोवाच

न मया वर्णितुं शक्या काशी वर्षशतैरपि ।
तथाऽपि तव मन्तुष्ट्यै वर्णयामि शृणुष्व तत् ॥८६॥
पवित्रमाम्नायसहस्रगम्यं यद्ब्रह्म संसाधयितुम्प्रयत्नः ।
देवद्विजब्रह्मसुदेवतानां काशीस्वरूपं सुलभन्तु सम्यक् ॥८७॥
उमासहायः शशिशेखरोऽत्र लक्ष्मीसहायो मधुसूदनोऽत्र ।
धर्मः सुखं शान्तियुतं यदत्र ह्यतोऽविमुक्तं परमम्पदं यत् ॥८८॥
यज्ञार्थिनां यज्ञफलं यदत्र तीर्थार्थिनां तीर्थफलम्पवित्रम् ।
योगार्थिनां योगफलं नृपेश! दानार्थिनां दानफलम्विशिष्टम् ॥८९॥
भवेदवश्यं नहि संशयो शुभः काश्याङ्कृतो देवपराभवस्स्यात् ।
देवम्पराभूय जगद्गुरुं हरिं स यात्यवश्यं नरकानशेषान् ॥९०॥
काशिका सकलतीर्थसेविता काशिका सकलदेवपूजिता ।
काशिका सकलशास्त्ररूपिता काशिका परपदप्रकाशिका ॥९१॥
स्थितिः काश्यां येषां परमसुखसन्तानसुखिनाम् ।
सतां सङ्गान्नित्यं हरिहरकथास्वादजुषाम् ।
भवेदेकान्ते यैर्विविधजनवादादिरहिते
विविक्ते तैःप्राप्तं शिवमखिलसौख्यैकनिलयम् ॥९२॥

शान्ताः सज्जनवृत्तयः सुमनसस्सारङ्गसङ्गान्विताः
सेवन्ते सततं शिवौ शिवपरा विष्णुप्रियाः साधकाः ।
सामान्यव्यवहारदूरमनसः सम्प्रार्थिताः सौख्यदाः
सारासारबिवेकयुक्तमनसो ब्रूयुर्यदत्राऽस्ति तत् ॥९३॥
आस्वादनपरा ये च काशिजम्परमामृतम् ।
त एव पृष्टा यद्ब्रूयुस्तत्सुखम्मोक्षलक्षणम् ॥९४॥
नहि व्यापृतचित्तानां लुब्धानां कामकामिनाम् ।
प्रकाशते परम्ब्रह्म शान्तसाध्यं दुरात्मनाम् ॥९५॥
राजा ग्रीष्मे भ्राष्ट्रदाहकर्त्ता सिंहासनस्थितः ।
कथं राज्ये सुखन्तस्य वह्नौ निपतितन्य च ॥९६॥

**गङ्गाकाशीमाहात्म्यवर्णनम्**

योगैर्यज्ञैस्तोर्थसद्वृत्तदानैर्लोकस्याऽऽत्मा साधनैर्व्याकुलःस्यात् ।
काश्यां शान्त्वा संस्थितानां नराणां मुख्या शान्तिर्जायते नेतरेषाम् ॥९७॥
न भोगभूमिः किल काशिकेयं न धर्मबन्धोऽर्थलवोऽपि नाऽत्र ।
मोक्षोऽपि नानाबिधसाध्यसिद्धैर्न साध्यतेऽन्यत्र यथा दुरापः ॥९८॥
भोगबुद्ध्या सुरापानं परदाराभिवर्षणम् ।
निक्षेपग्रहणं स्वर्णद्रोहः सर्वस्य चाऽपि हि ॥९९॥
सर्वा प्रवृत्तिर्भूतानां सुखबुद्ध्या न चाऽन्यथा ।
काश्यास्त्यागोऽपि हि तथा बिज्ञेयः कामकारितः ॥१००॥
सुखमेव न जानन्ति विषयासक्तबुद्धयः ।
सुखङ्काशिजमेवाहुः शान्ताः सद्वृत्तयोऽमलाः ॥१०१॥
जले विलोडिते राजन् ! कलुषम्बिम्बघातकम्
स्वस्थे बिम्बप्रतिबिम्बप्रतीतिः पुरुषस्य हि ।
तथा काश्यां व्यापृतानां नैवात्मा प्रतिबिम्बिति
अतः कदाचिद्ये केचित्प्राप्नुवन्ति गतव्यथाः ॥१०२॥
येषाम्प्रियतरः कृष्णः परमात्मा प्रियाप्रियः ।
नान्ये पुत्राः पुत्रपुत्राः प्रिया दासाः प्रिया जनाः ॥१०३॥
त एव चिद्धनं रूपं काश्याम्पश्यन्ति साधवः ।
धनधान्यगृहक्षेत्रमित्राणि पशवस्तथा ॥१०४॥
यत्सम्पर्कातिप्रयाणि स्युस्तमात्मानं हरिम्भज ।
यदनुग्रहलेशेन काशिका न सुदुर्लभा ॥१०५॥

प्रियाणि किं शोककराणि सन्ति प्रियाणि किम्व्याकुलयन्ति चित्तम् ।
प्रियाणि किम्वत्स ! बहूनि सन्ति प्रियः परात्मा हरिरेक एव ॥१०६॥

राजोवाच

कथम्परात्मा काशिकायाम्प्रियःस्यादन्यस्य सख्यम्बिरमेत्कथम्परम् ।
कथन्त्वदुक्तं हृदि सञ्चसेच्चिरं कथम्प्रियार्थम्प्रयतेज्जनः शुचिः ॥१०७॥

गङ्गोवाच

ये न त्यजन्ति सततङ्गुरुं सच्छास्त्रविग्रहम् ।
तेषां हरिः प्रियतरो भवत्येव न संशयः ॥१०८॥
सत्सु प्रीत्या कथाप्रीतिस्तत्प्रीत्या विष्गुरव्ययः ।
बल्लभो जायते नृणां श्रुतवल्लभवल्लभः ॥१०९॥
ये शास्त्रविग्रहन्देवं गुरुं न प्रभजन्त्युत ।
सेवनैर्दानमानैश्च न तेषां श्रवणम्भवेत् ॥११०॥
तेषां सर्वंमनर्थाय श्रुतं श्रवणविघ्नतः ॥१११॥
येषान्न वित्तं न शरीरसेवा परोपकारोऽपि न चाऽस्ति सम्यक् ।
न तेषु पापेषु वसत्यवश्यं कथामृतङ्काशिकायाः प्रियायाः ॥११२॥
ये पश्यन्ति महादेवं गुरुम्मानुपरूपिणम् ।
धर्मज्ञानादिवक्तारं न तेषां हरिदर्शनम् ॥११३॥
हितं न जानाति जनो महात्मा हितं सदा श्रवणङ्कारयेद्यः ।
वेदेषु शास्त्रेष्वपि चोक्तमादौ गुरुः सुसेव्यो ह्यविमुक्तवक्ता ॥११४॥
कुलं शीलमथाऽऽचारमविचार्यं गुरुं हरिम् ।
भजेत श्रवणाद्यर्थं तरेत् संसारसागरम् ॥११५॥
गुरुष्वतिशयो वत्स ! ज्ञातव्यः सुमहत्स्वपि ।
येषामनुग्रहात्पुंसां समदृष्टिः प्रवर्त्तते ॥११६॥
तेषाम्मत्कोशभूतानां नाऽपराधं समाचरेत् ।
गुण एव सदा ग्राह्यो न दोषो हि कथञ्चन ॥११७॥
गुथक्तशास्त्रसम्पर्कादन्येष्वपि शनैः शनैः ।
दोषदृष्टि न कुर्वीत श्रुत्वा शास्त्रामृतम्महत् ॥११८॥

**गुरवः के इति नृपप्रश्ने गङ्गोत्तरवर्णम्**

राजोवाच

मातः ! के गुरवः कार्याः किं शीलाः किम्विजानताः ।
येषाम्प्रसादाच्छास्त्रार्थंस्तिष्ठत्यात्मनि सम्मतः ॥११९॥

गङ्गोवाच

विष्णुप्रियाः शिवरता वेदवेदार्थरूपकाः ।
भक्ता भक्तिप्रदाः शान्ता गुरवः परिकीर्त्तिताः ॥१२०॥
भक्ताः पापहराः समस्तजगतां भक्ताः परं साधवो
भक्ता एव पुनन्ति तीर्थतनवो भक्ताः सुसक्ता मयि ।
भक्तेष्वेव सुनिश्चिताः परतराः संसिद्धयो भूरिशो
भक्तानाशु न सन्त्यजेत्सुमनसो भक्तेषु विष्णुः स्थितः ॥१२१॥

व्यासउवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता गङ्गा पुण्य कीर्त्तिम्महामतिम्
सोऽपि काश्यां ददर्शाऽतो देवान् गङ्गाश्च नित्यशः ।
काश्याम्पराङ्कथामेतां गङ्गामाहात्म्य संयुताम्
शृणोति श्रावयति यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१२२॥
अविमुक्तस्य गङ्गाया गुरोर्विष्णोः शिवस्य च ।
यः शृणोति कथां दिव्यां स याति परमाङ्गतिम् ॥१२३॥

सूतउवाच

इत्युक्त्वा मुनिमुख्येभ्यो भगवान्वादरायणः ।
ययौ गङ्गां काशिकाञ्च द्रष्टुं शिवमयो मुनिः ॥१२४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये काशीमाहात्म्यपूर्वकगङ्गामाहात्म्य-वर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

# अथ द्वाविंशोऽध्यायः

## ऋषिसूतसम्वादवर्णनम्

ऋषयऊचुः

सूत ! काशीकथां श्रुत्वा येऽलबुद्धिमुपासते ।
तेऽलं सुखाय मोक्षाय धर्मा हि गुणसंयुताः ॥ १ ॥
नरकार्णवभीत्याऽपि न काशी श्रयते जनः ।
भोक्ता धर्मादिकामानां व्रजनं कुत्र कथ्यताम् ॥ २ ॥

सूतउवाच

नरकार्णवभीतिः क धनापहृतचेतसाम् ।
धनेषु लग्नं हि मनः केन संह्रियते पुनः ॥ ३ ॥
द्विविधं धनमित्याहुः पण्डिताः परदर्शिनः ।
एकम्बन्धाय पापानामपरं मोक्षसाधनम् ॥ ४ ॥
पापाय देहादिषु यत्प्रयुक्तं पुण्याय विप्रादिषु यत्प्रयुक्तम् ।
पुण्येऽपि पक्षद्वयमादरेण शृण्वन्तु काम्पं त्वथ मुक्तिहेतुम् ॥ ५ ॥
काम्यम्विषयभोगार्थमिहाऽमुत्र प्रयुज्यते ।
मोक्षाय सुकृतन्तद्धि ब्रह्मार्पणधिया कृतम् ॥ ६ ॥
धनार्थंम्मानुषन्देहं व्ययीकुर्वन्ति ये नराः ।
न तेषां जन्मसाहस्रैः पापस्याऽन्तः प्रजायते ॥ ७ ॥
नरके परिपच्यन्ते पामरा धनलोलुपाः ॥ ८ ॥

## नानानरकविषये मुनीनां प्रश्नः

ऋषयऊचुः

कति सन्तीह नरकाः पापिनां दुःखहेतवः ।
केन पापेन कः कस्मिन्नरके परिपच्यते ॥ ९ ॥
कुत्र वा नरकः सन्ति लक्षणं किम्महामते ।
नरकाणां स्थलङ्कीदृक् कियद्दूरन्तदुच्यताम् ॥ १० ॥

सूतउवाच

संख्याम्पापविशेषांश्च पापिष्ठान् स्थानमेव च ।
लक्षण ञ्च कियद्दूरं कालादिगणनम्पृथक् ॥ ११ ॥

नरकाणां स्वरूपञ्च राज्ञा सम्वरणेन च ।
पृष्ठो देवर्षिवर्योऽत्र नारदः कथयिष्यति ॥ १२ ॥
तत्पुनः सम्प्रवक्ष्यामि शृण्वन्त्वत्र समासतः ।
धर्मराजस्य नगरी शुभा संयमिनी मता ॥ १३ ॥
तत्र धर्मसभायान्तु राजानो धार्मिकाः सदा ।
सभासदो धर्मपरा महासुखसमन्विताः ॥ १४ ॥
धार्मिकाणां धर्मराजः पापिष्ठानाम्महायमः ।
यमदूतैः परिवृतौ दृश्यते भीषणाकृतिः ॥ १५ ॥
धर्मराजसभायान्तु मुनयो ब्रह्मतत्पराः ।
ब्रह्मार्थकोविदा ब्रह्मविचारणपरा मुहुः ॥ १६ ॥
यमः क्रूरः स एवैक श्छिन्धिभिन्धि विपाटय ।
यमदूतं सभायान्तु वदत्याकुलमानसः ॥ १७ ॥
निर्दयस्ताड़नपरस्तत्तत्कर्मप्रवर्तितः ।
तस्य तस्य तथा शक्ति करोति क्षालयन्यमः ॥ १८ ॥
दुष्कृतं स्मारयञ्जीजान्मानुष्यम्पुरुषार्थदम् ॥ १९ ॥

ऋषयऊचुः

पापिनः संयमिन्यां किं सर्वे जायन्त एव च ।
किम्वाऽन्यत्राऽपि नरकाः सन्ति सूत ! बदस्व नः ॥ २० ॥

सूतउवाच

ज्ञात्बाऽज्ञात्वाऽपि ये पापं कुर्वन्ति मनुजाः सदा ।
ज्ञात्वाऽज्ञात्वा तस्य भोगाः कार्यन्तेह परत्र च ॥ २१ ॥

ऋषयऊचुः

ज्ञात्वा कृतानाम्पापानां कथम्भोगः प्रवर्त्तते ।
अज्ञात्वाऽपि कृतानाञ्च कथ्यतां सूत ! सत्तम ! ॥ २२ ॥

सूतउवाच

वक्तारः सर्वशास्त्राणां श्रोतारश्च महाधियः ।
कुर्वन्ति स्वेच्छया पापाः पापानि विविधानि ये ॥ २३ ॥
तेषा नरकसंदोहः संयमिन्यामुदाहृतः ।
तानुपालभते धर्मराजः कालवपुर्नरान् ॥ २४ ॥

मानुष्यम्प्राप्य धर्मादिसाधनं नाशितङ्कृतः ।
सहध्वं यातनास्तीव्रा दुःसहा विविधाः स्वयम् ॥ २५ ॥
एवमुक्त्वा यमो दूतानाह क्रोधसमन्वितः ।
ताडयध्वं नाडयध्वं निर्दया मम शासनात् ॥ २६ ॥
इत्युक्त्वा विमनाभूत्वा गतो धर्मसभां यमः ॥ २७ ॥

ऋषयऊचुः

कथं स विमना जातो धर्मराजः प्रकुप्य च ।
किम्वा धर्मसभायां हि पृष्टः सद्भिरुवाच ह ॥ २८ ॥

## सदस्य-धर्मराजसम्वादवर्णनम्

सूतउवाच

ऋषयो देवऋषयो राजानो धार्मिकास्तथा ।
अन्येऽपि शुभकर्त्तारो धर्मराजमुपासते ॥ २९ ॥
तैर्दृष्टो विमनाः स्वामी संयमिन्याः प्रतापवान् ।
पप्रच्छुस्ते सदस्यास्ते शिवविष्णुपरायणम् ॥ ३० ॥
अद्य चिन्ता सुमहती दृश्यते तव सर्वग ! ।
न तन्मूलम्विजानीमो मन्यसे तद्वदस्व नः ॥ ३१ ॥

धर्मराजउवाच

शृण्वन्तु देवाऋषय आश्चर्यम्महदद्य मे ।
मनुष्या भारते खण्डे बलाद्दुःखं हि भुञ्जते ॥ ३२ ॥
जम्बूद्वीपम्महासारं पृथिव्यां सर्वसौख्यदम् ।
तत्राऽपि भारतङ्खण्डं तत्राऽऽर्यावर्त्तभूमिका ॥३३॥
तत्राऽपि सर्वतीर्थानि सर्वक्षेत्राणि सत्तमाः ।
धर्माधिकारिणो ये च ये च ज्ञानाधिकारिणः ॥३४॥
तेऽर्थकामपरा भूत्वा नाशयन्ति जना शुभम् ।
भोगाभासेन मुग्धाक्षा धर्मवैराग्यवर्जिताः ॥३५॥
लभन्ते यातना दीना मानुष्यम्प्राप्य सर्वदम् ।
अहो ! बराकाः संहृष्टा रोदितव्ये मुहुर्मुहुः ॥३६॥
प्रहृष्टाः प्रहसन्नोऽन्यान्विरक्तान्विषयात्मकाः ।
मनुष्यदेहममृतं साधनम्प्राप्य दुर्धियः ॥३७॥
विषयेषु विषज्जन्ते घातयन्ति स्वमात्मना ।
मानुष्यम्प्राप्य सुभगाः साधवन्ति परम्पदम् ॥३८॥

तदेव प्राप्य दुर्वृत्ता इहाऽमुत्र च दुःखिताः ।
भवन्ति माययाऽऽत्मानं घातयन्ति स्वयं शिवम् ॥३९॥

सदस्याऊचुः

कथमात्मा ह्युद्धृतः स्यात्संसाराद्दुखरूपिणः ।
कथं सुखमवाप्येत मनुजैर्मानवर्जितैः ॥४०॥
वेदवेदार्थतत्त्वज्ञ ईश्वरः सर्वदेहिनाम् ।
क्रममाचक्ष्व मनुजा यथा सुखमवाप्नुयुः ॥४१॥

धर्मराजउवाच

सभ्याः श्रुणुत भद्रम्वो यथा नृणां शुभागतिः ।
पुण्यभाजाम्प्रभवति तथा वच्मि क्रमोत्तमम् ॥४२॥
महासुकृतिनां सङ्गः सताम्भवति निश्चलः ।
तत्प्रसादाद्धर्मकथा वर्णाश्रमनिबन्धनाः ॥ ४३ ॥
सदाचारमनः शुद्धिकारिण्यो मार्गदा नृणाम् ।
भवन्ति पुण्यभाजान्ता यावज्जीवमनारतम् ॥ ४४ ॥
शास्त्रसज्जनसंसर्गो महतामेव जायते ।
विघ्नितः पापपाखण्डविषयग्रस्तचेतसाम् ॥४५ ॥
श्रवणं धर्मशास्त्राणां सदाचारस्ततः परम् ।
ततो धर्मप्रकृत्तिर्हि ततो विश्वास उत्तमः । ४६ ॥
धर्मप्रवृत्तिर्हि द्विधा सकामाकामवर्जिता ।
विधिवैगुण्यरहिता इहाऽमुत्र सुखप्रदा ।
स्वनुष्ठितो वेदमार्गः साधयेत्किन्न देहिनाम् ॥४७ ॥
स्वर्गाद्यर्थङ्कृतः सभ्या सावधानैर्महात्मभि ॥४८ ॥
अवश्यं साधयत्येव तत्तत्फलमनामयम् ॥४९ ॥

सभ्याऊचुः

निष्कामं श्रोतुमिच्छामो मार्गम्वेदस्य तत्त्वतः ।
कोऽधिकारी फलन्तत्र धर्मराज ! वदस्व नः ॥५०॥

धर्मराज उवाच

गर्भवासादिगहने यस्य खेदः प्रजायते ।
स नैष्कर्म्यपरो भूत्वा संसारे सुखमाप्नुयात्
एक एवोभयत्राऽपि धर्मः कामिमुमुक्षुभिः ॥५१ ॥

कृतस्तस्माद्द्विधा सभ्याः सुखम्मोक्षञ्च गच्छति ॥ ५२ ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तं लौकिकञ्चापि सत्तमाः ।
अर्पिते ब्रह्मणि परे कर्मसंसारमोचकम् ॥ ५३ ॥
विरागरागयोः सभ्याः फलम्मोक्षोऽथ बन्धनम् ।
विरक्ता नश्वरं सर्वं पश्यन्ति ब्रह्मबुद्धयः ॥ ५४ ॥
वैराग्यात्सुदृढं ज्ञानं वैराग्यात्सुदृढन्तपः ।
वैराग्यात्सुदृढो धर्मोवैराग्यात्सुखमुत्तमम् ॥ ५५ ॥
भवत्येव नृणामत्र वैराग्यात्पापसङ्क्षयः ।
तस्माद्विरक्तैर्धर्मादि यत्कृतं सफलम्भवेत् ॥ ५६ ॥

ऋषयऊचुः

केचित्क्रूरं महाभीमं केचिद्धर्मतनुं शुभम् ।
पश्यन्ति त्वां धर्मराज ! ह्येकमेव द्विधा कथम् ॥ ५७ ॥

धर्मराजउवाच

एकएवाऽहमव्यग्रो नान्योऽस्ति हि कदाचन ।
पुण्यपापात्मनां दृष्टिः क्रूरा क्रूरतराऽपि च ॥ ५८ ॥
स्वहृद्येव जनाः क्रूरमक्रूरं कल्पयन्ति हि ।
पुण्यपापानुरोधेन तेषां दृष्टि प्रवर्त्तते ॥ ५९ ॥
पुण्यात्मनां शुभा दृष्टिरशुभा पापकर्मणाम् ।
बलात्पतन्ति नरके नरा दैन्यविहिंसिताः ॥ ६० ॥
सर्वत्र दैन्यत्यागेन क दुःखन्निरयञ्च कः ।
यदा धनादिदु प्रीतिर्न भवेत्सुकृतैर्धनैः ॥ ६१ ॥
तदा प्रीतिर्भगवति वासुदेवे शिवे भवेत् ।
एकमेव मनः सम्यग् विषये वा परात्मनि ॥ ६२ ॥
योजितं याति सततं नृणामेव तदात्मताम् ।
धनस्नेहादधो याति पुण्यस्नेहादुपर्येति ॥ ६३ ॥
हरिस्नेहाद्व्यापकत्त्वं विचार्य स्नेहमाचरत् ।
नरः कनकवद्धो यः कनकान्मुच्यते हि सः ॥ ६४ ॥
पवित्रं कनकम्प्रोक्तमपवित्रम्परं स्मृतम् ।
भोगसाधनबुद्ध्या तु रक्षितं नरकावहम ॥ ६५ ॥

अपवित्रम्परव्प्राहुर्द्रव्यं शुद्धिविघातकम् ।
व्ययीकृतम्विष्णुबुद्ध्या महापावनपावनम् ॥ ६६ ॥
मदीयसुखपूगस्य साधनम्मदुपार्जितम् ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राणां जीवनन्तद्भविष्यति ॥६७ ॥
इति लोभपरः स्वर्णसङ्ग्रहेच्छुरनात्मवान् ।
नरकं याति कृपणः स्वर्णकामसमावृतः ॥६८ ॥
नश्यत्येव धनं सभ्या राजतश्चौरतः स्वतः ।
पुत्रमित्रकलत्राद्यैर्भुज्यते पापश्चितम् ॥६९ ॥
संचितं धर्मतो वित्तं द्विजैर्धर्मेणयुज्यते ।
तदेव सर्वेश्वरगं सर्वार्थदमनिन्दितम् ॥ ७० ॥
लक्ष्मीकान्तस्य सकलं धनन्तस्यांऽशतः खल ।
स्वायहम्वित्तजातस्याऽभिमानादिति च ध्रुवत् ॥७१ ॥
नरके याति पुरुषः पुण्यज्ञानविवर्जितः ।
न सुवर्णसमं मित्रं न सुवर्णसमो रिपुः ॥७२ ॥
मैत्रीम्विहाय तु कथं शत्रुत्वं साधयेद्बुधः ।
तथा देवार्पणम्मुक्त्वा पापार्थङ्कथमर्पयेत् ॥७३ ॥
कलौ कलिर्वासमकल्पयत्स्वं सुवर्ण सौवर्णविकारवत्सु ।
समस्तवस्तुष्वविचारिणां नृणामज्ञानिनां लोलुपवृत्तिचेतसाम् ॥७४ ॥
एतज्ज्ञात्वा यो विचार्याशु विष्णौ रौद्रं रेतः सम्विभज्यार्पयेत्तत् ।
मोक्षन्दद्यादन्यदेशेऽपि विष्णुर्वित्तन्दद्यात्किम्पुनः काशिकादौ ॥७५॥
परम्पदङ्काशिकाशिकाम्विष्णुरूपां त्रिधा वद्धा ना ऽऽद्रियन्ते धनाशाः ।
यथेष्टभोगा चरणास्तु दुर्धियो देहे गेहे बुद्धयः साधुशून्याः ॥ ७६ ॥
प्रमादात्पतिते पापे प्रायश्चित्तादिना जनः ।
नाशयत्यातमनः पापं न बुद्धिकृतमण्वपि ॥ ७७ ॥
पुत्रस्याऽपि पिता शान्ति कुर्यात्प्राणसमस्य हि ।
अपराधिनः पुनः शिक्षां करोति स्नेहतोऽसकृत् ॥ ७८ ॥
पुनर्दौष्ट्यम्पापरूपं मा कुरुष्वेति शिक्षयेत् ।
पुनः करोति चेद्दुष्ट ह्यपराधं सुदुर्मनाः ॥ ७९ ॥
अपि यो जायते पुत्रः प्रियोऽपि पितृदोषकृत् ।
तथा जगत्पिता रुद्रः शास्तिङ्कृत्वा सुतारयेत् ॥ ८० ॥

दुःखन्दत्त्वा तथा भुक्त्वा तरणङ्किम्प्रकाशते ।
अतएव त्रिधा पापपरित्यागः शुभो मतः ॥ ८१ ॥

## काशीमाहात्म्यवर्णनम्

काश्याञ्जीवनपर्याप्तं हिरण्यं सुखदम्भवेत् ।
भुञ्जते ये महात्मानः सदाचारनिवासिनः ॥ ८२ ॥
अनित्यतानुसन्धेया जगतो विकृतात्मनः ।
परतः स्वतस्तथा शास्त्राच्छ्ष्टश्रुतविचारतः ॥ ८३ ॥
तथाऽपि न वृषे चेतो यस्य तन्नाभिभाषयेत् ।
उपदेशः प्रस्तराणां नहि स्वार्थंकृदुच्यते ॥ ८४ ॥
बन्धो नादिर्मनुष्याणां प्रवाहेण पुनः पुनः ।
स एव रोचतेऽन्येषां वद्धास्ते पशवोयथा ॥ ८५ ॥
पशवो विबुधा दैत्या ऋषयः पन्नगाः खगाः ।
सर्वे वद्धाः पाशजालैः प्राकृतैर्मनुजोऽधिकम् ॥ ८६ ॥
वद्धा एव पुनर्वन्धं दृढयन्त्यविपश्चितः ।
अतः पशुपतिं देवं भजेत्पाशविमुक्तये ॥ ८७ ॥
भजनन्दुर्लभन्तच्च भवेत्काश्युन्मुख्स्य च ।
काश्याम्प्रविश्य पुरुषो भवेद्द्रुद्रतनुर्महान् ॥ ८८ ॥
न व्रतैर्न तपोभिश्च न पाडित्यादिसाधनैः ।
न योगयागनियमैः प्राप्यते काशिका परा ॥ ८९ ॥
नीरागमानसैर्भक्तैर्निष्पापैः पुण्यतत्परैः ।
प्राप्यते मोक्षजननी महापाशुपतैस्तथा ॥ ९० ॥
सुसाधनसहस्त्रैस्तु तथा तुष्यति न क्वचित् ।
यथाऽत्रत्यजनाच्च यथा शक्त्युपकारतः ॥ ९१ ॥
काशिस्थाश्च जनाः सर्वे शिवविष्णुस्वरूपिणः ।
तस्मात्काशीजनान्नैव दूषयेदपि पापिनः ॥ ९२ ॥
न धर्मः काशिजनता सेवनात्सुभगः परः ।
न पापङ्काशिलोकानामपराधादतः परम् ॥ ९३ ॥
चित्तं सभ्याः पापकर्तुर्न स्थिति प्रतिपद्यते ।
प्रवृत्त्या नाशमायाति जनः सुजनवर्जितः ॥ ९४ ॥

निरालम्वम्मनोराज्यं करोति विषयैर्युतम् ।
काश्यां न पातकैर्योगः सम्पाद्यः साधुभिः सदा ॥ ९५ ॥

सावकाशा नराः सर्वे पूर्वाभ्यासकृतश्रमाः ।
गच्छन्त्यशास्त्रमार्गेण सर्वधर्मविवर्जिताः ॥ ९६ ॥
अतः सत्सङ्गशास्त्राणि शिवविष्णुपरायणः ।
अवकाशनिरोधार्थं साधयेज्जिवितावधि ॥ ९७ ॥
इदं शरीरं मानुष्यं परमोत्कर्षहानिदम् ।
उत्कर्षार्थम्प्रयुञ्जीत नापकर्षार्थमादरात् ॥ ९८॥
स्वरूपतो न शुद्धन्तच्छुद्धन्तु पुरुषार्थतः ।
तन्निरुद्ध्य हठाद्धीरो योजयेत्पावने पथि ॥ ९९ ॥
क्व काशी क्व शरीरं हि मानुषं पुरुषार्थदम् ।
क्व पापवषया सर्वे परिणामार्तिशोकदाः ॥ १०० ॥
न काश्याम्व्याकुली भूय निरसेषु मनो नयेत् ।
अनेन जन्मनैकेन स्वीकुर्याच्छाश्वतम्पदम् ॥ १०१ ॥
जीवता यत्सुखङ्काश्यामविक्षिप्तेन्द्रियात्मनाम् ।
न तत्सत्येन कैलासे न वैकुण्ठे कथञ्चन ॥ १०२ ॥
अतो न कुर्वन्ति महानुभावाः पापङ्कदाचिन्मसाऽपि काश्याम् ।
न पापयुक्ताः खलु लौकिकं हि भोगम्पप्रश्यन्ति कुतः श्रुतिरित्नम् ॥१०३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्यव्याक्याने काशीमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वाबिंशोऽध्प्रायः ॥ २२ ॥

## अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

### सदस्यानां धर्मराजम्प्रति नरकयातनादिविषये प्रश्नः

ऋषयऊचुः

धर्मराजं सदस्याः किम्पृष्टवन्तो वृषस्थितिम् ।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां महासारः श्रुतो महान् ॥ १ ॥

सूतउवाच

सभासदैर्धर्मराजः पृष्टो नरकयातनाः ।
पापानि कथयामास यातनाश्च पृथग्विधाः ॥ २ ॥

सदस्याऊचुः

कति पापानि धर्मेश ! यातनाः काश्च तत्कृताः ।
पच्यन्ते कासु के पापास्तद्वदस्वाऽऽनुपूर्व्यंशः ॥ ३ ॥

धर्मराजउवाच

मनसा पापमायाति वचसा कर्मणा तथा ।
न संख्याऽस्तीह पापानां यातनानाञ्च सत्तमाः ॥ ४ ॥
स्वल्पान्यपि च पापानि लीलयाऽपि कृतान्यपि ।
उपपातकतां यान्ति सङ्ग्रहाभ्यासचिन्तनैः ॥ ५ ॥
महापातकतां यान्ति पुनस्तानि चितान्यलम् ।
एवम्वृद्धिक्रमेणैव महापातककोटयः ॥ ६ ॥
नृणां सञ्चयमायान्ति प्रायश्चित्तादिवर्जनात् ।
तथाऽपि काश्चिद्वक्ष्यामि यातनाः पापसंयुता ॥ ७ ॥
सर्वत्र नरकाः सन्ति गर्भवासादयोऽशुभा ।
स्वर्गापवर्गा अपि च पुण्यपापानुसारतः ॥ ८ ॥
संर्यामन्यां यातनायां भवन्ति मम शासनात ।
मुख्योपलक्षणार्थन्ताः सम्भवन्ति नृणामिह ॥ ९ ॥
मौक्तिकानां यथा गौणा मुख्या मण्डिपिका कृता ।
प्राणिनामवरोधाय प्रभवन्ति तथाऽत्र तु ॥ १० ॥

तत्र तत्र निगृह्यन्ते प्राणिनो विषयैर्युताः ।
तथा विषयसंयुक्ता यातनाश्च पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥
देहाभिमानाद्यत्पापं न तद्गोवधकोटिभिः ।
प्रायश्चित्ताद्भवेच्छुद्धिर्नृणां गोवधकारिणाम् ॥ १२ ॥
देहाभिमानिनां ज्ञानमृषोणामपि दुर्लभम् ।
अहम्ममाभिमानोत्थैर्दुःखैः पापच्यते जनः ॥ १३ ॥
सुखबुद्ध्या प्रवृत्तस्य कुतो ज्ञानं कुतः सुखम् ।
ममताकुलचित्तानां नरकास्तु सुदारुणाः ॥ १४ ॥
भवन्ति च न ते नृणां गोवधादिप्रकुर्वताम् ।
नश्वरे विकृते शुद्धे दुःसाध्ये च सुदुर्लभे ॥ १५ ॥
प्रवृत्तिर्विषये नृणां पातकं किमतः परम् ।
का हानिर्यातना वा का तिरस्कारादयोऽपि च ॥ १६॥
अहन्देहधियां ये स्युर्न ते निरयकोटिभिः ।
प्रमत्तं मानुषं दृष्ट्वा भीतिर्भवति मेऽपि हि ॥ १७ ॥
अप्रमत्तं नरं दृष्ट्वा हृष्यामि च पुनः पुनः ।
देहाभिमानजामार्तिमनुभूयाऽपि पामरः ॥ १८ ॥
नात्मानमनुसन्धत्ते हरिम्पापहरौ शिवौ ।
महताऽपि प्रयत्नेन दुष्कृतं साधयत्यलम् ॥ १९ ॥
अनायासेन सर्वेशमात्मानं नाऽनुपश्यति ।
अतः परं किमत्राऽस्ति पापम्परमदारुणम् ॥ २० ॥
कस्त्वस्पृष्ट इति ब्रूयाद्देहोऽहमिति पातकी ।
चक्रवर्त्तिपदे तिष्ठन्महान् सिंहासने वरे ॥ २१ ॥
आत्मान मन्यते दीनं चाण्डालं दुःखभाजनम् ।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासम्पुरातनम् ॥ २२ ॥
भरतेन च सम्वादं जनकेन विपश्चिता ।
ऋतध्वजो नाम महान् जनको मिथिलाधिपः ॥ २३ ॥
तीरे तीरे देवनद्याः प्रददर्श ऋषीन्बहून् ।
कर्मज्ञानरतान्सर्वान्स्वस्वशास्त्रकृतश्रमान् ॥ २४ ॥

पप्रच्छ वेदतात्पर्यं विनीतः प्राञ्जलिर्द्विजान ।
केचिद्दानं तपः केचित्तीर्थानि च तथाऽपरे ॥ २५ ॥
यज्ञवैराग्यविज्ञानव्रतानि विविधानि च ।
वदन्ति चाऽपरे विप्राः स्वाध्यायाश्रमसत्क्रियाः ॥२६॥
तत्र तत्र ऋषिभ्यो ज्ञः श्रुत्वा राजा महामनाः ।
स्वं स्वम्मतं समालम्ब्य वदतामग्रतोऽब्रवीत् ॥ २७ ॥

जनकउवाच

अहो मुकुन्दस्य विचित्ररूपा माया यया मोहिता विप्रवर्याः ।
व्याख्याभिमानेन मनो यतो यतः प्रवर्त्तते यान्ति विदस्ततस्ततः ॥२८॥

**जनकर्तध्वजसम्वादवर्णनम्**

सूतउवाच

एवं स राजा जनकः सर्वान्पप्रच्छ भूरिशः ।
उपक्रमोपसंहारात्तात्पर्यंज्ञाकेचन ॥ २९ ॥
अवधूतः पूर्णवपुरवासाः परिभ्रमन् ।
प्रसन्नवदनः प्राप्तो गङ्गाकूलं द्विजैपुतम् ॥ ३० ॥
आदृतो जनकेनाऽऽशु राज्ञा तत्त्वं विजानता ।
प्रतिपूज्य नृपो विप्रं स्थितो व्याकुलमानसः ॥ ३१ ॥

ऋतध्वजउवाच

कस्त्वम्प्रसन्नः परिपूर्णकामो निष्किञ्चनो भोगयोगादिशून्यः ॥ ३२ ॥
किञ्चिम्वायाऽऽप्तं सुविचारितञ्च येन त्वमात्मानमनञ्चनङ्कुथाः ।
कुतः समागमनन्तेऽद्य पूर्ण ! गन्तासि कन्देशमितः कृतार्थं ॥ ३३ ॥
जात्याऽसि कः किञ्च तवाऽस्त्यभीष्टं केन प्रयुक्तः प्रकरोषि किञ्च ॥ ३४ ॥

अवधूतउवाच

अहञ्जगत्त्राणनिरोधसृष्टिकर्त्ता प्रतीतम्मयि भाति सत्ये ।
अतो न कर्ता करणं न कार्यं जातभ्रमः पश्यति दृश्यजालम् ॥ ३५ ॥
प्रसन्नता तत्र न यत्र शोकः शोकैर्युक्तः कलुषीभूय दीनः ।
भवत्यजस्रं निरयार्णवस्य पात्रम्पवित्रं स विसृज्य दूरात् ॥ ३६ ॥
मूलम्परम्ब्रह्मरसायनं हरिं शिवम्परानन्दमयं सनातनम् ।
आस्वाद्य कामान्समवाप्य पूर्ण ! पूर्णस्य किङ्कामलेशाः सुखाय ॥ ३७ ॥

निष्किञ्चनाः किञ्चन नाऽऽद्रियन्ते विष्णुं सदानन्दमयम्विहाय।
न सर्वसन्यासयुतो महात्मा ह्यकिञ्चनो विषयासक्तचित्तः ॥ ३८ ॥
भोगास्तु रोगा इव दीनचेतसं दहन्ति दैन्याधिविषादमूलाः।
ततोऽतितुच्छान्प्रविहाय भोगान्भजामि सर्वन्निरवद्यभोगम् ॥ ३९ ॥
यमादिभिः साध्यतमोऽतिकष्टा द् दृढैप्रयुक्तैर्नियमैस्तु योगः।
अतः परानन्दमये निमग्नस्त्र्यधीश्वरे वासुदेवे कृतार्थः ॥ ४० ॥
अहो! मयाऽऽत्मा विषयेषु दत्तः पूर्वम्महानर्घ्यमणिप्रकाशः।
सच्छास्त्रसत्सङ्गहरिप्रसादात्पुनः प्रलब्धो हि करच्युतो मया ॥ ४१ ॥
विचारितम्मङ्क्षु विविक्तचेतसा सत्यन्त्वसत्यं श्रुतिचेतसा मुहुः।
विचार्यसत्यम्प्रगृहीतमद्य मे गतन्त्वसत्यं स्वयमेवाऽद्य चित्रम् ॥ ४२ ॥
मनुष्यदेहेन सुसंस्कृतेन कर्तुं सुयोग्यम्भवतीह यत्सत्।
कृतन्तदेवाऽद्य मया महामते! धिक्तान्नरान्मानुषं नाशयन्ति ॥ ४३ ॥
पूर्णेतिसम्बोधनतस्त्वयैव सदुक्तमेवाऽत्र वदामि किन्ते।
पूर्णस्य गत्यादि न सम्भवत्यलं देहादिदृष्टिः खलु देहिनाम्भवेत् ॥ ४४ ॥
जात्यादिदेहादिविवर्जिते मले गतागतम्वदतां हानिरेव।
अहम्प्रयोक्ता सकलस्य राजन्यथा रविर्मृगतृष्णाधिवासः ॥ ४५ ॥

## विप्रक्षत्रियविट्शूद्राणामरराधवर्णनम्

जनकउवाच

बहुभिर्जन्मभिर्विप्र! तवेयं विमला मतिः।
एकेन जन्मना प्राप्तिः कथं ज्ञानस्य तद्वद ॥ ४६ ॥

जडभरतउवाच

एवमेव पुरा देवः पृष्टो देवैः पिनाकधृक्।
कैलासशिखरे रम्ये साम्बः स्कन्दादिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥
एकेन जन्मना मोक्षो भवत्येव न चाऽन्यथा।
सर्वेषाम्प्राणिनामत्र तथा वद सनातन! ॥ ४८ ॥

श्रीमहादेवउवाच

इदमेव पुरा पृष्टो विष्णुर्ज्ञानघनः परः।
एकेन जन्मना ज्ञानं कथं सिद्धम्भवेन्नृणाम् ॥ ४९ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

जन्मानि क्रमशो मस्य निष्पापसवृषाणि च।
तस्य त्वयि भवेद्भक्तिस्ततो भेदो मया सह ॥ ५० ॥

अभेददृष्टिः सर्वत्र ज्ञानदाऽज्ञाननाशिनी ।
वैराग्यादिमहामुख्यैः साधनै सम्प्रवर्त्तते ॥ ५१ ॥
तदा वहुतिथे काले कस्यचित्तत्प्रजायते ।
अतो ज्ञानगृहम्मेऽस्ति काशी विबुधदुर्लभा ॥ ५२ ॥
एकेन जन्मना तत्र मरणावसरे मलम् ।
ज्ञानमुत्पद्यते जन्तोः श्रुतिभिर्यन्निरूपितम् ॥ ५३ ॥
ब्रह्मभूमेः स्वभावोऽयम्महाज्ञानप्रदोनृणाम् ।
अन्यथासाधनवरैः कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ५४ ॥
अपराधविहीनानां काशिका सम्प्रयच्छति ।
शीघ्रमेव महादेव ! यातनान्तेऽपराधिनाम् ॥ ५५ ॥

श्रीमहादेवउवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश ! ह्यपराधाञ्जगद्गुरो ! ।
केऽपराधाः कृतैः किम्वा अकृतैः किञ्च जायते ॥ ५६ ॥

### जनकजड़भरतसम्वादवर्णनम्

श्रीविष्णुरुवाच

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्च सदाशिव ! ।
अपराधाः पृथक्प्रोक्ताः सर्वेषाञ्च बिशेषतः ॥ ५७ ॥
प्रतिग्रहो ब्राह्मणानामनाचारस्तथाऽपरः ।
तथा स्वधर्माचरणं शूद्रान्नं शूद्रसेवनम् ॥ ५८ ॥
क्षत्रियाणाम्प्रजाद्रोहो रणाद्भीतिर्न पापभीः ।
यथेष्टं व्यवसायादिमानकूटम्मृषा बिशाम् ॥ ५९ ॥
अपराधा भवन्त्येव शूद्राणां शृणु शङ्कर ! ।
द्विजासेवा वेदवादः प्रतिग्रहरुचिस्तथा ॥ ६० ॥
मद्यमांसादिव्यसनं मायया लोकवञ्चनम् ।
पूज्यबुद्धिरसेवा च वर्णानां वेषधारणम् ॥ ६१ ॥
ब्राह्मणाद्यैः काशिकायामेतद्वर्ज्यंस्पृथक् पृथक् ।
विरुद्धाचरणङ्काश्यां न कार्यं स्वस्य वा परम् ॥ ६२ ॥
विरुद्धाचणेनाऽस्मान् काश्यादीन् द्रुह्यते वशी ।
या दृष्टा पापसङ्घौघान् स्मृता जन्मशतस्य च ॥ ६३ ॥

स्पृष्ट्वा शतसहस्रस्य नाशयत्येव काशिका ।
काशिकाऽतीव जननी काशिका सर्वपापहृत् ॥ ६४ ॥
सर्वदा सुखदा काशी ताङ्काशीङ्को विरोधयेत् ।
पितृमातृद्रुहान्नृणामपि जन्मशतैरपि ॥ ६५ ॥
निष्कृतिःस्यान्न काश्यां हि स्थित्वा काशीद्रुहाङ्कचित् ।
मात्रा सह समानत्वं न काश्यर्हंपि होति कुत्रचित् ॥ ६६ ॥
गर्भवासप्रदा माता काशी गर्भविनाशिनी ।
काशिका द्रुह्यते ज्ञैः किं सच्छास्त्रगुरुतत्परैः ॥ ६७ ॥
मलमूत्रादिनरकदेहस्थैश्चाऽविताः सुताः ।
तिरस्क्रियन्ते मात्रा न तथा पापकृतोऽधमाः ॥ ६८ ॥
वासनाऽपि हि धर्मस्य सुखदा भयदा मता ।
किम्पुनर्धर्मकर्तारः काश्यां सुखमवाप्नुयुः ॥ ६९ ॥
धर्मो मदात्मको देव तस्माद्धर्मं न सन्त्यजेत् ।
मत्स्मृत्या सर्ववृषयुक् विस्मृत्या पापयुग्भवेत् ॥ ७० ॥
यदा यदा विस्मरणङ्करोति तदा तदा दूरतरम्प्रयामि ।
यदा यदा मां स्मरते महात्मा तदैव मध्यम्प्रविशामि बन्धुः ॥ ७१ ॥
यदा जनो यस्य समागमेन स्मरन्यथा याति विकारमन्तः ।
तदा तदाऽऽकारतया प्रवर्त्तते सर्वत्र लोकेष्वथ वैदिकेषु ॥ ७२ ॥
पण्यैस्तु सम्पूर्णतरैर्महात्मा मोहान्धकारप्रशमेन माम्भजेत् ।
मनो महानन्दमयं महातनुं मायापहम्मोक्षदमर्थसाधनम् ।
मक्षिकेण दुरात्मा यो भ्रमरेण समो महान् ।
कस्तूरिकाम्विहायाऽऽशु पूये रमति मक्षिका ॥ ७४ ॥
तथा दुरात्मा मां हित्वा विषयेषु विषज्जते ॥ ७५ ॥

**काशीमाहात्म्येशिवविष्णुसम्वादवर्णनम्**

अहम्प्रसन्नः प्रददामि काशी मन्ये पदार्थाः खलु गर्भवासम् ।
तस्मान्मुमुक्षुः सुविचार्य यत्नाद् भजेत मां काशिकार्थी पराय ॥ ७६ ॥
वेदान्तसारो बहुधा स्मारितो हितकृन्मया ।
भोगा भुक्ता वहुविधा ऐश्वर्यञ्च प्रकाशितम् ॥ ७७ ॥
नीतोऽभिमानो वृद्धिश्च धनं धान्यं सुसेवितम् ।
सुखबुध्या कृतं यत्र ह्येतद्दुष्कृतकारणम् ॥ ७८ ॥
महानरकजालेषु भोगबुद्धिः सुखाय किम् ।
सर्वम्विवार्यं हे लोकाः! सत्यो भोगो हि मुज्यताम् ॥ ७९ ॥

यो न नश्यति नो दुःखमिह सम्पादने क्वचित् ।
न द्वेषो हि भवेत्कैश्चिन्नेर्ष्या च क्रयविक्रयौ ॥ ८० ॥
नाऽऽधिक्यं न धनाकाङ्क्षा नपापङ्काल एव च ।
शृणुध्वं यदि वः पुण्यं यदि वः पापसङ्क्षयः ॥ ८१ ॥
सर्वभोगैकनिलयां परमानन्ददायिनीम् ।
भजध्वङ्काशिकाङ्कान्तां ममानुग्रहशेवधिम् ॥ ८२ ॥
त्रयीमयीं तन्मयास्तु ममानुग्रहभोगिनः ।
भोगोऽप्यन्दुर्लभो नृणां भोगविक्षिप्तचेतसाम् ॥ ८३ ॥
उपदिश्य ब्रह्मऋषीस्तद्द्वारा लोककोटयः ।
उपदिष्टा महादेव ! कृपया गर्भवासिनः ॥ ८४ ॥

श्रीमहादेवउवाच

त्वम्भक्तवर्गाधिहरः परात्मा भवाप्रियो भावकृतास्सुदूरः ।
अभावनाभाग्यवताम्परा स्याद् भाग्यम्विना किन्तव भावना स्यात् ॥८५॥
त्वदाज्ञया याति जनो जनत्वं त्वदाज्ञया सम्वृणुते परन्तत् ।
त्वदाज्ञयाहङ्कृतिहा भवत्यलं त्वदाज्ञया नाशितया स्वयं नशेत् ॥८६॥
यावन्न जानाति तव स्वरूपं नास्वाद्य तावद्भ्रमतीह विष्णोः ।
तव स्वरूपामृतपानतुष्टो विषाग्निना दह्यति किं जगत्सु ॥ ८७ ॥
न शास्त्रवादे न गुरूपदेशतो न लोकदृष्ट्या न च सम्प्रचारैः ।
तृप्तिं न भुक्तिम्परिहृत्य चाऽश्नुते जनः कदाचिद्विविधान्नवादैः ॥८८॥
त्वत्सेवनादेव तथा नरः परम्पदम्प्रपश्यत्यवशः सुदुर्लभम् ।
न वेदवादैर्नच शास्त्रविस्तरैर्वचोभिराप्येत सुधासमन्धनैः ॥ ८९ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

न मत्प्रियाः केऽपि न चाऽप्रिया वा समस्य शुद्धस्य सनातनस्य ।
तथापि दीनम्प्रभजामि मानवं येहाऽऽत्मसात्सर्वमिदज्जगत्कृतम ॥९०॥
न बाह्यसंस्कारविकारमानसैः प्राप्यः परात्माऽहमथाऽऽदृतः क्वचित् ।
हृदि प्ररूढासिवसुः नपूयविण्मूत्रकेशास्थिमयः सकामः ॥ ९१ ॥
कामप्रधानाः पुरुषार्थहारका वसन्ति यत्रत्य वने कुतस्कराः ।
तैर्लुण्डितम्वेति न राजमन्दिरं दीनो बहिर्धावति मध्यशून्यः ॥ ९२ ॥
ममाऽपि सामर्थ्यमनेन नाशितमन्तर्गतस्यापि बहिः कृतं यत् ।
गृहस्थितम्प्रह्मनिधिम्विनाश्य बहिर्वहिर्याति वराटिकार्थम् ॥ ९३ ॥

यैरहं सुकृतैर्दृष्टः स्पृष्टः सम्पूजितः श्रुतः ।
स्मृतस्त एव मां नित्यं न त्यजन्ति कदाचन ॥ ९४ ॥
पीत्वा पीयूषममलं नाऽऽसवम्पातुमिच्छति ।
मयि किन्न महादेव ! किम्वा न क्रियते मया ॥ ९५ ॥
अतो मयि रतिङ्कर्यात्सर्वदे ! पापहारिणिः ।
यदि माम्प्राप्तुमिच्छन्ति प्राप्नुवन्त्येव नाऽन्यथा ॥ ९६ ॥
कलौ कलुषचित्तानां वृथाऽऽयुःप्रभृतीनि च ।
भवन्ति वर्णाश्रमिणां न तु मच्छरणार्थिनाम ॥ ९७ ॥

**काश्याम्पापविवर्जनम्वरोधर्मइतिवर्णनम्**

कलावपि प्रसन्नोऽहं प्रयच्छामि महेश्वर ! ।
काशीं ये न प्रमुच्यन्ते संसाराद्दुःखसागरात् ॥ ९८ ॥
इयमेव पराभक्तिरिदमेव परन्तपः ।
इदमेव परं ज्ञानं काश्याम्पापविर्जनम ॥ ९९ ॥
कलौ काशी सावधानैः संसेव्या नाऽजितेन्द्रियैः ।
अजितेन्द्रिया महापापाः किन्न कुर्वन्ति पातकम् ॥ १०० ॥
कलौ कुलन्नैव यथा क्रमेण मात्रादिदोषेण सुनिश्चितं स्यात् ।
तपो जपः प्राणनिरोधनादि दानं तथा तीर्थनिवासयज्ञाः ॥ १०१ ॥
सर्वे सरागैः परिकल्प्यमाना भवन्ति रागादिसमृद्धयेऽलम् ।
अतः कलौ दानमेकङ्कथञ्चित् काशीं सुतीर्थेषु समाश्रयेत ॥ १०२ ॥
नमन्गृणन्वाऽपि वसन्स्मरन्वा मुच्येत लोकः खलु काशिकायम् ।
नो चेत्स्वधर्माश्रमकसंवर्तनं दुर्गङ्कलौ कालमले जितेन्द्रियैः ॥ १०३ ॥
तस्माद्वर्णैराश्रमैः साधुवृत्तैः काशी सेव्या सावधानैः सुमेधैः ।
लाभस्थानं रक्षणीयम्प्रयत्नात्सेव्यो धर्मो दानमुखः सदाऽत्र ॥ १०४ ॥
ये काश्यां निवसन्ति पुण्यपरमाः सच्छास्त्रनिष्ठाः सताम् ।
सङ्गात्प्राप्तसमस्तसौख्यनिलया जीवन्त एवाधिकम् ।
ये तु व्याकुलचित्तदेहवचसोऽसत्सङ्गयुक्ताः परम् ।
तेषाङ्कत्रसुखम्मृताः शिवपदं यान्त्येव भोगादनु ॥ १०५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये काशीमाहात्म्यवर्णनं नाम
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

●

# अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

## विष्णुमुखेन काशीमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषयऊचुः

काशीकथाम्पुनः शम्भुः काम्पप्रच्छ स माधवम् ।
न तृप्तिमधिगच्छामो महारसनिषेवणात् ॥ १ ॥

सूतउवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे कथां सर्वांगमाश्रिताम् ।
ममाऽपि परमानन्ददायिनीं दुखनाशिनीम् ॥ २ ॥
पुनः शिवेन स हरिः पृष्टः काशीरहस्यके ।
कथयामास संहृष्टः पुनः काशीकथाद( दृ ) तः ॥ ३ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

यः काशिकाम्प्राप्य जनो न मुञ्चति श्रीमान्ममाऽऽज्ञापरिपालकः सः ।
मुञ्चत्यथो मूर्खतरो वराकः स पापराशिः खलु पामराणाम् ॥ ४ ॥
अहम्विचार्याऽखिलशास्त्रजालं सुखस्य मोक्षस्य निधानमेकम् ।
प्रसन्नरूपः खलु वै दिशामि काश्यां स्थितिर्मरणम्पापशून्यम् ॥ ५ ॥
विभेति यस्तिष्ययुगादतीव यो मध्यमाश्रित्य जनः प्रवर्त्तते ।
बहिः समीचीनतरम्विधाय धनेषु दारेषु जितेन्द्रियार्थः ॥ ६ ॥
स काशिकायान्निवसत्यजस्त्रं धर्मावलम्बः क्षतविपूगः ।
गुरु स्तुवन्यः परिपूजयन्यः सेवेत एवाऽत्र परत्र पूज्यः ॥ ७ ॥
यदुक्तवाचो विभवैः कृतार्था भवन्ति लोकाः परिपूर्णकामाः ।
न ये गुरुं स्वात्मरहः प्रकाशं भजन्ति भावैः सकलैर्मनुष्याः ॥ ८ ॥
न तच्छु तङ्कार्यंकरम्भवत्यलं मुमूर्षवे दत्तसिवौषधम्परम् ।
सर्वात्मना येऽत्र भजन्ति सद्गुरुं न तेषु शास्त्रम्विफलङ्कदाचित् ॥ ९ ॥
काश्यामेवं ये मनुष्या वसन्ति ते वै काश्याः प्राप्नुधते सुखं स्वम् ।
स्नानं दानम्विष्णुगुर्वर्चनञ्च नित्यम्भक्तया कुर्वताङ्कत्रबन्धः ॥ १० ॥

धर्मान्तरं शक्तयनुसारतो ये कुर्वन्त्यवश्यं श्रवणं सुसेवते ।
ते काशिकायामपराधहीना भवन्ति नित्यं श्रवणप्रधानाः ॥ ११ ॥
गजस्य मत्तस्य यथाऽङ्कशो भवेत्तथा नृणां श्रवणम्मार्गदायि ।
श्रुत्वाऽपि ये पापरता वराका ह्यसाध्यपिण्डे नहि कृत्यमौषधैः ॥ १२ ॥
क्षुतैस्तपोभिर्व्रतदानजाप्यैः समस्तदेहादिजयैरुपायैः ।
साध्यम्मनःस्थैर्यमहीनसत्वैर्नो चेच्छ्रमः स्याच्छमतोषहीनैः ॥ १३ ॥
प्रियं यथा यस्य मनः स्मरेत तथा प्रवृत्तिः खलु तस्य पुंसः ।
हरौ हरे वा कनके रतौ वा प्रीतिः प्रिये स्यान्न नियामिका श्रुतिः ॥ १४ ॥
पुण्यस्य पापस्य निदानमेकं शृणुष्व देव ! प्रवदामि सत्यम् ।
मनुष्यदेहम्परमं समाप्य स्वात्मन् रतिर्वा विषये भवेद्वा ॥ १५ ॥
ताडनं धनगृहादिनाशनं रोगभोगपरिवर्जनादि च ।
विघ्नजातमिति नो भवत्यलं काशिकाविरह एव विघ्नदः ॥ १६ ॥
देहादिविघ्नं सोढ्वा तु यस्तिष्ठेत्प्रीतिभाङ्ग् नरः ।
स निर्विघ्न इति प्राहुः सविघ्नःका शिकान्त्यजेत् ॥ १७ ॥
विघ्नज्ञानं न येषां हि कथन्ते शास्त्रवित्तमाः ॥ १८ ॥

श्रीमहादेवउवाच

विघ्नज्ञानम्महाविष्णो ! कथन्निविघ्नता भवेत ॥ १९ ॥

## विष्णुमुखेन काशीवासे विघ्नज्ञानवर्णनम्

विष्णुरुवाच

मनः क्षोभो विघ्नपूगो विघ्नाः कामदयो मताः ।
विषयात्मनान्ते बहवो भवन्त्यसुखहेतवः ॥ २० ॥
अप्रवृत्त्या ह्यानर्थेषु निर्विघ्ना काशिकास्थितिः ।
इत्यान्तरैर्विघ्नजालैर्बहिर्विघ्ना भवन्ति हि ॥ २१ ॥
बहिर्विघ्नैः काशिवासो निष्फलःस्यात्सुदुर्मतेः ।
अयमेव परो धर्मो ह्ययमेवोद्यमः परः ॥ २२ ॥
यत्काश्याम्विघ्नरहिता भवेत्सुकृतिनां स्थितिः !
अत्रैवोदाहरन्तीमामितिहासम्पुरातनम् ॥ २३ ॥
तच्छृणुष्ब महादेव ! निर्विघ्नप्रतिपादनम् ।
काश्याङ्कश्चिद्द्विजवरः सनातन इतिश्रुतः ॥ २४ ॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्वविद्याविशारदः ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्रादिकुटुम्बसहितः सुखी ॥ २५ ॥
स सदा काशिमाहात्म्यश्रवणासक्तमानसः ।
निर्विघ्नकामः सततं काश्यामवाससुखोऽन्वहम् ॥ २६ ॥
शृणोति काश्या महिमानमद्भुतं वदत्यजस्रं स्मरतीह काशीम् ।
करोत्यवश्यम्प्रतितीर्थमज्जनं प्रदक्षिणङ् क्षेत्रभुवः करोति ॥ २७ ॥

तस्य पत्रास्त्रमः पौत्रा(नव) भवन्सर्वे दुरन्वयाः ।
कलहद्यूतपाखण्डभण्डवैतण्डिकप्रियाः ॥ २८ ॥
पितरम्मातरं शुद्धं ताडयन्ति बहिर्मुखाः ।
वेश्याव्यसनपापार्धिव्यसनेन समन्विताः ॥ २९ ॥
ज्येष्ठः सनातनसुतः सिनिः सौम्याकृतिः खलः ।
ज्योतिः शास्त्रम्प्रकटयंस्त्रैणः स्त्रीमोहनो वशी ॥ ३० ॥
एकदाऽन्तःपुरस्त्रीणां करारेखापरीक्षता ।
यब्धा काचिद्राजपत्री सिनिना सुन्दरेण हि ॥ ३१ ॥
स्वयमेव व्यभिचरन् दृष्टो राज्ञा सुबाहुना ।
धृतः पाशैर्दृढम्बद्ध्वा कस्त्वम्पृष्टश्च ताडितः ॥ ३२ ॥
नागरैः स सिनिर्दृष्टो बद्धः पाशैर्दृढैः पुनः ।
हन्यताम्बध्यतामेष पापत्मेति च ते वदन् ॥ ३३ ॥
इति लोकास्तु मिलितास्ताडयन्ति पृथक् पृथक् ।
कश्चिद्वदति चौर्येण धनन्नीतं दुरात्मना ॥ ३४ ॥
कश्चिद्वदति राजेन्द्र ! दूषिता मम कन्यका ।
कश्चिद्वदति भार्याम्मे नीत्वा विक्रीय चाऽऽगतः ॥ ३५ ॥
कश्चिद्वदति दग्धम्मे गृहम्वित्तम्प्रलुण्ठ्य च ।
इत्यादिदोषजालन्तु तस्योक्त्वा नागरो जनः ॥ ३६ ॥
देशान्निःसारणन्तस्य प्रार्थयामास भूपतिम् ।
तस्याऽऽहूतः पिता राज्ञा सनातन उदारधीः ॥ ३७ ॥
उपालभ्योक्तवान् राजा पुत्रवानसि सत्तम ! ।
ब्राह्मण ! त्वम्मया त्यक्तो गच्छ पुत्रैर्यथा सुखम ॥ ३८ ॥
मम राज्ये त्वया विप्र ! न स्थेयम्पुत्रकामुक ! ।

ब्राह्मणउवाच

राजन्पुत्रांस्तजाम्यद्य काशीवासार्थमातुरः ।
मम चेदपराधः स्यात्तदा वद महामते ॥ ४० ॥

राजोवाच

अपराध्यसि विप्रेन्द्र ! यस्त्वम्पुत्रपरायणः ।
पुत्रादिसङ्ग्रहात्पुंसामपराधाः पदे पदे ॥ ४१ ॥
शुभाशुभम्पुत्रकृतं गृह्यते चेन्न मानवैः ।
नापराधस्तदा कोऽपि स्नेहहीनस्य खेदिनः ॥ ४२ ॥
नेहाद्बन्धनमायाति स्नेहाद्गर्भम्विशत्यलम् ।
स एव बन्धकः स्नेहोऽबन्धः काश्यां विमोचनः ॥ ४३ ॥
सदानन्दमये क्षेत्रे भोगमोक्षादिसिद्धये ।
स्नेहः क्व क्व च पुत्रादौ कृतो बन्धनकोटिदः ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणउवाच

त्यक्ता मया पुत्रपौत्राः काश्याम्वासाभिलाषिणा ।
तान्यथेष्टम्महाराज शिक्षयस्व यथार्थतः ॥ ४५ ॥

## काशीमाहात्म्यप्रसङ्गे सनातन ब्रह्मणकथावर्णनम्

राजोउवाच

गच्छ विप्र यथान्यायं काशियान्तिष्ठ यथासुखम् ।
पुत्रादिस्नेहिनाम्विप्र ! काश्याम्वासो न शर्मणे ॥ ४६ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

एवमुक्तः स विप्राग्रयो राज्ञा शिव ! सुबाहुना ।
पुत्रापराधेऽपि स च नाऽपराध्यति कर्हिचित् ॥ ४७ ॥
कदाचित्तस्य सुदती भार्या कलहकारिणी ।
शपत्यविरतं लोकान् स्त्रियो बालानपि स्वतः ॥ ४८ ॥
राजानं राजपुत्रांश्च राजपत्नीश्च दुर्मुखी ।
लोकैः सर्वैर्मिलित्वा सा राज्ञोऽग्रे विनिवेदिता ॥ ४९ ॥
राजन्वृथा शपत्येषा त्वामस्मांश्च निरन्तरम् ।
निर्निमितं डाकिनीयं पृच्छयतां शास्यतामपि ॥ ५० ॥

राजोवाच

आनयन्तु द्विजं शुद्धं सनातनमृषिं कविम् ।
काश्यां सुखङ्कतस्तस्य यस्यैषा कर्कशा गृहे ॥ ५१ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

आनीतः किङ्करैर्विप्रो राज्ञोऽग्रे विनिवेदितः ।
पृष्ठश्च राज्ञा काश्यर्थी प्राह राजनमातुरः ॥ ५२ ॥

सनातनउवाच

पुत्राः प्रथमतस्त्यक्ता भार्यामपि विचारतः ।
त्यजामि नापराध्यस्मि शास्यतां यदि रोचते ॥ ५३ ॥
येन केन भवेद्विघ्नः काशीवासस्य भूभुज ! ।
तत्यजामि न चिरं न काशीङ्करुणामयीम् ॥ ५४ ॥

राजोवाच

सनातन मुने गच्छ काश्यान्तिष्ठ यथासुखम् ।
अपराधिनस्त्वया त्यक्ता न काशी सर्वदुखहृत् ॥ ५५ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

एवम्विप्रः काशिकार्थी सर्वन्त्यजति विघ्नदम ।
धिक्कृत्य विषमांस्त्यक्त्वा काशीं श्रयति सर्वदा ॥ ५६ ॥
काशीप्रदेशान्पश्यन्स तीर्थानि स्नाति नित्यशः ।
काशीलिङ्गान्यर्चयति काशीनामामृतञ्जुषन् ॥ ५७ ॥
एवम्वसन्काशिकायां भ्रातृभिः पुत्रबन्धुभिः ।
बद्धः सनातनमुनिर्धनार्थं धनलोलुपैः ॥ ५८ ॥
धनन्देहि धनन्देहि धनन्देहीतिवादिभिः ।
बद्ध्वा राजगृहन्निन्युर्बान्धवा वै धनप्रियाः ॥ ५९ ॥
राज्ञा पृष्टाः किमर्थम्वै बद्धः पाशैर्यथा पशुः ।
मुच्यताम्मुच्यतामेष काश्यर्थी नाऽपराध्यति ॥६०॥
ते ऊचुः अयमस्ति धनी राजन्वयन्धनविवर्जिताः ।
कथञ्जीवेम सर्वस्वम्विभज्य न ददाति हि ॥६१॥
पितृपैतामहम्वित्तं सर्वेषाम्भागमर्हति ।
शठो धनमतिः क्रूरः कदर्यो निर्दयोऽधमः ॥६२॥
क्लिश्याम हे महाराज ! विभज्य प्रददातु नः ।
धनन्धान्यञ्च यत्किञ्चित्पितृपैतामहम्वसु ॥६३॥

राजोवाच

सनातनमुने ! वित्तं वर्त्तते तव सन्निधौ ।
ददस्व पुत्रभ्रातृभ्यो यथाशास्त्रं विभज्य हि ॥६४॥
नोचेद्बहिर्यास्यसि त्वं काश्यामत्रेरितोऽघकृत् ॥६५॥

सनातनउवाच

राजन्दास्यामि सर्वस्वं न गृह्णामि च किञ्चन ।
रक्षस्व काशिकायां मां त्यजामि सकलम्वसु ॥६६॥
इति तान्गृहमानीय दत्त्वा सर्वस्वमप्युत ।
जगौ गाथां शान्तमनाः काश्यर्थी वित्तदुःखितः ॥६७॥

**पुत्रापराधेसमाहतस्य ब्राह्मणस्यराज्ञासम्वादवर्णनम्**

सनातनउवाच

अहो मया ब्रह्मसुखं समग्रं प्राप्तङ्कलत्रादिविवर्जनेन् ।
गुरुर्मदीयः सुमहायशास्त्यं राजा सुबाहुर्विषयान्न्यवारयत् ॥६८॥
अहो मया देहकृतेति भीषणं कृतम्महापापकृतम्विकर्म ।
कलत्रपुत्राप्तधनादि सेवनं न सेवनम्विश्वगुरोः कृतं हरेः ॥६९॥
काश्यान्धाष्ट्यं नैव कुर्यात्कथञ्चिद्विद्यावित्तध्यानयोगादिदानैः ।
सिद्ध्यै साध्यो मोक्षधर्मादिरर्थः क्वेयङ्काशी तद्विदाम्बाह्यनेत्री ॥७०॥
दीनः काश्यां यो वसेद्विश्वनाथं दीनानाथैः प्राप्यमाराधयेच्च ।
वाग्भिः कायैर्मानसैः संस्मृताद्यैः सोऽत्राऽऽनन्दे वासमाप्नोति मोक्षम् ॥७१॥
अत्राभिमानो बहुदुःखकारी द्वेषादयो हानिकरा वृषस्य !
कामादयो हानिकराः सुखस्य हर्षादयो व्याकुयन्ति चित्तम् ॥७२॥
काशीकथामूलमिदं हि सर्वं कथा सतां संसदि जायतेऽत्र ।
सन्तः सुसेव्याः सततम्प्रयत्नाद्येषाम्वचोभिः सुखदुःखहानिः ॥७३॥
काश्यां स्थितानामपराधपूगा भवन्त्यवश्यं गुरुवर्जितानाम् ।
गुरोर्गुरुः सन्दिशते स्थितिम्परां निवारयेद्यश्च महाघसङ्कटान् ॥७४॥
तीर्थेषु देवेषु कृतोऽपराधो मोहादवश्यम्मनुजैर्महान्धैः ।
गुरुर्गरीयान्प्रमृजत्यवश्यं शास्त्रोपदेशात्सुमहानुभावः ॥७५॥
गुरुं शिवं शाश्वतशास्त्रविग्रहं योऽवज्ञया पश्यति दग्धदृष्टिः ।
नश्यन्ति सर्वाः शुभदृष्टयस्तु तस्याऽधमस्याऽऽधियुतस्य नित्यम् ॥७६॥

गुरुस्विना तिष्ठति यो वराकस्तस्याऽभिमानो दृढतामुपैति ।
निरङ्कुशा पापरता गुरुद्रहा भवन्त्यवश्यं श्रवणादिविच्युताः ॥७७॥
पतन्ति घोरे नरकेऽतिदारुणे यथेष्टकामाभिरता विषादिना ॥७८॥

**विष्णुमुखेनकाशीवसतिप्राशस्त्यवर्णनम्**

श्रीविष्णुरुवाच

इति गाथाङ्गीयमानां श्रुत्वा लोकाः सुविस्मिताः ।
गुरुशाखानुभविनीं श्रद्दधुः काशिबासिनः ॥७९॥
अतोऽयमेव शास्त्रार्थो ह्ययमेव गुरुक्रमः ।
विसृज्य सर्वत्र रतिं काश्याङ्कुयात्सुखावहाम् ॥८०॥
अनायासेन येषां हि योगक्षेमोऽल्पकोऽपि हि ।
तेऽधिकार्थन्त्जन्त्यस्यां धर्मद्रोहोऽज्ञ दारुणः ॥८१॥
एकाकिनान्धनं यच्च तद्विश्वेश्वरसात्कृतम् ।
भवेद्येपाङ्कृतार्थानां ते क्षेत्रे फलभागिनः ॥८२॥
वाराणस्यां समुत्पाद्य वसु त्यक्त्वा म्रियेत यः ।
स कालराजपाशेन वद्धः प्राप्नोति यातनाम् ॥८३॥
प्रीतिङ्कुर्यात्काशिकायां न धनेन गृहादिषु ।
यत्र प्रीतिः फलन्तत्र लभ्यते मानवैः स्फुटम् ॥८४॥
काशीम्विहाय न घने न पुत्रादौ विदो जनाः ।
कुर्वन्ति कृतिनः स्नेहं जन्मनाशविदो यतः ॥८५॥

सूतउवाच

एवं सदाशिवः श्रुत्वा महाविष्णोर्मुखात्कथाम् ।
अतर्क्यगुणसम्पूर्णां काशीं सर्वात्मनाऽजभत् ॥८५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये काशीनिवासमहिमप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

# अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

## विशेषेण काशीवासिधर्मवर्णनम्

सूतउवाच

न लोकाश्चिन्तयन्त्येते काश्याम्पापाः सकृत्कृतन् ।
चिन्तयन्त्येव विघ्नानि दुःखानि च पदे पदे ॥१॥
विनाऽपराधं न च दुःखभारो भवत्यवश्यं हि कदाऽपि केषाम् ।
भवन्ति विघ्नाः खलु पापकर्मणां काश्यान्निवासे मरणे सुजीविते ॥२॥
उक्तम्मया श्वैतल्लोकशिक्षार्थमुत्तमम् ।
व्यासोऽपि कान्या निष्काश्य गङ्गापारम्प्रतारितः ॥३॥
काश्यान्धनपरा ये च न ते काशीनिवासिनः ।
सिंहासनोपविष्टानां दैन्यं दुःखाय केवलम् ॥४॥
सार्वभौमश्रियाजुष्टश्चर्वणञ्चकस्य च ।
मनोरथसहस्रैस्तु प्रार्थयत्येवं पापकृत् ॥५॥
मोक्षलक्ष्मीप्रदे क्षेत्रे विषयेषु दरिद्रता ।
आकण्ठमग्नो गङ्गायां म्रियते स पिपासया ॥६॥
काश्यामन्तर्यो वसेत्सावधानः कश्चित्साधुः साधयत्ये सर्वम् ।
नोचेद्विद्यावादचातुर्यवित्तैः श्रीकालेशम्वञ्चितुं सम्प्रवृत्तः ॥७॥
अहो ! विचित्रा महती शिवस्य विष्णोः परा मोहकरी च माया ।
यया विषन्त्वमृतीकृत्य लोकाः सुवञ्चितास्त्वमृतम्मृत्युरूपम् ॥८॥

ऋषयऊचुः

कलौ न धर्मो न ज्ञानं वैराग्यं न च केशवे ।
भक्तिर्विशुद्धा सुभगा न काश्यां तद्युता स्थितिः ॥९॥
विचारतो न निर्वाणवार्ताऽपि सुलभा सताम् ।
कथं संसारकूपात्तु निष्कासः कामिनामिह ॥१०॥

सूतउवाच

आसीत्पुरा कृतयुगे महापाशुपतः कृती ।
शिवपादाब्जनिरतो जितेन्द्रियमनोगुणः ॥११॥

धर्मेश्वरसमीपे तु विरक्तस्त्वपरिग्रहः ॥१२॥
महातपस्वी शिवनामतत्परो महानुभावः परिपूर्णकामः ।
हिरण्यगर्भः स कदाचिदत्र महाभिमानात्सुपिशाचदुःखभाक् ॥१३॥
जातः पिशाचः परमादरेण श्रीकालराजेन सुताड्यमानः ।
असत्समाजेन तथा प्रवृत्त्या दुःखम्परम्प्रापायुतत्रयम्परम् ॥१४॥

ऋषयऊचुः

असत्समागमात्सर्वं सुकृतन्तस्य नाशितम् ।
कथङ्कथम्वा पैशाच्यं प्राप्तः काश्याम्मृतोऽपि हि ॥१५॥

सूतउवाच

धर्मेश्वरसमीपे तु मठिका तस्य योगिनः ।
जितेन्द्रियस्तपोनिष्ठो दृष्ट्या जातो न शाश्वतः ॥१६॥
कदाचित्तस्य परमः प्रियः पाशुपतः कृती ।
आह्वानमकरोद्विप्राः ! मुनिर्धर्मनिधिः प्रियः ॥१७॥

धर्मनिधिरुवाच

हिरण्यगर्भ ! सततं किङ्करोषि महामुने ! ।
काश्यां स्थिति। कथन्तेऽत्र प्रत्यहम्प्रतिपद्यते ॥१८॥

हिरण्यगर्भउवाच

जपेन तपसा शुद्ध्या विद्यया योगयोग्यया ।
समाधिदानमानाद्यैः पूर्णस्तिष्ठामि सर्वदा ॥१९॥

**पाशुपतहिरण्यगर्भस्यधर्मानिधिना सम्वादवर्णनम्**

धर्मनिधिरुवाच

अहो ! पाशुपताचार्य ! कथमेवम्प्रभाषसे ।
अभिमानयुतम्वाक्यं व्यासाद्यैर्यन्न चोच्यते ॥२०॥
सर्वज्ञः शङ्करो देवो नान्योऽस्ति भुवनत्रये ।
परमात्मा महेशानः कोऽन्यो जीवस्त्विदम्वदेत् ॥२१॥

हिरण्यगर्भउवाच

अहमेव शिवः साक्षाच्छङ्करो लोकशङ्करः ।
नान्यद् द्वितीयम्मत्तोऽन्यच्छुद्धं यद्दृश्यते बहु ॥२२॥

धर्मनिधिरुवाच

त्वमेकः शिवसन्यासी ब्रह्मविद्रागसंयुतः ।
पूर्णोऽहमिति मत्वाऽपि विषयस्नेहसंयुतः ॥२३॥
विषयस्नेहसंयुक्तो ब्रह्माऽहमिति यो वदेत् ।
गर्भवाससहस्रेषु पच्यते पापकृन्नरः ॥२४॥
विषयोत्क्रान्तदेहस्य श्रवणादिसुखावहम् ।
सत्सङ्गः श्रवणम्विष्णोः काश्याम्वासः शिवार्चनम् ॥२५॥
भवेत्येव सतां सङ्गात्सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् ॥२६॥

हिरण्यगर्भउवाच

पूर्णस्य किङ्कथालापैः सत्सङ्गादिभिरप्यहो ! ।
परामृतम्भुक्तवतः किम्मे धनपरिग्रहैः ॥२७॥

धर्मनिधिरुवाच

अहो ! धाष्टर्यंस्तव महद्ब्रह्मज्ञानाभिमानिता ।
दासदास्यादियुक्तस्त्वं गोमहिष्यादिसंयुतः ॥२८॥
धनधान्यादिसंयुक्तो दीनो रागी रजोयुतः ।
तथाऽपि त्रपसे न त्वं वदन्ब्रह्मेति निर्गुणम् ॥२९॥

हिरण्यगर्भउवाच

धनधान्यादि यत्किञ्चिद् दृश्यते कल्पितं हि तत् ।
अधिष्ठाने परा दृष्टिर्मम पूर्णस्य सर्वदा ॥३०॥

सूतउवाच

इत्युक्त्वा गच्छ पापेति रुष्टः प्रोवाच तम्मुनिम् ।
पुनः प्रतिग्रहपरो दासदासीयुतोऽनिशम् ॥३१॥
व्यग्रो वार्धुषिकः शैवो वेषतो धनलोलुपः ।
निर्लेपः परमात्मा हि देहादिभिरतन्द्रितः ॥३२॥
देहः स्वकार्यङ्कुरुते मायिको मायिकः प्रभुः ।
किम्पापं कस्य वा पुण्यं कः पापी कश्च पुण्यभाक् ॥३३॥
कः स्वर्गो नरकः कश्च परमात्मन्यनामये ।
अयम्पुमानियं योषा मायया कल्पितो भ्रमः ॥३४॥

मदीयञ्च त्वदीयञ्च धनन्धान्यं स्त्रियो मृषा ।
पञ्चात्मके शरीरेऽस्मिन् जातिधर्मक्रमो वृथा ॥३५॥
ब्रह्मानन्दरसे मग्नो न देहादिषु रज्यते ।
ईश्वरोऽहं समस्तात्मा नियामकविवर्जितः ॥३६॥
लीलया सर्वकार्येषु प्रवृत्तिर्मम नान्यथा ॥३७॥

**काश्यांधनादिसञ्चयनिषिद्धत्ववर्णनम्**

**सूतउवाच**

धनार्थम्प्रत्यहं यत्नं करोति भ्रान्तमानसः ।
दासदासीगोमहिषीतत्तत्सङ्ग्रहतत्परः ॥३८॥
धनान्नवृद्धिपरमः प्रतिष्ठा काम एव हि ।
करोति विकृतं सर्वं वदत्यविकृतं सदा ॥३९॥
प्रतिष्ठाकाम एवाऽसौ भिक्षुभ्योऽन्नम्प्रयच्छति ।
गृह्णाति बहुलोभेन ब्रह्मचर्चाविशारदः ॥४०॥
वदत्यविरतम्ब्रह्म स्मरत्यविरतन्धनम् ।
करोत्यविरतङ्कर्मं नैष्कर्म्यं सम्प्रदर्शयन् ॥४१॥
सर्वन्धनादिकम्मिथ्या कल्पितम्विष्णुमायया ।
त्यक्त्वा सुखन्नवाप्नोति शान्तिसन्तानवर्धनम् ॥४२॥
अहो ! लोकस्य दौर्जन्यं कर्मबन्धस्य पश्यतः ।
शिवयोगिजने वित्तं लोको नार्पयते सकृत् ॥४३॥
धनस्य कार्यमेतद्धि यद्विद्वत्सात्क्रियेत वै ।
बन्धो धनकृतो नृणां धनन्दत्वा विमुच्यते ॥४४॥
धनमेव मनुष्याणां कारणम्बन्धमोक्षयोः ।
धनमेव परं सौख्यमितिबुद्ध्या तु बन्धकृत् ॥४५॥
धनमीश्वरसात्कार्यमिति बुद्ध्या विमुच्यते ।
व्ययङ्करोति धर्मात्मा न च नीचस्तु दीनकृत् ॥४६॥
इत्याद्युपदिशन्काश्यां सर्वस्य वसु सर्वदा ।
गृह्णात्येव महाधूर्त्तो धर्मानुपदिशन्बहून् ॥४७॥
ब्रह्मज्ञानम्बदन्स्तौति धनिनो धनकाम्यया ।
क्वचिद्विभूतिधवलो रुद्राक्षपरिवेष्टितः ॥४८॥
क्वचिद्वैष्णवरूपेण प्रतारयति मानवान् ॥
क्वचिच्छाक्तः क्वचित्सौरः क्वचिद्गणेश एव च ॥४९॥

कश्चित्तपस्वी शास्त्रऽर्थंवक्ता भवति जापकः ।
इत्यादि धनलोभेन करोति बहुधा बुधः ॥५०॥
दम्भम्प्रपञ्चयंल्लोके शोकं सञ्जनयन्मुहुः ।
आमन्त्रितः कदाचित्स बलादादरपूर्वकम् ॥५१॥
धनङ्गृहीत्वा च पुनर्भुङ्क्ते तु ग्रहदर्शकः ।
एवङ्काश्यामभवसन्धूर्त्तः प्रतारयति मानवान् ॥५२॥
स्त्रीजितस्त्रैणसम्बन्धी ब्रह्मघ्नब्राह्मणदूषकः ।
कदाचिज्जृम्भणङ्कुर्वन्वायुरूर्ध्वंगतोऽभवत् ॥५३॥
व्याकुलः सोऽन्त्यजत्प्राणानविमुक्ते विमुक्तिदे ।
यातनादेहमावेश्य भैरवः पापपूरुषम् ॥५४॥
पातयामास बहुधा पापं संस्मारयन् रुषा ।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्षशतानि च ॥५५॥
पात्यमानो न बुबुधे दुखैरात्मानमण्वपि ।
यातनान्ते कालराज उवाच जगदार्त्तिहा ॥५६॥

भैरवउवाच

हिरण्यगर्भ ! धन्योऽसि महापाशुपतः कृती ।
वर्णाश्रमसमाचारः सम्थक् सम्पादितस्त्वया ॥५७॥
किम्वर्णयामि देवस्याऽविमुक्तस्य विचेष्टितम् ।
अयुतत्रयङ्किञ्चिदधिकङ्कृतं येन महात्मना ॥५८॥
पापानुसारतो नैव कृता निष्कृतिरादरात् ।
तव पापस्य भोगस्तु कल्पैरपि न सिद्ध्यति ॥५९॥
यत्त्वया काशिकायान्तु कृतम्पापम्विजानता ।
ज्ञात्वा काश्यां यस्तु पापं करोति हि नराधमः ॥६०॥
न तस्य निष्कृतिर्वेदे पुराणे परिपठ्यते ॥६१॥

सूतउवाच

इत्युक्त्वा भैरवो देवो महापातकनाशनः ।
दण्डपाणिं समाहूय प्रोवाच भगवान्भवः ॥६२॥
दण्डपाणे ! नयस्वैनं मुक्तिदां मणिकर्णिकाम् ।
तत्राऽविमुक्तं देवेशं विज्ञापय ममाऽऽज्ञया ॥६२॥

अयम्पाशुपतो दम्भो मुक्तः पापात् सुदारुणात् ।
दिश्यतां सर्वतोभद्रं ब्रह्म तत्तारकम्महत् ॥६४॥
इति श्रुत्वा दण्डपाणिराज्ञां तां भैरवीं शुभाम् ।
हिरण्यगर्भं निष्पापं शङ्कराय न्यवेदयत् ॥६५॥
दृष्ट्वा तं देवदेवेश उवाच प्रहसञ्छनैः ॥६६॥

**काशीवासकृषयापाभुपतमुक्तिवर्णनम्**

श्रीशङ्करउवाच

अहो पशुपतश्रेष्ठ ! सम्यक् काश्यां स्थितिं त्वया ।
एवमेव सदा कार्यो मुमुक्षुभिरथोद्यमः ॥६७॥
धिक्कम्पापसमाचारं दाम्भिकं धनलोलुपम् ।
ब्राह्मण्यम्मानुषम्प्राप्य तत्राऽपि हि तपस्विताम् ॥६८॥
काश्यां धनार्थं यो मूढः किश्यन्क्लेश्यः सदैव मे ।
अहो ! जन्मसहस्त्राणां पापं या नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ६९ ॥
ताम्प्राप्य ये धनाद्यर्थं प्रवृत्ता आत्मघातिनः ।
येषां युगसहस्राणि परमायुर्विनिश्चितम् ॥ ७० ॥
तेऽपि काश्यां सावधानास्तिष्ठन्ति हि दिवानिशम् ।
मशका मनुजाः पापा निमेषोत्पत्तिजीविनः ॥ ७१ ॥
कुर्वन्ति सततम्पापं लभन्ते यातनाः सदा ।
अहो ! साहसमत्युग्रं पश्यन्तु विबुधाः स्फुटम् ॥ ७२ ॥
वैष्णव्या मायया ग्रस्ता विचारविमुखाः कृताः ।
या काशी धर्मजननी या काशी मोक्षदायिनी ॥ ७३ ॥
पापक्षयकरी या च तां काशीं द्रुह्यतेऽधमः ।
ईषदप्युपकारं हि करोति मनुजोऽपि यः ॥ ७४ ॥
तस्य द्रोहात्कृतघ्नः स्यान्महानरकभाजनम् ।
उपकारसहस्राणां जननीं मुक्तिदां ततः ॥ ७५ ॥
तां द्रोग्धुमिच्छन्नरके पतेत्किं द्रुह्यतीति च ॥ ७६ ॥

सूतउवाच

इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुर्दण्डपाणिं प्रणोदयत(त्) ।
अन्यालङ्कारविषये दिव्यम्वपुरुपेयुषि ॥ ७७ ॥

दण्डपाणिरलंङ्कृत्य तेजोमयवपुर्धरम् ।
दर्शयामास देवाय दीनानाथैकवन्धवे ॥ ७८ ॥
सचाऽपि भगवान्देवः काशीनाथो महेश्वरः ।
आचष्टे तारकम्ब्रिह्म यच्छ्रुत्वा ब्रह्मतान्व्रजेत् ॥ ७९ ॥
एवं हिरण्यगर्भः स पाखण्डधनतत्परः ।
अनेकायुतकालञ्च यातनाम्प्राप्य मुक्तिभाक् ॥ ८० ॥
अतएव द्विजाः काश्यां धनदेहपरायणाः ।
पापसङ्ग्रहमासाद्य पच्यन्ते यातनाग्निषु ॥ ८१ ॥

**काश्यांदानमहिमवर्णनम्**

शिवविष्णुपरा ये च ये च दानरताः सदा !
पापस्य सङ्ग्रहस्तेषां न सम्भवति दारुणः ॥ ८२ ॥
स्वम्भृत्यवद् ब्राह्मणस्य पश्यत्यानन्दकानेन ।
तस्य विष्णुः शिवौ देवा प्रसन्ना काशिका तथा ॥ ८३ ॥
जीवितं तरलं ज्ञात्वा धैर्यमालम्ब्य यत्नत ।
ज्ञात्वोग्रयातनां देवाद्भीतास्तिष्ठन्ति साधव ॥ ८४ ॥
विषमव्ययतोधर्मादपराधशतान्यपि ।
क्षमते शंकरः साक्षात्सङ्ग्रहादत्र कुप्यति ॥ ८५ ॥
दातव्यमिति नो काश्यां वक्तव्यम्मनुजै क्वचित् ।
अहोरात्रमतिक्रम्य तद्दानं द्विगुणम्भवेत ॥ ८६ ॥
दशोत्तरम्पर्वसु च शतञ्चन्द्रग्रहे भवेत् ।
सूर्यग्रहे सहस्रन्तु मरणेऽनन्तकं स्मृतम् ॥ ८७ ॥
तस्माद्दातव्यमित्युक्तं देयमेव न चाऽन्यथा ।
बुधैस्तदेव वक्तव्यं दातुं शक्यं यदेव हि ॥ ८८ ॥
उक्त्वा न दीयते यद्धि यातनाबन्धमेव तत् ।
दानमेव कलौ नृणां प्रायश्चित्तं न चेतरत् ॥ ८९ ॥
काश्यामपि कृता दोषा नश्यन्ति हि सुदानतः ।
दातव्यमिति गोदानमुक्त्वा धात्रीप्रदो यथा ॥ ९० ॥
प्रतारयति पापात्मा तस्य दानफलम्वृथा ।
तथाऽन्येष्वपि दानेषु प्रतिकल्पो न धर्मदः ॥ ९१ ॥
धनिनां कृपणानांञ्च दाम्भिकानां दुरात्मनाम् ।
दातव्यमिति यो ब्रूयान्न ददात्याशु पामरः ॥ ९२ ॥

तस्य तद्वचनम्पुण्यनाशम्पापं करोति हि ॥९३॥

ऋषयऊचुः

सूत ! काश्यामृणङ्कृत्वा काश्यामेव म्रियेत चेत् ।
का गतिस्तस्य कथय ऋणहा नैव मुच्यते ॥ ९४ ॥

**काश्यांमृणशोधनेऽप्युपायवर्णनम्**

सूतउवाच

काश्याम्मृतानां सर्वेषां मुक्तिरेव न शंशयः ।
बुद्धिपूर्वं कृतम्पापं दुःखायैव भवत्यलम् ॥ ९५ ॥
शृण्वन्तु सुविचित्रार्थां कथां शुद्धिविधायिनीम् ।
यथा धर्मः पापभीतिरुत्पद्येत विचारतः ॥ ९६ ॥
काश्यामासीत्सदाचारो वणिक्सत्याशिषः कृती ।
तस्य पुत्रद्वयं चासीत्सुखसम्वर्धितं शनैः ॥ ९७ ॥
एकः कल्याणनामाऽन्यो धनप्रिय उदाहृतः ।
धनम्विभज्य च पिता दत्त्वा काशीमवाप ह ॥ ९८ ॥
कल्याणः स्वधनम्भुङ्क्ते ददाति वसु याचके ।
कालेन क्षीणवित्तोऽभूदृणङ्कृत्वा स जीवति ॥ ९९ ॥
धनप्रियो द्वितीयस्तु पुत्रः पापमतिः शठः ।
पितुर्धनम्विनाश्याऽऽशु ऋणम्बहु चकार ह ॥ १०० ॥
वेश्याद्यूतमद्यपानरतः पापमतिः सदा ।
ऋणग्रहगृहीतात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥ १०१ ॥
पुण्यपापसमाचारौ मृतौ काश्यां वणिक्सुतौ ।
सद्यो मुक्ति यातनाञ्च प्राप्य मोक्षमवापतुः ॥ १०२ ॥

ऋषयऊचुः

ऋणङ्कृत्वाऽपि कल्याणः कथम्मुक्तिमवाप्तवान् ।
धनप्रियोऽपि ऋणकृत्कथम्मोक्षस्य भाजनम् ॥ १०३ ॥

सूतउवाच

धार्मिको ऋणभीतो यो म्रियेताऽत्र प्रमादतः ।
स सद्यो मुक्तिमाप्नोति ऋणी तस्य च शंकरः ॥ १०४ ॥
ऋणम्बहुगुणन्तस्मै ददाति भगवान्हरः ।
धार्मिकस्य मतिः प्रान्ते जायते ऋणभीतितः ॥ १०५ ॥

विश्वेशप्रवणां चान्ते तेन विश्वाधिपो ऋणी ।
स्वयमङ्गीकृत्य ऋणं तारकम्प्रदिशत्यलम् ॥ १०६ ॥
तारकश्रवणाद्विप्रा विश्वेशमुखनिःसृतात् ।
जायते व्यापकः साक्षात्तस्माद्धर्मो हि रक्षति ॥ १०७ ॥
कल्याणः प्राप कल्याणं काशीमरणमात्मनः ।
निस्तीर्णो दानबलतः काश्याङ् काशीकथाश्रयः ॥ १०८ ॥
धनप्रियो धिक्कृतस्तु कालराजेन यातनाः ।
प्रापितोऽयुतशः सर्वभोगार्थं ऋणकृत्स च ॥ १०९ ॥
कुटुम्बभोगकृत्यार्थमृणङ् कृत्वा विमुह्यति ।
स पापात्माऽशुद्धतनुर्यातनाः प्रतिपद्यते ॥ ११० ॥
अतः सर्वैरुपायैर्हि ऋणशुद्धिः समीरिता ॥ १११ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये काशीमाहात्म्यनिरूपणे विश्वेशकृतत-तारकमन्त्रेण ऋणशुद्धिवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्यश्रीशिवानन्दसरस्वतीपूज्यपादशिष्येण नीलकण्ठसरस्वतिना विरचितायां काशीरहस्यव्याख्यायां सेतुबन्धाभिधायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

# अथ षड्विंशोऽध्यायः

## काशिवासिजनानां स्थितिवर्णनम्

ऋषयऊचुः

महाज्ञानमयी सूत ! श्राविता काशिसत्कथा ।
त्वया महानुभावेन महाफलसमृद्धिदा ॥ १ ॥
पुनः काञ्चित्स्थितिम्ब्रूहि काश्यान्निवसतां सताम् ।
यथा न मानवो याति यातनां कालभैरवीम् ॥ २ ॥

सूतउवाच

सताम्प्रसङ्गैः श्रवणैः सुकीर्तनैः दिन्दापरद्वेषविषादवर्जनैः ।
दानैर्व्रतैरिन्द्रियनिग्रहैश्च प्रतिग्रहग्राहविवर्जनैश्च ॥ ३ ॥
भवन्ति लोकाः सुखिनो विरागाः कामारिवासे वृषरागयुक्ताः ।
विशेषतो निन्दनवर्जिता जना जनार्दनं सानुनयम्प्रकुर्वते ॥ ४ ॥
वक्ता परुषवाक्यानां विज्ञेयो नरकागतः ।
सन्देहो न मुनिश्रेष्ठाः पुनर्यास्यति यातनाम् ॥ ५ ॥
वरापवादी पापात्मा सर्वपापकृदध्रुवः ।
पच्यते नरके सोऽपि महापातकिभिः सह ॥ ६ ॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासम्पुरातनम् ।
सद्यः फलप्रदा निन्दा दर्शिता विष्णुशर्मणे ॥ ७ ॥
पुत्राय सुविनीतेन मुनिना यज्ञशर्मणा ।
विष्णुशर्मा पितुर्वेदान्साङ्गोपनिषदः क्रमात् ॥ ८ ॥
अधीत्य सर्वशास्त्राणि पुराणानि च सर्वशः ।
पप्रच्छ पितरम्पुत्रो विष्णुशर्मा महामतिः ॥ ९ ॥
अन्यद्यदस्ति वक्तव्यं तद्ब्रूहि कृपया पितः ! ॥ १० ॥

यज्ञशर्मोवाच

शृणु तात ! महाविद्या पुरुषार्थफलप्रदा ।
यामाश्रित्य नरः सर्वो जायते मोक्षभोगभाक् ॥ ११ ॥

सर्वंप्राणिषु विश्वात्मा परमात्मा जनार्दनः ।
संस्थितस्तस्य पीडाम्वा निन्दाम्वा कुरुते तु यः ॥ १२ ॥
स याति नरकङ्घोरं शिवद्रोही स च स्मृतः ।
ज्ञानम्मुनिवरैः सर्वैस्तपोविद्याविशारदैः ॥ १३ ॥
ततो न कस्यचिन्निन्दां पीडां वाऽपि प्रकुर्वते ।
सर्वं देवीमयम्विश्वं सर्वं शिवमयं तथा ॥ १४ ॥

विष्णुशर्मोवाच

देहस्तु निन्दितः सर्वैरात्मा निन्द्यो न कस्यचित् ।
पाड़ा तु किङ्कृता लोके निन्दितानान्तु दृश्यते ॥ १५ ॥

**काशीवासेदेहात्मनोरध्यासकरणे दुःख प्राप्तिवर्णनम्**

गुरुरुवाच

देहदेहिसमायोगादभिमानो भवत्यलम् ।
तन्निन्दनान्महद्दुःखं जायते विदुषामपि ॥ १६ ॥
अध्यास एव दुःखाय देहादौ प्राणिनाम्भवेत् ।
तन्निन्दनान्महद्दुःखं जायते नाऽत्र संशयः ॥ १७ ॥
तस्मान्निन्दा न कत्तव्या निन्दितस्य वृषार्थिना ।
निन्दनात्पितृभिः सार्कं नरकम्प्रतिपद्यते ॥ १८ ॥
सत्ये निन्दाऽऽशीघ्रदुःखप्रदा स्यात्त्रेतायां सा पक्षमात्रेण दद्यात् ।
मासादर्वाक् द्वापरे दुःखदात्री तिष्ये ज्ञाता सर्वदा पापरूपा ॥ १९ ॥
निन्दकानां सुखन्धर्मस्तपः सत्यं दया भयम् ।
तीर्थंव्रततपोदानं विद्यादि च निरर्थकम् ॥ २० ॥
आत्मानं सद्गुणम्मत्वा शास्त्राचरणसन्मतम् ।
ततोऽन्यस्य करोत्यज्ञो निन्दां निन्दित एव सः ॥ २१ ॥
निन्दया नहुषो राजा शतुक्रतुसमो महान् ।
पातितः स्वर्गतोऽप्यर्वाङ्महाधर्मकृदप्यहो ॥ २२ ॥
आत्मानं सर्वकुशलं मत्वैव परनिन्दकः ।
भवत्यवश्यं पापात्मा कुशलः स्वात्मघातकः ॥ २३ ॥
यस्त कश्चित्प्रियो देवः शिवो वा विष्णुरेव वा ।
स कथन्निन्दते जीवान् सर्वात्माराधको न सः ॥ २४ ॥

प्रमादादपि कर्णे यच्छ्रु तिस्मृतिसमीरितम् ।
सर्वात्मा भगवान्देवः पतितम्वाक्यमुत्तमम् ॥ २५ ॥
स कथम्पामरः श्रुत्वा तत्र तत्र महत्सु च ।
निन्दाङ्करिष्यते मोहात्परलोकदृशिनंरः ॥ २६ ॥
अतएव त्वया वत्स ! निन्दितस्याऽपि देहिनः ।
न श्रोतव्या न कर्त्तव्या न स्थेयं तत्र यत्र सा ॥ २७ ॥

विष्णुशर्मोवाच

उपदेशः समीचीनः प्राप्तस्तात ! मयाऽधुना ।
काश्यां स्थित्वाऽपि सततं निन्दन्त्यत्र निवासिनः ॥ २८ ॥
अभिमानमहासर्पग्रस्तानाम्पापकर्मणाम् ।
तेषां दैवहतानाञ्च का गतिस्ताम्बदस्व मे ॥ २९ ॥

यज्ञशर्मोवाच

रुद्रावासे महाक्षेत्रे रुद्राः स्थावरजङ्गमाः ।
स्थितानां प्राणिनां निन्दां कुर्वंन्याति ह्यधस्ततः ॥ ३० ॥
नथेश्वरो हि यं जीवं प्रवर्त्तयनि देहकृत् ।
तथा प्रवर्त्तते सोऽपि न स्वतन्त्रः कथञ्चन ॥ ३१ ॥
स्वयं तथाविधो भूत्वा कथमन्यं विनिन्दयेत् ।
सर्वज्ञत्वं बुद्धिमत्वं धार्मिकत्वं तथाऽऽत्मनि ॥ ३२ ॥
निन्दन्ति पापा आरोप्य स्वस्मिंल्लोकान्पृथग्विधान् ॥ ३३ ॥
काशीस्थनिण्दनपरान्परमादरेण काश्याम्मृतानपि हि पातयते परात्मा ।
श्रीकालराज इति यः प्रथितः परेशः सोऽस्यावमन्यसुकृतम्परिशिक्षयेच्च ॥ ३४ ॥
तस्मात्काश्यां सर्वं सत्त्वेषु बुद्धिः कर्त्तव्या ते रुद्ररूपाः सदाऽऽदौ ।
पश्चादन्यद्धर्मजातञ्च शक्त्या कर्त्तव्यन्ते पुत्र ! कल्याणहेतोः ॥ ३५ ॥

**मिथ्यावादपायवर्णनम्**

विष्णुशर्मोवाच

निन्दाकृतम्महापापं श्रुतमस्माभिरादितः ।
मिथ्यानुवादिनाम्पापं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३६ ॥

यज्ञशर्मोवाच

मिथ्यावादा बहुविधाः सन्ति पुत्र ! विघातकाः ।
न तेषु रमते प्राज्ञः सर्वघातिषु सर्वदा ॥ ३७ ॥

विहाय विष्णुमव्यक्तमन्यन्मिथ्या प्रचक्षते ।
वेदाः सर्वे पुराणानि शास्त्राणि सुजनास्तथा ॥३८॥
मिथ्यावादस्त्वयम्मुख्यो गर्भवाससहस्रदः ।
सत्यम्विहाय मिथ्याऽस्य यदि वागिन्द्रियम्भवेत् ॥३९॥
तन्नाशयति पापिष्ठं यावदाभूतसम्प्लवम् ।
लौकिकेष्वपि यः पापो मिथ्यावाग्जायते नरः ॥४०॥
तस्याऽपि निष्कृतिर्नास्ति मिथ्यावादानुसारतः ।
धनाद्यर्थन्तु यो मूढो मिथ्यावादानुसारतः ॥४१॥
धनाद्यर्थन्तु यो मूढो मिथ्यावादङ्करोति हि ॥४२॥
तस्याऽऽशु सुकृतं याति नरकम्प्रतिपद्यते ।
देहाद्यर्थम्प्रवदति यो नरोऽनृतमत्र हि ॥४३॥
स याति रौरवम्पापं न पुनः सत्यभाग्भवेत् ।
अनृतानां न चान्तोऽस्ति यातनानाञ्च पुत्रक ! ॥४४॥
वक्तुं न शक्यते तात ! तारतम्यमवान्तरम् ।
न वाच्यमनृतं तात ! न वाच्यम्वाच्यमेव न ॥४५॥
इति निश्चित्य विचरेन्न तस्य भयमण्वपि ।
ऋषयो राजऋषयो (?) वैश्याः शूद्रास्तथान्त्यजाः ॥४६॥
अन्येऽपि देवयक्षाद्याः पतिता अनृतेन हि ।
अनृतं न वदेत्प्राज्ञः प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥४७॥
कौतुकेनाऽपि हि महास्वैरहास्येष्वपि क्वचित् ।
अनृतं सर्वपापानां पात्रन्तस्मिन्हि सञ्चितम् ॥४८॥
पापराशिस्तु सुमहाञ्जायते वर्धतेऽपि च ।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन पापराशिरनन्तकः ॥४९॥
दुःखप्रदोऽन्तो भवति नानृतात्पातकम्परम् ।
पुराणेषु पृथग्गीतं नानाख्यानैरनेकशः ॥५०॥
अनृतन्नैव वक्तव्यमनृतात्सुकृतङ्क्षरेत् ॥५१॥

## पुराणोपपुराणानाम्वर्णनम्

विष्णुशर्मोवाच

कानि सन्ति पुराणानि व्यासोक्तानि महान्ति च ।
अन्यान्युपपुराणानि संख्यया वद मे पितः ! ॥५२॥

यज्ञशर्मोवाच

ब्राह्मम्पाद्मम्वैष्णवञ्च शैवं लैङ्गञ्च गारुड़म् ।
ततो भागवतम्प्रोक्तं भविष्याख्यञ्च वामनम् ॥५३॥
नारदीयं तथाऽऽग्नेयं मारकण्डेयञ्च कूर्मकम् ।
मात्स्यञ्च ब्रह्मवैवर्त्तन्तथा वाराहमेव च ॥५४॥
स्कान्दञ्च वायवीयञ्च पुराणानि च तत्त्रिपट् ।
पृच्छकश्रोतृनामानि मुख्यत्वे प्रथितानि हि ॥५५॥
तेन नाम्ना तानि तानि विभक्तानि विशेषतः ।
सर्वाः कथास्तु भगवानेकीकृत्य जनार्दनः ॥५६॥
कृष्णद्वैपायनश्चक्रे ह्यष्टादशमितानि च ।
विष्णुशर्मा पितुर्वक्त्राच्छ्रुत्वा निन्दामृषाफलम् ॥५७॥
असत्समागमांस्त्यक्त्वा पुराणपरमोऽभवत् ।
अतो धर्मकथा नित्यं शृण्वन्ति कथयन्ति च ॥५८॥
महानुभावाः सततं मिथ्यानिन्दानिवृत्तये ॥५९॥

ऋषयऊचुः

सूतान्यानि पुराणानि श्रूतान्यष्टादशैव तु ।
तेषां नामानि नो ब्रूहि कैः कृतानि मितिश्च का ॥६०॥

सूतउवाच

आद्यं सनतत्कुमाराख्यं नारदीयं द्वितीयकम् ।
तृतीय नारसिंहाख्यं शैवधर्मं चतुर्थकम् ॥६१॥
दुर्वा(स?)सं पञ्चमं षष्टं कापिलेमतः परम् ।
सप्तमं मानवम्प्रोक्तं शौक्रमष्टममेव च ॥६२॥
वारुणं नवमम्प्राहुर्ब्रह्माण्डं दशमं स्मृतम् ।
कालीपुराणन्तु तत एकादशममुच्यते ॥६३॥
वासिष्ठलैङ्गं द्वादशं माहेशन्तु त्रयोदशम् ।
साम्वञ्चतुर्दशम्प्रोक्तं सौरं पञ्चदशं स्मृतम् ॥६४॥
पाराशर्यं षोडशकं मारीचन्तु ततः परम् ।
अष्टादशम्भार्गवाख्यं सर्वधर्मप्रवर्त्तकम् ॥६५॥

एतान्युपपुराणानि सर्ववेदमयानि च ।
ऋषिभिः सम्प्रयुक्तानि पुरुषार्थफलानि च ॥६६॥
वेदधर्माः पृथक्कृत्य ज्ञायन्ते सर्वकाङ्क्षिभिः ।
न पुराणम्विना विप्राः ! पुरुषार्थं प्रवर्त्तते ॥६७॥
पुरुषार्थम्विना कश्चिन्न सुखम्पुण्यमश्नुते ।
अन्यथा नरकं याति श्रवणादिविवर्जितः ॥६८॥
शुभाशुभविवेकश्च श्रवणादेव जायते ।
पराणेप च सर्वेष नामभेदेत कानिचित ॥६९॥
व्यत्यासं यान्ति तान्येव कालभेदेन कुत्रचित् ।
अयमेव पुराणार्थो ह्ययमेव परोः वृषः ॥७०॥
इदमेव परं ज्ञानं यदात्मा मुच्यते भयात् ।
तद्द्वयं न विना काशीप्राप्तिम्भावि जहाति च ॥७१॥
विष्णोरियङ्कृपामुख्या शिवस्य परमा दया ।
धर्मयोगादि सद्वृत्तफलङ्काशी यदाप्यते ॥७२॥
काश्यां स्थित्वा देवदेवो शिवौ च विष्णुम्वा ये संयजन्ते मनुष्याः ।
ते वै लक्ष्मीपार्वतीकान्तभक्त्या वित्तैर्धान्यैर्गोक्षयुक्ता भयन्ति ॥७३॥
तथापिपापाः परमार्त्तियुक्ता दीनाः सुदीनाः सुखधैर्यवीर्यैः ।
दीनान्भजन्ते निरपत्रपाः किम्भवन्ति ते भ्रान्तिभाजः सदैव ॥७४॥

## काश्याब्रह्मस्वरूपवर्णनम्

ऋषयऊचुः

सूत ! जीव महाबुद्धे ! व्यासशिष्य ! हरिप्रिय ! ।
यत्त्वया काशिमाहात्म्यं श्राविता ऋषयोऽमलाः ॥७५॥
स्वधर्मदानव्रतधर्मसाधनैरन्यैश्च यागादिभिराप्यते यत् ।
पुण्यम्भवेत्तेन दृढा मतिः सतां काशीकथाश्रवणे मानवानाम् ॥७६॥
इदम्महाख्यानसशेषपाप्मनां विनाशनङ्काशिनिवाससौख्यदम् ।
शृण्वन्ति गायन्ति महानुभावाः परम्पदम्प्राप्य परां लभन्ते ॥७७॥
श्लोकार्धं श्लोकपादम्वा नित्यङ्काशीकथामृतम् ।
पिबन्ति ये महाभागास्तेपाम्भीतिर्न भैरवी ॥७८॥
महापातकयुक्तोऽपि शृणुयाद्यः कथामिमाम् ।
स युक्तो मुक्तिमाप्नोति पुण्यसम्भारदुर्लभाम् ॥७९॥

देवेषु च यथा शम्भुस्तीर्थमुख्येषु काशिका ।
व्रतेष्येकादशी मुख्या पुराणेषु तथा त्विदम् ॥८०॥
जगद्ब्रह्मविवर्त्तं हि वदन्ति श्रुतिमौलयः ।
काशी ब्रह्मैव साक्षाद्धि विदुषां श्रुतिचक्षुषाम् ॥८१॥
काशी कथाश्रवणतः काशी कीर्त्तनतः स्मृतः ।
यत्फलञ्जायते नृणां न तद्योगादिभिः क्वचित् ॥८२॥
सर्वे स विघ्नम्मोक्षस्य साधनङ्काशिकाम्बिना ।
काशी निर्बिघ्नजननी काशी मोक्षस्य सत्खनिः ॥८३॥
विष्णुबिश्रामभूमिश्च शिवविश्रामभूमिका ।
ऋषयो देवगन्धर्वा यत्र विश्राममागताः ॥८४॥
पूर्णा अपि रमन्तेऽत्र पञ्चक्रोशात्मके स्थले ।
अपूर्णानाम्वराकाणां रतिरन्यत्र पापतः ॥८५॥
यैर्दृष्टा यैः श्रुता काशी यैः स्मृता कीर्त्तिता तथा ।
त एव वन्द्याः पूज्याश्च कृतार्था मुक्तिभागिनः ॥८६॥

ऋषयऊचुः

वदन्ति योगिनो देहं काशीरूपम्बिमुक्तिदम् ।
अन्तर्दृष्ट्या महाभाग ! तत्कथं सूतनन्दन ! ॥८७॥

सूतउवाच

अदौ काश्यां धर्ममार्गेण वासः पापत्यागः काशिमाहात्म्यदृष्टिः ।
देहं गेहं पुत्रमित्रादि यस्य सर्वन्तुच्छं सोऽधिकारी महात्मा ॥८७॥

**काश्यान्मरणान्मुक्तिवर्णनम्**

जीवन्देहङ्काशिकाङ्कर्तुमिच्छन्कुर्यादेतन्नातिचित्रन्नृणां हि ।
देहः काशी काशिका देहरूपा तस्य प्रोक्ता यो बिरक्तः सदाऽऽस्त ॥८८॥
तथापि मुनयो वच्मि गुह्याद्गुह्यतरम्परम् ।
लिङ्गतीर्थान्यनेकानि यथा भान्ति शरीरके ॥८९॥
तथा श्रृणुध्वमाश्चर्यं क्व मेरुः सर्षपोदरे ।
आश्चर्यकारि मनसो नानाख्यानैस्तथोत्तरैः ॥९०॥
स्थूलादपि स्थूलतरा काशिका ब्रह्मरूपिणी ।
यथा मनुष्यदेहेऽस्मिश्छोधिते भाति वस्तुतः ॥९१॥

एतच्छ्रवणतः पुंसा सर्वत्र विजयो भवेत् ।
सौभाग्यश्चापि सर्वत्र प्राप्नुयान्निर्मलाशयः ॥९२॥
यस्य विश्वेश्वरस्तुष्टस्तस्य स्याच्छ्रवणेसतिः रति ।
जायते पुण्ययुक्तानां महानिर्मलचेतसाम् ॥९२॥
सर्वेषां मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्परमं स्मृतम् ।
गृहेऽपि लिखितम्पूज्यं सर्वमङ्गलसिद्धये ॥९३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते तृतीयखण्डे काशीरहस्ये काशीमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥